



हिन्दी-महाकाव्यों में नारी-चित्रण



# हिन्दी-महाकाव्यों में नारी-चित्रण

[ आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि  
के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध ]

डॉ० श्यामसुन्दर व्यास

एम० ए०, पी-एच० डी०

राजकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय  
इम्बोर (मध्य प्रदेश)

सा हि त्य - स ग म

भातागली, मथुरा (उ प्र)

प्रकाशक

रघुनाथदास अग्रवाल,  
साहित्य संगम  
१/५२०, मलापली,  
मथुरा (उ० प्र०)

❧

लेखक

श्यामसुन्दर व्यास  
एच एच पी-द्वय जी  
❧

प्रथम संस्करण

१९६३

❧

सर्वाधिकार सुरक्षित

❧

मुद्रक

जयवीरप्रसाद जरसिया,  
बम्बई भूषण प्रेस,  
मथुरा

❧

मूल्य :

१२ रुपये ५० मये पैसे

अपने स्वर्गीय पिताश्री  
पं० यादवराम जी व्यास  
की  
पावन स्मृति को



परंपरा से बनी बायी विचार-धारा के अनुसार गारी-बरिग मनुष्य को क्या देवताओं के लिए भी मन्त्रेय है। संभवतः उसके चरित्र की यह बनेपणा ही उसके प्रति आकर्षण का एक कारण विशेष रही है। जो शैव है, वह निष्ठा-स्तुति का कारण बना-बो मन्त्रेय है, उसे सैद्धान्तिक गुला पर विस्वात-अविस्वात के पक्षों में ठीकने का प्रयत्न चलता रहा। विचार-धाराओं के बाट बलते रहे और कभी विस्वात का पक्षड़ा मारी रहा कभी अविस्वात का। धर्म शास्त्र नीति कला एक जीवन—सभी मूलभूतिक रूप से गारी का मूल्यांकन करते रहे पर गारी किसी परिधि विशेष में बाँधी न जा सके। काल के ढग ही बोधे न पड़े विकासमय-रूढ़ि भी बटन गई। गारी प्रस्त-विन्दु भी और प्रस्त-विन्दु ही बनी रही।

धर्म, शास्त्र और नीति ने अपनी अपनी सीमा-रेखाएं खींची कला ने कुछ उपद्रवा कुछ अंकित किया कुछ छाव्यों में बाँचा पर जिसके लिए यह सब कुछ हुआ या वह जीवन ही अब ब्यापक करने लगा तो कला ही सर्व प्रथम जीवन के साथ बायी हुई। धर्म शास्त्र और नीति की समन्वित शक्ति विद्रोही-जीवन की कला को घाम न पाई। कला विद्रोही-जीवन के साथ थी। अतः उसने समस्यारी से काम लिया। उसने जीवन के विद्रोही वेग को भी समझा जब शास्त्र एवं नीति की समन्वित शक्ति को भी पहचाना। कला-मध्यस्थ बनी। उसने वहाँ एक मोर जीवन का पक्ष प्रतिपादित किया वहीं दूसरी ओर वह धर्म शास्त्र और नीति को भी बाँधिक प्रयत्न देती रही। कला की इस मध्यस्थता ने एक बहुत बड़ा काम किया—जीवन को बिछिन्न होने से ही नहीं बचाया विद्रोह-मन के प्राप्त होने वाले मयनीय को भी विस्तृति के जखों से बचा लिया। यह सत्य है कि जीवन की उद्दामता से कला को शक्ति मिली पर उसकी उद्दामता का अर्थ समर्थन कला ने नहीं किया। अतः कला और विशेषकर काव्य-कला में जीवन की बड़कन कामानुकूल से मूर्च्छित है।

जीवन की प्रथम बड़कन गारी की कोख से बायी है, उसके स्नेहित संरक्षण में पोषक पाते हुए रेंगी है पुटनों के बस सररी है, परि बसना सीखी है। जीवन उछी की स्नेहमयी छाया में गुलताया है, हृदय-विशोहित अनु-विगतित और मोद-मुञ्जरित हुआ है। जीवन आकर्षण एवं निरुपण के शायों में, गारी द्वारा अनुपायित एवं प्रभावित होता रहा है। वास्तविक ने प्रकृति का एवं विरक्ति ने निरुपति का मार्ग अपनाते हुए भी गारी को अनिवार्यता के रूप में अपने समझ रखा है। प्रथम वहाँ उसके उद्गमन स्वरूप को परचला रहा है वहीं द्वितीय ने उसके स्थापन पक्ष का प्रतिपादन करते हुए भी उसकी प्रभावपूर्ण सामाजिक स्थिति की अवज्ञा नहीं की है।



नारी जीवन की तरह काव्य की भी अनिवार्यता बन कर रही है। भाषानुभूति और व्यंग्यनुभूति का माध्यम विशेष होने के कारण वह सबक से काव्य को अनुप्राणित करती जाती आई है। काव्य और विशेषकर महाकाव्य का यात्रा-क्षेत्र—मर-क्षेत्र होता है। अतः इस यात्रा-क्षेत्र के माध्यम नारी वहाँ सहज आकर्षण बन कर उपस्थित होती है, वहीं देश-काल से प्रभावित काव्य-दृष्टि नारी का भूस्पर्शक भी करती जाती आई है। समाज-शास्त्र की तरह साहित्य की रचि भी नारी के प्रति सजग रही है क्योंकि समाज का वर्णन होने के कारण, साहित्य समाज के इस वर्णन की अवहेलना नहीं कर सकता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्तर्गत सगण्य एक हजार वर्ष की उस काव्यात्मक-दृष्टि का अध्ययन करने का विनम्र वास प्रयास किया गया है जो नारी का भूस्पर्शक करते हुए, साहित्य के एक महत्वपूर्ण भग—महाकाव्य—में नारी का चरित्रांकन करती रही है। सामान्यतया वातावरण से सगाकर प्रजातन्त्रीय वातावरण तक आते आते भारतीय नारी के स्वरूप में जो परिवर्तन उपस्थित हुआ है, उस स्वरूप को समझने के लिए हिन्दी के आदि महाकाव्य 'पृथ्वीराज राघो' से सबाकर 'राजम महाकाव्य' तक के प्रमुख महाकाव्यों के आधार पर यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी-महाकाव्यों का यह नारी-चित्रण केवल साहित्यिक महत्व का विषय ही नहीं समाज शास्त्रीय महत्व का भी विषय है। एक सुवीर्य साधना-सम्पन्न दृष्टिकोण का सांघोर्षा विस्लेषण जिस विज्ञता की अपेक्षा रखता है उस विज्ञता का मुस जैसे सामान्य ऐसी के व्यक्ति में निम्नता अभाव है। प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्तर्गत मेरा दृष्टिकोण एक जिसासु क्षात्र के रूप में ही रहा है और कुछ बाड़ी-डेड़ी-मोटी रेखाओं के माध्यम से मैंने हिन्दी-महाकाव्यों में चित्रित नारी की एक स्थूल आकृति-मात्र खींचने का प्रयास किया है। इस प्रयास की सफलता को मैं गुस्सनों का 'बड़ाबा' ही समझता हूँ, मैंने कोई बहुत बड़ा काम किया हो यह आत्मस्वाभा, न तो मैंने कभी अनुभव की और न करता हूँ।

यह प्रबन्ध प्रस्तुत करते समय मैंने वहाँ तक मुझसे सम्मन हुआ है विचार का मार्ग नहीं अपनाया। हिन्दी के महाकाव्यों का महाकाव्यत्व स्वयं में विचार का विषय है। इस विचार में आवश्यक विद्वानों में मतेक्य नहीं है। इस विचार में न पकड़े हुए मैंने अपने मुस विषय पर ही अपना ध्यान रखा और मोटे रूप से जिन काव्यों को महाकाव्य समझा जा सकता है, उन्हें अपने आधार-ग्रन्थ बनाने में हितकिचाहट अनुभव नहीं की। इन महाकाव्यों में व्यक्त नारी चित्रण को भी वहाँ तक सम्मन हो सका है मैंने ग्रन्थकारों के सख्यों में ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वहाँ-तहाँ मैंने कुछ आर्थिक-रंग अवश्य भगा है पर मूलतः मैंने ग्रन्थकारों की नारी-साहित्यियों को अपने दया रूप में ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। चित्रण विषयक विवेचकों अवस्था सीमाओं पर पर मैंने अपनी मति के अनुसार कुछ कहने की चेष्टा की है।

हिन्दी-महाकाव्यों की नारी का स्वरूप निर्धारित करने के पूर्व मैंने उसकी ऐतिहासिक सामाजिक आध्यात्मिक एवं साहित्यिक स्थिति तथा मनोवैज्ञानिक माय-ताओं विषयक तथ्यों का पृष्ठभूमि के रूप में, संकलन करने का प्रयास किया है। साथ ही नारी विषय की प्रवृत्तियों पर भी संक्षिप्त दृष्टि डालने की चेष्टा की है। हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि में उसका स्वरूप निरूपण करते समय प्रभावशाली होने तथा मैं उसकी साहित्यिक विशेषताओं एवं विषय-विषयक सीमाओं पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा की है। मान-भूमि के अंतर्गत उसके मनोभावों की सतक एवं कला भूमि में उसके अभिव्यक्ति-सौन्दर्य का निरूपण किया है। बौद्धिक भूमि महाकाव्यकारों के नारी विषयक दृष्टि-कोण को व्यक्त करती है और तुलनात्मक भूमि में नारी के विभिन्न स्वरूपों का तुलनात्मक व्योम प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध में हिन्दी-महाकाव्यों के माध्यम द्वारा भारतीय नारी के स्वरूप को समझने का प्रयास है।

प्रस्तुत प्रबन्ध डा० धीरमंगलसिंह जी 'सुमन' के मार्च-अप्रैल एवं निर्दोश में प्रकाशित हुआ है। वस्तुतः यह चर्चा की छद्म-मेधाओं एवं प्रोत्साहन का परिणाम है। औपचारिकता के नाम पर उनका आमार मान मानकर मैं उनके शुक्र-आप से मुक्त नहीं हो सकता हूँ। मैं उनके सहज स्नेह के समझ सदैव तब वस्तु एवं कथाओं के कारण विरक्त हो रहा ही उत्तम समझता हूँ। जब मैं कैंटे और फिन चर्चों में उनका आमार मानूँ? उनकी गरिमा के समझ मेरी लघुता, लघुता ही बनी रहे यही मेरे लिए पर्याप्त है।

इस प्रबन्ध में कविपद सुधार करने के सम्बन्ध में आचार्य नन्दकुमार शर्माजी एवं डा० दीनदयालु धुस ने अपने जो बहुमूल्य सुझाव दिए वे उनके लिए मैं उनका अत्यधिक अनुग्रहीत हूँ। साथ ही मैं उन समस्त विद्वानों का आभारी हूँ जिनके चर्चों ने शुक्रवत मेरा मार्च-अप्रैल किया है।

यह मेरी लक्ष्मणता ही होगी यदि मैं इस अवसर पर सार्दी अंकुर विषयवर्षीय एम ए बी टी एवं बी गिरमारीनाम निम्न एम ए का स्मरण न करूँ। मेहनत काम में उक्त दोनों सम्प्रदायों ने मेरी जो हार्दिक सहायता की है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

—श्यामसुन्दर व्यास

## संकेत-निर्देशिका

र० भी०	रस भीर्मासा
बी० का० सि०	बीबन के उत्सव और काव्य के सिद्धान्त
सा०	साहित्यालोचन
भा० स० दे० दि०	भारतीय समाज का ऐतिहासिक विस्लेषण
या० सं० इ०	भारत की संस्कृति और उसका इतिहास
भा० सांस्क० इ०	भारत का सांस्कृतिक इतिहास
हि० पु० स०	हिन्दुस्थान की पुरानी सम्प्रदाय
भा० प्रा० इ०	भारत का प्राचीन इतिहास
हि० स०	हिन्दू सम्प्रदाय
साइको० चैक्स	साइकोलाजी आफ सेक्स
हि० सा० बू०	हिन्दी साहित्य की भूमिका
मनो०	मनोविज्ञान और चिन्ता शास्त्र
सायु० मनो०	साधुनिक मनोविज्ञान
श्री ऐसे	श्री ऐसेज् आफ दी बिगरी आफ सेक्सुअलिटी
इनसाइ० आफ साइ०	इनसाइक्लोपीडिया आफ साइकोलाजी
किओर मनो० बू०	किओर मनोविज्ञान की भूमिका
डिफ० साइ०	डिफरन्शियल साइकोलाजी

# विषयानुक्रम

## प्रथम अध्याय

### नारी-विकास की पृष्ठभूमि

१९

ऐतिहासिक विकास ( आदि काल से उन् १९४८ ई० तक)  
आदिम युग और नारी वैदिक युग और नारी उपनिषद्  
काल में नारी, और-काव्यकाल में नारी मौर्य युग एवं  
उत्तर हिन्दूकाल में नारी, राजपूत काल एवं नारी मुस्लिम  
युग में नारी आधुनिक काल और नारी ।

२०

मनोवैज्ञानिक विकास

२०

आध्यात्मिक विकास

४३

सामाजिक विकास

५१

समायुक्त प्रमुख क्षेत्रावली

साहित्यिक विकास

५८

## द्वितीय अध्याय

### नारी-चित्रण की प्रधान प्रवृत्तियाँ

६७

ध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ

६७

आदि अनुसार : पवित्री, चित्री, संसिनी और इतिनी ।

धर्मावसार : स्त्रीकीया परकीया सामाया ।

धर्मस्यनुसार : स्वाधीनपतिता, भासकस्यया उत्पत्तिता अभिपारिका  
विप्रसध्या, सधिता भायिका नमहाप्रतिता, प्रमत्स्यत्रेयसी  
प्रोपित पतिता भायतपतिता ।

गुणानुसार : उत्तमा मध्यमा और अधमा ।

शैलीगत प्रवृत्तियाँ

७७

कामायनी भावार्थक, बौद्धिक वसायक ।

## तृतीय अध्याय

# हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि

८७

चरित्र-चित्रण के स्वरूप

८७

नायिकाओं का व्यक्तित्व-विश्लेषण

८९

रासो की संयोजिता, पद्मावत की पद्मावती, रामचरितमानस की सीता, रामचन्द्र-बन्धिका की सीता, प्रियप्रवास की राधा, साकेत की अमिता, कामायनी की अम्बा, नूरजहाँ की नूरजहाँ, सिद्धार्थ की यशोधरा, साकेत सप्त की माँझी, कल्याण की राधा, रावण की मन्वोदरी ।

उपनायिकाओं का व्यक्तित्व-विश्लेषण

१२०

रासो की उपनायिकाएँ : बिचरेपा इच्छिनी, पद्मावती, अमिता ।

पद्मावत की उपनायिकाएँ : मायमयी, बावत, नी पत्नी ।

मानस की उपनायिकाएँ : पार्वती, कैकेयी, कौसल्या, सुमित्रा, मन्वोदरी ।

रामचन्द्र-बन्धिका की उपनायिकाएँ : कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा, मन्वोदरी ।

प्रियप्रवास की यशोदा ।

साकेत की उपनायिकाएँ : सीता, कैकेयी, कौसल्या, सुमित्रा, माँझी, धृत कीर्ति ।

कामायनी की इडा ।

नूरजहाँ की उपनायिकाएँ : अगारदानी, अमीना, बेगम ।

सिद्धार्थ की माया ।

साकेत सप्त की उपनायिकाएँ : कैकेयी, कौसल्या, सीता, अमिता ।

कल्याण की उपनायिकाएँ : रमिनी, मित्रविहा, सत्यमामा, कामिनी

आम्बवती, होवपी, यशोदा ।

रावण की उपनायिकाएँ : मायमायिनी, सुसोचना, कैन्दरी, सूर्यनारा, सीता ।

## अन्य नारी-पात्रों का व्यक्तित्व-विवरण

१८६

रासो के अन्य स्त्री-चरित्र ।

पद्मावती के अन्य स्त्री-चरित्र : रत्नसेन की माता बादल की माता

कुमुरिनी बादशाह की दूती ।

जातक के अन्य नारी-पात्र मैना मुनयना मंजरा सुपण्डा ।

अश्विनी के अन्य नारी-पात्र जनमूया सूर्यनवा ।

त्रिवेन्द्रास के अन्य नारी-पात्र मोषिकाएँ ।

साकेत के अन्य स्त्री-पात्र मंजरा ।

सूरजहरी के अन्य स्त्री-पात्र : सखतुम्हरी, गह्वरविहारी की पत्नी ।

सिद्धार्थ की सुमता ।

साकेत राज्य के अन्य स्त्री-पात्र ।

कुण्डलासन के अन्य स्त्री-पात्र : कुन्ती सुमता ।

राजल की केतुवती ।

विहंगमावलीकन

१८१

## चतुर्थ अध्याय

### हिंदी-महाकाव्यों की भावभूमि

१८५

मयों के अंतर्गत नारी-जीवन और उसके विविध स्वरूप

१८२

रति-भाव उत्तम रति मध्यम रति, बल्लभ रति ।

हास, शोक और उत्साह भय ग्लानि आश्चर्य और निर्वेद ।

विमात्रों के अंतर्गत नारी के विविध आत्मन स्वरूप एवम्

उसकी उद्घोषनमयी चैष्टाओं का निरूपण

२०४

रति-भाव बल्लभ प्रेम वैवाहिक जीवन प्रेम विनयात्मक

विनोदात्मक, विद्यादात्मक वात्सल्य-भाव नारी-चरित्र प्रिय-विद्योगी

स्वरूप ह्रीना स्वभाव, उत्साह-वर्धन और आलोच ।

अनुभावों के अंतर्गत नारी के कायिक, मानसिक एवं सात्विक  
काय कलाप और उनका स्वरूप

२११

कायिक अनुभाव कटाक्ष भाषि कुत्रिम भाषिक चेष्टाएँ ।

मानसिक अनुभाव आसक्ति प्रसक्ति, ससक्त ।

सात्विक अनुभाव : रसम्भ एवेव, रोमांच स्वरसंग कंठ वीर्य  
वयु, प्रणय ।

संघारो भावों के अंतर्गत नारी-जीवन की विविध तरंगालियाँ  
निर्बेद, प्लामि शंका, मयूषा, मय, शम, वास्तव्य, ईद, चिन्ता मोह  
धृति चीड़ा अपमत्ता, हर्ष, आवेग, अड़ता, पर्व, विषाद, औत्सुक्य,  
निद्रा अपस्मार, विषोष, अमर्ष, अचिह्न्या, उग्रता भति व्याधि,  
उन्माद भास, चित्तक, मरण ।

२१५

भाव-भूमि की विशेषताएँ

२२२

### पंचम अध्याय

हिंदी महाकाव्यों की कला भूमि

२२७

कला, सौंदर्य एवम् नारी का सात्विक विवेचन

नारी-सौंदर्य के बाह्य उपकरण एवम् उनका वर्गीकरण  
काम वास्तवीय, सामुद्रिक, अलंकारिक, नैसर्गिक अग्य ।

२३१

हिन्दी-महाकाव्यों का रूप-वर्णन

२२२

स्त्रीवर्णन : केव-वर्णन, भाग-वर्णन, सभाट-वर्णन कपोल-वर्णन,  
मुकु-वर्णन, नासिका-वर्णन, नेत्र-वर्णन अक्षर-वर्णन  
वस्त-वर्णन, वाची-वर्णन, पलक, धीहृ एवं तिम वर्णन,  
धीवा-वर्णन, मुस्कान-वर्णन ।

मध्य भाग बाहु-वर्णन हाव-वर्णन, हृषेसी शंगुली-वर्णन,  
बसस्वस-वर्णन पीठ एवम् कटि-वर्णन ।

सबो भाग : निरुम्भ एवं बंधा-वर्णन पतन-वर्णन, पति-वर्णन  
कद-वर्णन ।

रूप-वर्णन के उपकरण प्राचीन एवं नवीन २४५

केश, ललाट कपोस मुख नासिका, नेत्र अण्ड, दाँत पलक, माँह  
एवं तिस घीरा बाबी मुस्कान अथवा हास्य, बाहु हथेली एवं  
धनुमिनी उद्योत, नाभि त्रिवली एवं रोमावलि पीठ एवं कटि,  
निरुम्भ एवं बंधा, पद-पल, पति, वर्ण कद, सावध्य ।

रूप-वर्णन की विशेषताएँ २४१

## षष्ठ अध्याय

हिंदी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि २५५

महाकाव्यकारों के नारी विषयक सङ्ग्रह—

परंपरागत तथा आधुनिक २५५

पसोकार एवं नारी, पचासकार एवं नारी, मानसकार एवं नारी,  
चन्द्रिकाकार और नारी, त्रिप्रवासकार एवं नारी, साकेतकार और  
नारी कामायनीकार एवं नारी दूरजहीकार एवं नारी सिद्धार्थकार  
एवं नारी साकेतसंतकार एवं नारी कृष्णायनकार एवं नारी, रावण  
महाकाव्यकार एवं नारी ।

महाकाव्यों का नारी विषयक दृष्टिकोण ... २६५

शान्तवादी दृष्टिकोण शक्तिवादी दृष्टिकोण भागवतवादी दृष्टिकोण,  
धुंधारवादी दृष्टिकोण, समानतावादी दृष्टिकोण, कलावादी दृष्टिकोण  
यनोर्वैज्ञानिक दृष्टिकोण ।

नारी-चित्रण का बौद्धिक पक्ष विशेषताएँ सजा सीमाएँ २६८

बौद्धिक सीमाएँ २७०



## सप्तम अध्याय

## हिंदी-महाकाव्यों की तुलनात्मक भूमि २७२

नारी-पात्रों का तुलनात्मक विवेचन—

हिन्दी-महाकाव्यों की विरहिणियाँ २७४

हिन्दी-महाकाव्यों की जीवन संगिनियाँ २७६

हिन्दी-महाकाव्यों की प्रेमिकाएँ २८३

हिन्दी-महाकाव्यों की माताएँ २८६

हिन्दी-महाकाव्यकारों के नारी विषयक विचारों का २८८

तुलनात्मक अध्ययन २८३

## परिशिष्ट ३०१

आचार ग्रन्थ ३०१

सहायक ग्रन्थ ३०१

## प्रथम अध्याय नारी-विकास की पृष्ठभूमि

- ऐतिहासिक विकास
- मनोवैज्ञानिक विकास
- आध्यात्मिक विकास
- सामाजिक विकास
- साहित्यिक विकास



हिन्दी-महाकाव्यों में वर्णित भारतीय नारी का अध्ययन करते समय अध्ययनकर्ता के सम्मुख नारी के विभिन्न स्वरूप उपस्थित होते हैं। यद्यपि "विभिन्न रूपों और व्यापारों से मनुष्य आदिम युगों से परिचित है, जिन रूपों और व्यापारों को सामने पाकर वह नर जीवन के आरम्भ से ही मुख्य और मुख्य होता आ रहा है उनका हमारे धारों के साथ मूल या सीधा सम्बन्ध है।"<sup>१</sup> यद्यपि संस्कारों के योग से जीवन की तरह काव्य की प्रकृति में भी बौद्ध-बहुत तरनुद्भूत परिवर्तन होता है।<sup>२</sup> अतः जिस काल में जो युग या विषयत्व प्रकट रहता है वही उस काल की प्रकृति या भाव ब्रह्मावा है।<sup>३</sup> यह स्वीकार कर लने पर भी कि किसी प्रतिमाहामी प्रत्यक्षार की स्थिति अपने ही काल और अपने ही व्यक्तित्व से सीमाबद्ध नहीं होती।<sup>४</sup> हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि कबि अपने समय की स्थिति के सूचक होते हैं।<sup>५</sup> कामा मनीकार ने भारतीय समाज के जिस अरण्योदय काल का विषय किया है वह उनके काल से बहुत अधिक पूर्व का है, परन्तु जो ज़ुगार उसने व्यक्त किए हैं वे कबि के समय की स्थिति के सूचक हैं। "आमस" का समाज नहीं है जो तुलसी के समय का समाज था। फिर भी सामाजिक युग की विचारधारा से तुलसी बन्धित नहीं रहे उनके

१ २० भो० पृ० ६।  
 २ भो० का० सि० पृ० २२।  
 ३ सा० पृ० ३२।

४ वही पृ० ४६।  
 ५ वही पृ० ३२।  
 ६ वही पृ० ३२।



हिंसी-महाकाव्यों में वंशित भारतीय नारी का अध्ययन करते समय अध्ययन-  
 कर्ता के सम्मुख नारी के विविध स्वरूप उपस्थित होते हैं। यद्यपि "विन  
 रपों और व्यापारों से मनुष्य आदिम युगों से परिचित है, विन रपों और व्यापारों को  
 सामने पाकर वह नर-जीवन के आरम्भ से ही मुख्य और मुख्य होता आ रहा है, उनका  
 हमारे नारों के साथ मूल या सीधा सम्बन्ध है।<sup>१</sup> यद्यपि संस्कारों के बोझ से जीवन  
 की तरह काम्य की प्रकृति में भी बोझा-बहुत वरमुकुल परिवर्तन होता है।<sup>२</sup> अतः  
 जिस काल में जो गुण या विशेषत्व प्रबल रहता है, वही उस काल की प्रकृति या भाव  
 कहलाता है।<sup>३</sup> यह स्वीकार कर लेने पर भी कि किसी प्रतिभावाली संस्कार की  
 स्थिति अपने ही काल और अपने ही व्यक्तित्व से सीमाबद्ध नहीं होती<sup>४</sup> हयें यह  
 स्वीकार करना पड़ता है कि कबि अपने समय की स्थिति के सूचक होते हैं।<sup>५</sup> काया  
 स्वीकार करना भारतीय समाज के जिस असमोदय काल का चिह्न है। वह उनके  
 मनोकार ने भारतीय समाज के जिस अस्मोदय काल का चिह्न दिया है वह उनके  
 काल से बहुत अधिक पूर्व का है, परन्तु जो उद्गार उठने लगे हैं, वे कबि के समय का  
 की स्थिति के सूचक हैं। 'मागध' का समाज नहीं मही है जो गुप्तनी के समय का  
 समाज था। फिर भी साम्यमिक युग की विचारवाद्य से गुप्तनी सम्बन्ध नहीं रहे उनके  
 हैं। इसका पही अर्थ हुआ कि कबि भी साम्यानीय सामाजिक जीवन और सांसारिक  
 परिस्थिति से बचा नहीं रहे समता उसही मता स्वतन्त्र नहीं हो सगी वह भी आदि  
 के क्रमिक विकास की गृह्यता के बन्धन के बाधर नहीं आ सगा।<sup>६</sup> अतः भारतीय  
 नारी का सही दृष्टिकोण करने के पूर्व यह निगन्त आवश्यक हो जाता है कि हम उन  
 बातों पर भी विचार करें जिनके कारण नारी-जीवन में वरमुकुल परिवर्तन होते हैं।

१. र० भी पृ. ६।
२. बी० का० ति. पृ० २२।
३. सा० पु० १२।

४. वही पृ० २६।
५. वही पृ० १२।
६. वही पृ० ११।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कृतिव्यय रूप को स्थिर करने में तीन बातें सहायक हो सकती हैं—जाति, स्थिति और काम। जाति का अर्थ हमें जन-समुदाय के स्वभाव के रूप में ग्रहण करना होगा। स्थिति से तात्पर्य उस सामाजिक राजनीतिक घासिक और प्राकृतिक अवस्था से है जो उस जन-समुदाय पर अपना प्रभाव डालती है और काम से तात्पर्य उस समय के जातीय विकास की विशेषता से है।<sup>१०</sup> दूसरे शब्दों में हम काम कसा एवं इष्टिकोज को परिवर्तन के प्रेरक तत्व मान सकते हैं। और इस इष्टि से नारी के ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिक सामाजिक तथा साहित्यिक विकास की पृष्ठभूमि का अध्ययन करने के पश्चात् ही उसका सही मूल्यांकन कर सकते हैं।

### ऐतिहासिक विकास

(आदि काल से सन् १९४८ ई० तक)

इतिहास अतीत के सम्म युग में किए मानव प्रयास की अनुक्रमिक कथा है।<sup>११</sup> जिस प्रकार एक बागे का सहाय लेकर मिथी के कच डलिया बन जाते हैं उसी प्रकार हमारे मन में भी किसी वृक्ष का सहाय पाकर बहुत से विविध भाव उसके चारों ओर एक स्तुत रूप में आकृति-मान करने का प्रयत्न करते हैं।<sup>१२</sup> अतः यह कहा जा सकता है कि मानव प्रयास को आनुक्रमिक कथा काल-वृक्ष में वृद्धि विविध भावों की वह स्तुत आकृति है जिसे हम इतिहास का नाम देते हैं। इस प्रकार इतिहास अतीत काल में सम्म मानव के प्रयास से समुद्भूत घटनाओं का क्रमबद्ध प्रवर्णन है।<sup>१३</sup> इस क्रमबद्ध प्रवर्णन को समझने के लिए “जब हम ऐतिहासिक क्रम से घटनाओं का वर्णन करते हैं तब उन्हें काल-मसार में वितरित करते हैं।”<sup>१४</sup> भारतीय नारी का ऐतिहासिक विवेचन करते समय हमें अनेक ऐतिहासिक युगों से गुजरना पड़ता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हमारे विवेच्य युग इस प्रकार हो सकते हैं —

आदिम युग और नारी — इतिहास की दृष्टि, अतीत के जिस सुदूर तक जाँच सकती है, उसका अधिकतम अंधकारमय माना जा सकता है क्योंकि ‘अतीत अनादि है उसका अधिकतर सुदूर भाग अज्ञात है।’<sup>१५</sup> अतः इस अज्ञात आदिम युग में नारी की ऐतिहासिक स्थिति का स्वल्प निर्धारण करना एक कठिन समस्या बन जाता है। फिर भी भारत में मातृ-सत्ता तद्द होकर बहुत समय तक बसी थी।<sup>१६</sup> सामाजिक व्यवस्था का कम गण-संगठन होता था जिसका आधार मातृ-सत्ता थी।<sup>१७</sup> वृष-विवाहों में

१०. सा० पु० ११।

११. मा० ड. ऐ० वि० पु० १।

१२. साहित्य पु० २७।

१३. मा० स० ऐ० वि० पु० १०।

१४. वही पृ० १।

१५. वही पु० १।

१६. भारत पु० ४३।

१७. वही पु० ४३।

माता के अन्तर्गत को ही पहचाना जा सकता था और यज्ञ—आदिम व्यवस्था—में अपनी प्रमुखता के कारण वह परिवार की स्वामिनी होती थी। इसीलिए मातृ-परम्परा के अनुसार पीढ़ियाँ चमती थीं।<sup>१२</sup> आदिम समाज का जन्म और उसका निर्माण मातृ-सत्ता द्वारा ही हुआ था।<sup>१३</sup> उनमें—आदिम साम्य संघ में—पिता की शासन सत्ता और श्रम की निषिद्धता नहीं थी। जहाँ तक श्रम-विभाजन का संबंध था वहाँ उस समय केवल पुरुष और नारी के श्रम में अन्तर पाते हैं। पुरुष अधिकार करवा था युद्ध में जाता था और पशुओं का पालन था नारी घर का प्रबन्ध करती थी भोजन पकाती थी दूध बूझती थी और बस्ती के आस-पास चारों ओर जंग उपजाती थी। दोनों का श्रम सामाजिक श्रम था। सामूहिक रूप से ही वह किया जाता था और सामाजिक रूप से ही उसका उपयोग होता था। इसीलिए निजी सृष्टिव्यय नहीं थी और पुरुष तथा नारी की मर्यादा में कोई अन्तर नहीं था।<sup>१४</sup> मातृ-सत्ताक-समाज में नारी बलवती थी पृष्ठ की स्वामिनी और सम्पत्ति की प्रभु।<sup>१५</sup>

कालान्तर में समाज में एक अद्भुत परिवर्तन हुआ। पहले उसकी सत्ता मातृ सत्ताक थी ध्वज पितृ सत्ताक होगई।<sup>१६</sup> परिणामस्वरूप माना के सारे अधिकार पिता के हो गए। स्वयं नारी भी घर की दासी बन गई।<sup>१७</sup> इस स्थिति में नारी घर के मोग का शासन उसका उत्पादक श्रम बन गई।<sup>१८</sup> संघ व सम्पत्ता एक जाते-जाते नारी के क्या अधिकार थे और उसकी क्या स्थिति थी निरन्ध्यात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता परन्तु उसकी दशा वयनीय नहीं थी इसका हमें कुछ आभास मिलता है।<sup>१९</sup> उस सभ्यता की एक नर्तकी की मूर्ति से पता होता है कि गणिका का जीवन वहाँ आरम्भ हो गया था।<sup>२०</sup> पर इस नर्तकी का रूप कुस्ती सभ्यता के अवशेषों में उपलब्ध स्त्री मूर्तियों से मिलता-जुलता है। अब यह अनुमान किया गया है कि जिस स्त्री की यह मूर्ति है, वह सिन्धु देश की न होकर दक्षिणी सिन्धोचिस्थान की थी। नर्तन-क्रिया में दस होने के कारण समस्त कोई व्यापारी उसे सिन्धु देश में ले जाया होगा।<sup>२१</sup>

उक्त विवेचन के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भारत में आदिम नारी की ऐतिहासिक स्थिति असन्तोषजनक नहीं थी। मातृ-सत्ताक युग में वह स्वामिनी बलवती एवं सम्मानिता थी और पितृ-सत्ताक युग में भी उसकी अवस्था दयनीय नहीं हो पाई थी।

१३. भारत पृ० ४४।

१४. वही पृ० ८६।

१५. वही पृ० ६७, ६८।

१६. जा० सं० ऐ० वि० पृ० २२७।

१७. वही पृ० २६७।

१८. वही पृ० २६८।

१९. वही पृ० २६८।

२०. वही पृ० २६४।

२१. वही पृ० २६४।

२४. जा० सं० इ० पृ० १०२।



वैदिक युग और नारी — नारी के विकास एवं अधिकार की दृष्टि से वैदिक युग का इतिहास भारतीय नारी का स्वर्ण काल है। वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति अतिनी ऊँची थी, उतनी बार में नहीं गड़ी रही।<sup>१२</sup> संमठन के सिद्धांत और व्यवहार में स्त्रियों का पद बहुत ऊँचा था। साधारण जीवन के असाधारण समाज के मानविक एवं धार्मिक नेतृत्व में भी स्त्रियों का हाथ था।<sup>१३</sup> छात्र और वीरणा में भी स्त्रियाँ कम नहीं। कोई-कोई स्त्रियाँ तो समरभूमि में जाकर पुरुषों की तरह घुरता बिसाती थीं।<sup>१४</sup> वैदिक युग में स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह ही ऊँची शिक्षा प्राप्त करती थी।<sup>१५</sup> जिन स्त्रियों में धार्मिक साहित्य रचने की शक्ति थी उनको अपनी इस प्रकृति के अनुसार जसने में किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं थी। कई स्त्रियाँ ऋषि भी जिनकी रचनाएँ पुरुषों की तरह ऋग्वेद संहिता में आज तक शामिल हैं।<sup>१६</sup> स्त्रियाँ सामाजिक जीवन में पूरा भाग लेती थीं। उस समय पर्वों की और स्त्रियों को सामाजिक समारोहों से दूर रखने की प्रवृत्ति नहीं थी।<sup>१७</sup> लुने यैवान में स्त्री-पुरुष बड़े बराब सभा करते थे। स्त्रियों को नधियाँ और तालाबों में नहाने का बड़ा अधिकार था।<sup>१८</sup> यद्यपि भार्य्य कुटुम्ब का जीवन वैदिक सत्ता और स्त्री सम्मान पर आधारित था।<sup>१९</sup> पुर इस काल की नारी शक्ति और अधिकार की सीमा है पुरुष की हैसियत से पिता की सपत्ति में उसका अधिकार है। युवती की हैसियत से वह अपना पति आप चुनती है। पत्नी की हैसियत काफ़ी ऊँची है और इस ऋग्वेदिक ऊँचाई तक इस रूप में भारतीय नारी नहीं गयी। न पहले न पीछे। अपनी शक्ति और ऊँचाई का वह स्वयं प्रतीक है।<sup>२०</sup>

उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि वैदिक युग में नारी नर के अधिकारों के काफी निकट पहुँच पाती है। नर-बाह्य सभी आर उसका सम्मान है। शिक्षा साहित्य समाज धर्म गृह-कर्म आश्रम-श्रमोव एवं समर-उभय क्षेत्रों में उसकी शक्ति रहती है। संक्षेप में वैदिक युग उसके ऐतिहासिक विकास की चरम परिणति का काल है।

अपनिषद् काल में नारी :—वैदिक काल से इस काल की स्त्रियों की स्थिति में अन्तर आने लगा था। इस युग के अन्त तक उनकी अवस्था काफी गिर चुकी थी।<sup>२१</sup> इस युग में कर्म-कांड की बढिसता बढ़ने के कारण अब स्त्रियाँ पतिव्रतों के साथ बैठकर

२२. भा० सांस्क० इ० पृ० ५२।

२३. हि० पृ० स० पृ० ३७।

२४. वही पृ० १७।

२५. भा० सांस्क० इ० पृ० ५२।

२६. हि० पृ० स० पृ० ३७।

२७. भा० सांस्क० इ० पृ० ५२।

२८. हि० पृ० स० पृ० ४४।

२९. वही पृ० ४४।

३०. भा० स० ऐ० वि० पृ० २५५।

३१. भा० सांस्क० इ० पृ० ५४।

समूची यज्ञ-क्रिया नहीं कर सकती थी।<sup>३४</sup> स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान ब्राह्मण्य वंश का पालन कर विद्याभ्यन करती थी। जब कोई कुमारी विवाह के लिए मध्यम में आती थी तो वह न केवल बस्त्रों में भसी भाँति आच्छादित होती थी पर, साम ही मञ्जो-पवीत को भी धारण किए होती थी। यज्ञोपवीत विद्याभ्यन का चिह्न था।<sup>३५</sup> अनेक स्त्रियाँ पत्र विपुली बन सकती थीं। गौरीयों चार्गी जैसी कुछ स्त्रियाँ इस युग में भी ऊँची शिक्षा प्राप्त करती थीं और बड़े से बड़े विद्वानों के साथ विचार करने की योग्यता रखती थीं।<sup>३६</sup> पर इसमें सन्देह नहीं कि कतिपय अपकाशों को छोड़कर सर्व सामान्य स्त्रियाँ विवाह द्वारा बृहस्प-वर्म के निर्वाह में उत्तर रहती थी।<sup>३७</sup>

जैसे-जैसे जाति के बंधन कड़े होते गये वैसे-वैसे स्त्रियों का पद मिरता गया। वर्म-व्यवस्था के कारण और सास कर जनार्यों की उपस्थिति के कारण स्त्रियों का पुरुषों से स्वतंत्रतापूर्वक मिलना कम होने लगा। अभी पूर्वा प्रारम्भ नहीं हुआ था पर स्त्रियाँ पुरुषों की गोष्ठियों से कुछ अलग रहने लगी थीं। इस प्रारम्भ से जन्म ज्ञान और अनुभव परिमित होने लगा और इसीलिए उनका बाहर कुछ कम होने लगा।<sup>३८</sup> पुत्रियों का जन्म इस युग से एक मुसीबत समझा जाने लगा। स्त्रियों के 'पाम' का अधिकार भी छीन लिया गया। फिर भी वे व्यवस्थाएँ अभी सर्वमान्य नहीं हुई थी।<sup>३९</sup> इसके अतिरिक्त अनुलोम प्रथा से भी स्त्रियों की पबवी को हानि पहुँची तथा उपस्था की प्रवृत्ति बढ़ने के कारण जब संसार-त्याग एक आदर्श होने लगा तो स्त्री जो इस त्याग में सबसे बड़ी बाधा है अगाधर की दृष्टि से देखी जाने लगी।<sup>४०</sup>

विभिन्न ऐतिहासिकों के उक्त मतों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी का यह ऐतिहासिक विकास और ऊँचाई जो उसने वैदिक युग के प्रारम्भिक काम में प्राप्त की थी कम होने लगी और उसका ऐतिहासिक महत्व अधिकार्यों की दृष्टि से घट-घट कर कम होना प्रारम्भ हो गया। भारतीय नारी की अधोनति का प्रारम्भ यहीं से समझना चाहिए।

वीर-व्यवस्था-काल में नारी — वीर-काव्य-काल तक आते-आते नारी की स्थिति में काफी अंतर आ गया। उत्तर वैदिक युग की स्त्रियों की स्थिति में जो हास होना प्रारम्भ हुआ था वह इस युग में भी बना रहा।<sup>४१</sup> इस युग में बहु विवाह की प्रथा

३४. भा० सांस्क० ६० पृ० २४।

३६. हिं. पु० सं० पृ० ७३, ७४।

३५. भा० प्रा० ६० पृ० २१८।

४०. भा० सांस्क० ६० पृ० २५।

३७. भा० सांस्क० ६० पृ० २२।

४१. हिं. पु० सं० पृ० ७३, ७४।

३८. भा० प्रा० ६० पृ० २१६।

४२. भा० सांस्क० ६० पृ० २६।

प्रचलित थी एवम् ब्राम्ह-विवाह की प्रथा का भी प्रारम्भ हो गया था।<sup>४३</sup> स्त्री को वैदाभ्ययन का अधिकार न था। विवाह के अतिरिक्त उसके सब सत्कार अर्भक किए जाते थे और वह अपने पुरुष संबंधियों के संरक्षण में रहती थी। कानून की दृष्टि में यह 'स्त्री-धन' के अतिरिक्त संपत्ति की स्वामिनी नहीं बन सकती थी। उसका मुख्य कर्तव्य घर का प्रबंध करना था जिसमें आय की रक्षा और व्यय भी शामिल थे।<sup>४४</sup> नारी-विरोधी वर्ग पुत्रियों के जन्म को कुछ मानता था उन्हें सारी कुराइयों का भुस समझता था।<sup>४५</sup> नियोग की प्रथा भी इस समय शास्त्र-सम्मत थी। पर्व की प्रथा का सुकपात भी इस काल से प्रारम्भ हो गया था। पर मध्य काल की सी परतंत्रता और घोर पर्दा प्रथा नहीं थी। स्वयंवर आदि में वे सबके सामने जाती थीं।<sup>४६</sup> फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि शीघ्र काल सारे भूमंडल पर नारी-यत्न का घटानाव है।<sup>४७</sup> रामायण-महाभारत-काल की नारी यदि बड़ी है तो इसलिये कि वह अपने एकाकी घर की छाया है, उसकी सत् अनुगामिनी है।<sup>४८</sup> इन बातों से यही प्रकट होता है कि नारी का मान-महत्व अब कम होने लगा था और चारों ओर से उसे जकड़ने एवम् उसके अधिकारों को सीमित करने का प्रयत्न प्रारम्भ हो गया था।

बौद्ध-युग में नारी — इस युग में नारी की स्थिति में बिदेव अंतर नहीं आ पाया था। बौद्धकासी कथाओं में स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी। शाश्य लोगों में स्त्रियों की दशा बहुत उत्तम थी। उनमें वह विवाह की प्रथा नहीं थी और वे अपनी स्त्रियों तथा कन्याओं को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते थे।<sup>४९</sup> जिन्सदि तोय भी स्त्रियों का बड़ा आदर करते थे और उनमें स्त्रियों का उत्तीर्ण पूर्णतया सुरक्षित था।<sup>५०</sup> कन्याओं का विवाह सामान्यतया सोलह वर्ष की आयु में किया जाता था। ब्राम्ह-विवाह की प्रथा उस समय प्रचलित न हो पाई थी। उस काल में विवाह के समय बधुओं को ही जानेबानी बिसाओं<sup>५१</sup> एवम् मिथुनि र्चन की स्थापना के समय व्यक्त की गई कुछ की विचारबादा<sup>५२</sup> को देखने से यही प्रकट होता है कि स्त्रियों का यह सम्मान अविचार के रूप में नहीं दया के रूप में था। नारी को चारों ओर से बाँधने का प्रयत्न पूर्ववत् जारी था और उसके व्यक्तित्व के विकास की सीमा पूरे और परिवार तक ही सीमित थी।

४३ भा० सं० इ० पृ० १७१, ८१।

४४ हि० सम्यता पृ० १६१।

४५ भा० संस्कृ० इ० पृ० ५२।

४६ बही पृ० ७०।

४७ भा० सं० ऐ० वि० पृ० १००।

४८ बही पृ० २३२।

४९ भा० प्रा० इ० पृ० ३३२, ३३३।

५० बही पृ० ३३२।

५१ भा० सं० इ० पृ० २२८, २२९।

५२ हि० सम्यता पृ० २४५।

मौर्य युग एक उत्तर हिन्दुकाल में नारी — मौर्ययुग तक पहुँचते-पहुँचते स्त्रियों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ। दाय में उन्हें पुरा अधिकार था। कुछ अवसरों में वे तमाक दे सकती थी और पुनर्विवाह कर सकती थी। विधवाओं को भी पुनर्विवाह करने का अधिकार था। पति यदि स्त्री का तीन बार से अधिक पीछे तो स्त्री उसके विरुद्ध अशसन में अभियोग चला सकती थी।<sup>१३</sup> फिर भी स्त्रियों की स्थिति बहुत ऊँची नहीं थी। मँगस्थनीय न स्त्रियों को लपेटने और बेचने की बात मिली है।<sup>१४</sup> अकरोव-हन्म तथा कृषिपाह की परिपाटी राज-परिवारों में प्रचलित थी। मिथों की पद्धति भी प्रचलित थी। कुछ स्त्रियाँ आजीवन व्रतधारिणी रह कर वर्जनात्मक का अध्ययन करती थीं।<sup>१५</sup> मौर्य राज न स्त्रियों प्रायः पदों में रहती थी।<sup>१६</sup>

भुक्त-युग में उच्च ब्रह्मण स्त्रियों की स्थिति बड़ी उन्नत थी। वे शासन-प्रणम में प्रमुख भाग लेती थीं। कुछ प्रांतों में विधेयन-चक्रक प्रणम में वे प्रांतीय शासक और राज के मूर्तिना का भी कार्य करती थीं। दक्षिण में स्त्रियों का पृथक्-पद में रहने की परिपाटी नहीं था। बाल-विवाहों का प्रचलन काँची हो गया था। कुलीन स्त्रियाँ उच्च शिक्षा भी प्राप्त करती थीं। किन्तु साधारण स्त्रियों की क्या चिर रही थी। बाल-विवाह प्रचलित हान से उनका उपनयन असम्भव हो गया। बहिक शिक्षा न होने पर भी स्त्रियों को कला और साहित्य की शिक्षा दी जाती रही। इस युग में ग्रीक भण्डारिका आदि अनेक स्त्री-लेखिकाएँ और कवित्रिणियाँ हुई।<sup>१७</sup> पर भारतीय इतिहास के इस स्वर्ण-युग में भी नारी अपनी अग्रवेश-कालीन स्थिति के निषम छोर के अधिकारों तक भी नहीं उठ सकी।<sup>१८</sup>

पुत्रकाल के अनन्तर नारी की स्थिति निम्नतर गिरती चली गई। यद्यपि वैशाख्ययन से प्रभावित होने पर भी कुलीन परिवारों की स्त्रियाँ मौखिक साहित्य और दर्शन का अच्छा अध्ययन करती थीं। स्त्रियों को सलित-नरामों की शिक्षा तो विनापन से ही जाती थी।<sup>१९</sup> अनेक स्त्रियों ने सम्भृत-काम्य की भी रचना की। इन्तु सेवा विग्निका भीसा मुनशा मशससा आदि कितनी ही कवित्रिणियों की रचनाओं का आभास इस युग के असकार-यों द्वारा मिल जाता है।<sup>२०</sup> समित-काम्यों के

१३ भा० सांस्कृ० इ० पृ० १२६।

१४ भा० सं० इ० पृ० ३८०।

१५ भा० सांस्कृ० इ० पृ० १२६।

१६ भा० प्रा० इ० पृ० २७७।

१७ भा० सांस्कृ० इ० पृ० १४४।

१८ भा० सं० ऐ० वि० पृ० २६४।

१९ भा० सांस्कृ० इ० पृ० १७४।

२० भा० प्रा० इ० पृ० २६६।

व्यतिरिक्त कुछ स्थितियों में उस समय शासन प्रबन्ध तथा रक्ष-नीतिमय जैसे पुरुषोचित कार्यों में भी अपनी पटुता प्रदर्शित की।<sup>११</sup>

स्थितियों में शिक्षा का प्रचार होने पर भी इनकी स्थिति जब निरन्तर हीन होती जाती थी। विधवा-विवाह अब बुरा माना जाने लगा था और सती प्रथा का भी प्रारम्भ हो गया था।<sup>१२</sup> सामारण स्थितियों की पराधीनता और प्रबलता इस काल में निरन्तर बढ़ती चली गई, साम्प्रत्य अधिकारों में विषमता आने लगी और नारी का दर्जा गिरता चला गया। इस समय यह सिद्धान्त सर्वमान्य हुआ कि स्त्री सर्वत्र पराधीन रहनी चाहिए उसे कुलीन और कामवृत्त पति की भी सेवा करनी चाहिए।<sup>१३</sup>

उक्त ऐतिहासिक तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी का पद और महत्त्व सदा गिरता चला आ रहा था। कतिपय अपवादों को छोड़कर उसकी स्थिति बयनीय होना प्रारम्भ हो गई थी। आरतीय इतिहास के इस सांस्कृतिक काल से वृत्तता के साथ उसके अधिकारों की कट्टर खुरना प्रारम्भ हो गई थी।

राजपूत-काल एवम् नारी — राजपूत-काल में नारी की स्थिति में सुधार की अपेक्षा गिरावट ही जाती चली गई। कन्या का जन्म अशान्त का घोरतम समझा जाने लगा। मध्य तथा पश्चिमी भारत के राजपूतों आगे के राज्यों में कन्या का जन्म होते ही उसे अशान्त आदि लेकर या अन्य ठगों से मार दिया जाता था ताकि कन्या के विवाह के समय बहेल आदि के कारण जो अपमान सहना पड़ता है तथा परेशान होना पड़ता है उससे मुक्ति हो जाय।<sup>१४</sup> बाल-विवाह का प्रचलन भी इस काल में प्रबल हो उठा। सती-भ्रम भी बोर पकड़ बैठी और पर्व का प्रचलन भी बढ़ गया।<sup>१५</sup> प्रायः स्थितियाँ अविलम्ब ही होती थी। राजपूत स्थितियों का आदर करते थे और प्रायः अनेक मामलों में उनकी सलाह ही लिया करते थे। पर यह सब अपवाद-स्वरूप ही माना जा सकता है। सामारण स्थितियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। स्थितियों की पराधीनता एवम् परबलता इस काल में बढ़ती चली गई, साम्प्रत्य अधिकारों में भी विषमता आने लगी और नारी का दर्जा गिरता चला गया। बाल-विवाह का प्रचलन और स्थितियों को वैशाध्यम का अधिकार न होने से सूर्यों के समान समझा जाता इस दुरावस्था के प्रधान कारण थे।<sup>१६</sup> यद्यपि उत्कालीन राजपूत राज्यों का इतिहास देखने से प्रतीत होता है कि अन्तरपुर में भी नारी की शक्ति थी और उसके लोभ, भोज और गरिमा को प्रकट करता है। पर इन्हें नारी के अपने व्यक्तिगत गुण कहा जा सकता है। नारी

११ — भा० सांस्क० इ० पृ० १७४।

१२ — भा० सां० इ० पृ० २६२।

१३ — भा० सांस्क० इ० पृ० १७६।

१४ — वही पृ० २७२।

१५ — भा० सां० इ० पृ० ६०६।

१६ — भा० सांस्क० इ० पृ० १७३।

समाज को अक्षरवा दयनीय थी। काम की बढोरता ने उसके अधिकारों एवम् स्वामि मान को दयनीय बना जाता था। मध्य युगीन ज़रम पतन का प्रारम्भ नारी के लिए राजपूत-वास से ही प्रारम्भ हो गया था।

मुस्लिम युग में नारी — मुस्लिम युग में नारी-अवस्था अत्यन्त कारमिक हो गई। पर्व की प्रथा का प्रचलन साधारण-सी बात हो गई। हिन्दू और मुसलमान स्त्रियाँ पर्व में रहन सगी। बहु विवाह एवम् बाल-विवाह की प्रथा ने भी जोर पकड़ा। उदाह मुस्लिम मैनिफेस्टो व राज्य कर्मचारियों के मय स हिन्दू सोम बचपन म ही अपनी बालिकाओं का विवाह करने लगे।<sup>१०</sup> सभी प्रथा का भी जोर बढ़ा। दामिर्क व्यवस्था का रूप दे देने के अधिकृत विधवाओं की सम्पत्ति के लोभप सवे-सम्बन्धी भी स्त्रियों को सही होने के लिए बाधित करने लगे। इस कार्य की पूर्ति के लिए बड़े ही दारप उपार्यों का उपनोत होने लगा। स्त्रियों स सही होने की स्वीकृति पान के लिए उन्हें अटीम जैसे मारक पदार्थ खिलाकर बिलकुल बेसुध कर दिया जाता था। स्त्रियाँ पिता की म्वासा प्रत्यक्षित होम पर बहो से उठकर मागती तो उन्हें बाँधों से बन्दरहस्ती पिता में डेता जाता था। उनका करम चोत्वार दर्शनों के हृदय विदीर्ष न कर सके इसलिए सल होत लड़काय भावि बाध मूब जोर से बजाये जाते थे। स्त्रियाँ उठकर माम न सके इसलिए प्राय उन्हें पिता के साथ रस्सियों से बूब बस कर बाँध दिया जाता था।<sup>११</sup> यद्यपि मुहम्मद तुगमक तथा अकबर ने इन कुप्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न किया किन्तु यह बन्ध नहीं हुई। दासियों का कर-रिक्म भी उस युग की साधारण-सी बात थी। नारी की उन्नति के सारे मार्ग रुद्ध थे। साधारणतः नारी जीवन मारणीय हो गया था और ७१२ ई० के मोहम्मद बिन कासिम के अरब-अक्रमन से लेकर १७७ ई० में मुसल-माग्राज्य के पतन तक मारतीय साधोनिता का इतिहास नारी अपने रक्त में लिख रही थी।<sup>१२</sup>

मुस्लिम युग में नारी की स्थिति देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यदि रूपवेर-कास उसके उत्कय की ज़रम सीमा थी तो मुस्लिम काल उसके पतन की ज़रम सीमा सिद्ध होती है। इस काल में उसके अधिकारों का ही अपहरण नहीं हुआ बल्कि जीने के लिए उसे कुछ प्रापवायु भी मिलना बन्मि हो गई। युग के स्वार्थ ने उसके विकास को अटीम आय और अनैतिरता का जिलाता बना जाता। नारी के प्रति बर्ता गया ऐसा विनीता दृष्टिकोण इमी कास म सम्भव हो सका और सम्भवतः मारतीय नारी के विकास के इतिहास का सबसे काया पूष्ट यही कास है।

१० भा० सं० इ० पृ० ६०६।

११ भा० सं० ऐ० वि० पृ० २६४।

१२ भा सं० इ० पृ० २७२।

बुका है। प्रत्येक बयस्क को मृतदान का अधिकार है तथा सन् १९४५ की केन्द्रीय चोपचा के अनुसार अब स्त्रियाँ भारतीय मासन की प्रतियोगिता-परीक्षाओं में भी सम्मिलित हो सकती हैं।<sup>७९</sup> समुक्त राष्ट्र संघ की सर्व प्रथम महिला अध्यक्ष बनने का शय भी भारतीय नारी का ही प्राप्त है। हिन्दू कोड बिल ने भी नारी की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है।

उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि आधुनिक काल में नारी की स्थिति में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है। उसकी ऐतिहासिक स्थिति सुदृढ़ हो गई है। मातृ सत्ताक युग में जहाँ वह बलवती स्वामिनी एवम् संसार की अधिकारिणी थी वैदिक युग में जहाँ वह पुरुष के अधिकारों के काफ़ी निकट पहुँच चुकी थी वहीं आधुनिक काल में सैद्धांतिक रूप में उसका दर्जा किसी भी प्रकार कम नहीं है। मध्य युगीन अंधकार काल को धिमे-मिसे कर आज वह समानता के आकाशमय में सँत ले रही है।

### मनोवैज्ञानिक विकास

मनोविज्ञान ध्येति की आतामरण से सम्बन्धित वेदाओं का वैज्ञानिक अध्ययन माना जाता है।<sup>१</sup> मनोविज्ञान का साम्बिक अर्थ है जीवन की राँस का विज्ञान एवम् सतामियों से इसकी परिभाषा आत्मा का विज्ञान अथवा वर्तन के रूप में की जाती रही है।<sup>२</sup> आज के मनोविज्ञान को न तो सध्वस अर्थ से और न प्राचीन परिभाषा से ही स्पष्ट किया जा सकता है। मनोविज्ञान आज एक नवीन विद्या मानी जाती है। प्राचीन समय में यह तर्क-शास्त्र और वर्तन शास्त्र का एक अंग था। तर्क-शास्त्र और वर्तन-शास्त्र से आरम्भ होकर इस विद्या ने अनेक रूप बधसे। पहले यह आत्म विद्या हुई, फिर मनोविद्या। उसके उपरान्त चेतन विद्या और फिर मनो-अव्यवहार की विद्या।<sup>३</sup> इस परिवर्तन के फलस्वरूप मानसिक विषयों के सम्बन्ध में निरीक्षण परीक्षण और सामान्यीकरण की सामान्यतात्मक पद्धति का प्रयोग होने लगा।<sup>४</sup> मनुष्य के मन के ऊपरी स्तरों से संतुष्ट न होकर मन के भीतरी स्तरों का भी अध्ययन आरम्भ हुआ और मनोविज्ञान को मनोविश्लेषण का रूप प्राप्त हुआ। यही नहीं मनोविज्ञान द्वारा ध्येति का अध्ययन सामाजिक दृष्टि से किया जाता है। ध्येति की मनोवैज्ञानिक दृष्टा का महत्त्व दूसरे ध्येतियों की दृष्टि से है। अतः मनोविज्ञान का एक सामाजिक पक्ष भी है जो कि

७९ सा० संस्कृत० ६० पु० २५०, ५१।

१ साह० पु० २०।

२ बहो पु० १।

३ मनो० पु० ५।

४ मन की धाँसे पु० ६।

धर्मियों के समूहों एवम् समाज की सुविधायी सुलझाना चाहता है।<sup>१२</sup> इस अध्ययन का स्वल्प पाँच पद्धतियों—अनुसंधान निरीक्षण प्रयोग तुलना और मनोविश्लेषण द्वारा निश्चित होता है। इसका क्षेत्र जीवन की वे मूढ़ और रहस्यमयी प्रवृत्तियाँ हैं जो मानव समाज की सम्पत्ति और संस्कृति में सहायक होती हैं।<sup>१३</sup>

मनोविज्ञान की विस्तृत चर्चा यहाँ न तो अभीष्ट है और न उचित ही। कर्म कर्म के लिए आज यह विद्या आवश्यक ही समझी जाती है और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से मनोविज्ञान का ज्ञान उपादेय होता है। परन्तु मनीष विद्या होने के कारण उसे अपने वर्तमान रूप में हमारे प्राचीन साहित्य में नहीं पाया जा सकता। फिर भी जीवन की वे गूढ़ तथा रहस्यमयी प्रवृत्तियाँ जो मानव-समाज की सम्पत्ति और संस्कृति में सहायक होती हैं, हमारे व्याप्त विषय के साथ जुड़ी हुई हैं। इसलिए मनोविज्ञान का क्लिष्ट-न-क्लिष्ट रूप मारी-चित्रण के साथ भी सम्भव रहा है। हमारे मनीषियों एवं कविगणों ने मारी-चित्रण में व्यवहारिक मनोविज्ञान का उपयोग किया है। इन मनीषियों के पास आधुनिक मनोवैज्ञानिकों की तरह साज-सज्जा साधन-सुसज्जित प्रयोगशालाएँ नहीं थीं। उनकी प्रयोगशाला की नित्य प्रति बदलता रहनेवाला समाज। अतः उनके सामाजिकरण में अतिमत्ता भले ही न आई हो पर वे एक निश्चित धारणा अवश्य निर्धारित कर चुके थे। और फिर, विज्ञान तथा दर्शन की सौत्र में अतिमत्ता जाती भी तो नहीं। अतः उचित यही है कि हम उन सिद्धान्तों की चर्चा पर विचार करें जो मारी के मनोवैज्ञानिक विकास में सहायक सिद्ध हुई हैं।

मारी-जीवन के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के विकास को दृष्टिगत रखते हुए, सब प्रथम हमारा ध्यान वास्तविक कृत काम-सूत्र की ओर जाता है। काम-सूत्र इस शिक्षा में लिखा गया सर्वप्रथम ग्रन्थ है ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि वात्स्यायन के पूर्व भी अनेक आचार्यों ने ऐहिक सुख मोक्षों के मार्ग अर्थों पर ग्रन्थ लिखे थे और इन सबका सार समग्र करके सन् ई० की पहली या दूसरी शताब्दी में वात्स्यायन ने अपना प्रसिद्ध काम-सूत्र लिखा।<sup>१४</sup> स्वयं वात्स्यायन ने काम-शास्त्र की परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा है कि महादेशजी के अनुचर नम्बी ने सर्वप्रथम एक हजार अध्याय में काम-सूत्र की रचना की।<sup>१५</sup> फिर महर्षि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने काम-शास्त्र का पाँच सौ अध्याय में संक्षिप्त निरूपण किया।<sup>१६</sup> इसके पश्चात् बभ्रु के पुत्र पाँचाल ने

१. शिक्षा शास्त्र पृ० १६६।

२. वही पृ० १६८।

३. हि० शा० भू० पृ० १९४।

८. कामसूत्र पृ० १, १, ८।

९. वही पृ० १, १, ९।



साधारण सांप्रयोगिक कन्या-संप्रमुक्तक मार्गाधिकारक पारिवारिक वैदिक और औपनिषदिक—ये सब अधिकरणोंवाले एक ही पञ्चाश अध्यायों में काम-शास्त्र का विवेचन किया।<sup>१</sup> बाद की परम्परा के अनुसार वत्सकाव्य में पाटसीपुत्र की गणिकाओं की प्रेरणा से वात्सव्यद्वय काम-शास्त्र के सठे वैदिक अधिकरण को पूरक दिया।<sup>११</sup> इसी प्रकार काव्यय ने साधारण सुवर्चनार्थ में साम्प्रयोगिक बोटकमुक्त ने कन्या-संप्रमुक्तक योनर्वीय ने मार्गाधिकारिक गोविका पुत्र ने पारिवारिक और कुचुमार ने औपनिषदिकाधिकरण को पूरक कहा। इसके बाद प्रकों के गृह्य स्वल्प अथवा एकापिठा को दूर करने की इष्टि से कामसूत्र का प्रणयन हुआ।<sup>१२</sup>

उक्त परम्परा को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानव-जीवन के गूढ़ एवम् रहस्यमय व्यापारों चक्रों तथा प्रवृत्तियों के अध्ययन के प्रयत्न उस काम से ही प्रारम्भ हो सके थे। चिन्तन एवम् कोक-अध्ययन के पश्चात् ही वे कुछ शास्त्रीय तथ्य सौकार्य रख सके होंगे। नारी विषयक उसही धारणा का सही स्वरूप क्या था यह कह सकता असम्भव-सा हो सकता है पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ग्रीक मनोविज्ञान की इष्टि से नारी उनके अध्ययन का केन्द्र-बिन्दु अवश्य थी। अधिकरणों के विषयों पर इतिहास करने से यह बात ज़ानी जा सकती है। कामसूत्र में स्थान स्थान पर उक्त आचार्यों के मतों का उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट है कि वात्स्यायन के पूरे ही काम की व्यापार मानते हुए नारी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन आरम्भ हो गया था।

कामसूत्र यौग मनोविज्ञान का सर्वप्रथम शुष्कवस्तिष्ठ स्वरूप प्रस्तुत करनेवाला प्रथम माना जा सकता है। काम का स्वरूप निरूपण करते हुए वात्स्यायन ने आत्मा से सम्बन्धित कर्मवर्चन से अधिकृत चोत त्वत्, यत्, जिज्ञा और प्राप्तेन्द्रियों को अपने अपने विषयों में अनुकूल रूप से प्रवृत्त प्रवृत्ति को काम माना है। यह प्रवृत्ति जब स्वर्ग संयोगाणि द्वारा आनन्द की विधेय प्रतीति करती है तो प्रधान काम माना जाता है और छेप प्रतीतियाँ अप्रधान रहती हैं।<sup>१३</sup> काम की स्त्री-पुरुषों के संप्रयोग के पराधीन होने से उपाय की आवश्यकता रहती है और तरीर की स्थिति के लिए काम भी बाह्य की तरह समान वर्गी है। अब वात्स्यायन के मनुष्यार इस उपाय का ज्ञान कामसूत्र से होता है।<sup>१४</sup>

१० कामसूत्र १, १ १०।

११ यही १ १, ११।

१२ यही १, १, १५: १४।

१३ कामसूत्र १। २। ११, १२।

१४ यही १। २। १५, ३७ १२।

काम के स्वरूप एवम् प्रयोजन पर विचार करने के पदचान यह स्पष्ट हो जाता है कि मातृशाला ने सँकड़ों वर्ष पूर्व काम को एक प्रवृत्ति ही माना था और इन प्रवृत्ति द्वारा काम के विवेक प्रतीति के हेतु ही उपान काम की दृष्टि से कामसूत्र की रचना की थी। यह उपान ज्ञान मानव-जीवन के एक एवम् रहस्यमय व्यापारों के शास्त्रों तथा प्रवृत्तियों का ही अध्ययन प्रस्तुत करते हुए बना है। कामसूत्र की विषय-सामग्री के अंतर्गत मारी-मनोविज्ञान का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है वह संक्षेप में इस प्रकार है —

साधारण व्यक्ति के अंतर्गत मारी विषयक तथ्यों का जो मनोवैज्ञानिक स्वरूप ग्रहण किया जा सकता है वह यह है कि मारी को काम-प्रवृत्ति करने के हेतु बाधावरण एवम् प्रपत्तों की आवश्यकता होती है। कम्पा पुनश्च एवम् वीर्या की अपनी-अपनी कमजोरियाँ हैं। कला-ज्ञान द्वारा बाधावरण की सृष्टि कर इन कमजोरियों का परिहार भी किया जा सकता है और इन कमजोरियों का लाभ भी उठाया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कला ज्ञान उस बाधावरण की सृष्टि करता है जो व्यक्ति के विकास में सहायक सिद्ध होता है। कला ज्ञानो मारी राजा से सदा सम्मानित बुद्धियों से प्रभावित आर्चनीय अभिगम्य एवम् लक्ष्यभूता हो जाती है। पत्नियों को वक्ष में कर सकती है तथा वियोग-काव एवम् निर्वोधावस्था में भी मानव-पूर्वक रह सकती है।<sup>१४</sup> यही बाधावरण मारी-जन को विचलित भी कर सकता है क्योंकि कलाओं में अनुर, नाचास आहुकारक मनुष्य बिना ज्ञान-सहचान के भी स्त्रियों के वित्त को हार लेता है।<sup>१५</sup> इसका मनोवैज्ञानिक भाव यह लगाया जा सकता है कि स्त्री का मन आनुर नाचास तथा आहुकारिता का भूसा होता है और इनके बचीभूत हो सकता है।

पर स्त्री रम्य<sup>१६</sup> के कारणों से भी मारी-विषयक मनोभावों का जो दुर्बल एवम् सबल पक्ष दृष्टिगोचर होता है उसके अनुसार समर्थ व्यक्ति की पत्नी अपने प्रेमी के धनु से पति को विमुक्त कर सकती है। कार्य-सिद्धि धनु-नाश ऐश्वर्य-योग में सहायक सिद्ध हो सकती है। निर्धनता दरिद्रता वैरोजगायी यदि को दूर कर सकती है। अनुरक्त होकर अनृत रह जाने पर रहस्योद्घाटन द्वारा हानि पहुँचा सकती है, वलरिज कर सकती है अपना बोपी न होने पर भी बोपी सिद्ध कर सकती है। अन्य प्रेमिका प्राप्ति का माध्यम अपना दुर्लभ प्रेमिका प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सकती है।

४. कामसूत्र १।१।१८ से २०।  
यही १।३।२१।

१७ यही १।५।८ से २१।

रागात्मकता के साथ प्राप्ति जानेवाले उक्त सखन वात्स्यायन द्वारा नारी के व्यवहार वाली मनोवैज्ञानिक स्वरूप को हमारे सामने उपरिष्ठ करते हैं।

सांख्ययोगिक अभिकरण के अंतर्गत वात्स्यायन ने यौन-मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी को तीन मायिकाओं—मृगी-वदुषा एवम् हृस्विनि के रूप में देखा है।<sup>१०</sup> भाव प्राप्ति के सम्बन्ध में स्त्रियों के नियम में उत्पन्न मतभेद पर विचार करते हुए वात्स्यायन द्वारा इस मत का प्रतिपादन किया गया है कि पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी ब्रह्मन्त्र की उपलब्धि होती है। उपाय-भेद प्राकृतिक है, पुरुष कर्ता है सुवर्ती अभिकरण है। कर्ता तथा आचार का कार्य-व्यापार असंग-असंग है। अतः प्राकृतिक उपाय-भेद से व्यापार भेद हो जाता है। मुख्य रूप व्यापार में स्वरूप को कर्ता समझ कर अनुरक्त होता है तथा सुवर्ती स्वरूप को भाव-प्राप्ति का व्यापार समझ कर अनुरक्त होती है।<sup>११</sup> रति-सुख के विभिन्न उपायों एवम् उपायानों की चर्चा से यह मनोवैज्ञानिक तथ्य निकलता है कि स्त्री की राग-वृद्धि में विचित्रता सहायक होती है क्योंकि पारस्परिक राग-विचित्रता से ही पैदा किया जाता है।<sup>१२</sup>

वात्स्यायन द्वारा नारी की पमात्मक प्रवृत्ति को वास्तव करनेवाली वस्तुओं में वेद्योपचार को भी महत्व दिया गया है किन्तु साथ ही वे स्वरूप नाम के इस मत से कि वेद्योपचार से स्वभाव के उपचार अधिक असंगत है। अतः प्रकृति के निरुद्ध वेद्य के आचार भी नहीं करना चाहिए, सहमत जान पड़ते हैं क्योंकि कालक्रम के अनुसार एक वेद्य के उपचारपथ दूसरे वेद्य में पहुँच जाया करते हैं।<sup>१३</sup> इस प्रकार वात्स्यायन ने कालानुसार होनेवाले मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को भी स्वीकार किया है।

वात्स्यायन द्वारा स्त्रियों को निवारिणी निवृत्तिवादी नटियों घञ्जुन परीक्षा करनेवाली स्त्रियों व्यभिचारिणियों एवम् जाह्नू-दोना करनेवासियों के चरित्र से हुए रहने की सलाह दी गई है।<sup>१४</sup> साथ ही वे दुर्भाव्य नारी दृष्टि दूसरी ओर मुक्त करके बाँटें करना द्वार पर लड़े होना देखना पाटिकाओं में सप्ताह करने और एकान्त में बहुत रमा। एक लड़े रहने का नियम करते हैं।<sup>१५</sup> इस बर्तन द्वारा वात्स्यायन ने यह मनोवैज्ञानिक तथ्य प्रस्तुत किया है कि स्त्रियों में भावुकता की मात्रा अधिक होती है। किसी संवेगात्मक अवधि में वे क्षीय ही या जाती हैं और संवेगावेग के कारण उनकी चर्क क्षमता का ह्रास हो जाता है।

१०. कामसूत्र २।१।१।

११. यही २।१।१४ से १५।

१२. यही २।१।२३, २४।

१२. यही ४।१।८।

१३. यही २।४।२३।

१३. यही ४।१।२९।

'स्त्री-पुरुष शीसावस्थापन प्रकरण' के अंतर्गत वात्स्यायन गोमिका पुत्र के इस शत को उद्धृत करते हुए कि 'स्त्री किसी भी उज्ज्वल पुरुष को देखकर चाहती है और पुरुष भी उज्ज्वला स्त्री को देख कर चाहता है किन्तु अपेक्षा से स्त्री हुए एक-दूसरे में प्रवृत्त नहीं होते' यह प्रगट करते हैं कि यह विधेयता स्त्री में अधिक होती है।<sup>१४</sup> साथ ही वे इस बाह्य-व्यावर्तन के कारणों पर प्रकाश डालते हैं। इस व्यावर्तन के प्रमुख कारण हैं पति का सामीप्य एवम् प्रेम अपरस्त्री की अपेक्षा जामु का डंसाव तथा दुःख अनादर की भावना बुध्याप्यता की संका हाव से निकल जाने अथवा रहस्योद्घाटन हो जाने का भय ऐश्वर्यता का भय कला चातुर्य के समक्ष सज्जा भाव अथवा अनादर अशिष्ट की भावना स्वयंसेवक अथवा स्वयंसेविका का भय अर्थात् एवम् पति प्रेयित की संका भावि है।<sup>१५</sup> इससे यही मनोवैज्ञानिक उद्भव एहीव किया जा सकता है कि नारी में संवेग का आविर्भाव होने के बाद भी पीड़ना प्राप्त करने पर वह अपने संवेगों को नियंत्रित कर सकती है और इस संवेग-नियंत्रण का प्रधान कारण नारी की सामाजिक स्थिति है। विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियों के फलस्वरूप नारी में यह व्यावर्तन-प्रवृत्ति भी जाग्रत हो जाती है।

जब उष्यों को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि वात्स्यायन द्वारा कामसूत्र की रचना करते समय नारी का जो स्वरूप उपस्थित किया गया वह केवल काम शास्त्रीय ही नहीं मनोवैज्ञानिक भी था। वात्स्यायन के पश्चात् भी काम-शास्त्र संबंधी ग्रंथों का प्रचलन होता रहा किन्तु वे सब काम-विषयक विधेयताएं अधिक रखते हैं मनोवैज्ञानिक विधेयताएं कम। साथ ही गूनाधिक परिवर्तन के बाद कामसूत्र का प्रभाव इन ग्रंथों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नारी-विषयक मनोवैज्ञानिक सामग्री का प्राचुर्य रस सिद्धांत एवम् नायिका प्रेम के अंतर्गत भी पाया जाता है। रस सिद्धांत और नायिका प्रेम को यदि मूल प्रवृत्तियों एवम् संवेगों की साहित्यिक व्याख्या माना जाये तो अत्रुक्ति न होती। वास्तव में देखा जाये तो रस सिद्धांत तथा नायिका-प्रेम के अंतर्गत नारी का जो मनोवैज्ञानिक व्यवहारवादी स्वरूप उपस्थित किया गया है वह नारी-संवेगों एवम् मानवीय मूल प्रवृत्तियों पर ही प्रकाश नहीं डालता अपितु बातावरण एवम् अस्वाभाविक संस्कृति से उत्पन्न प्रभावों के अंतर्गत पाये जानेवाले व्यवहारवादी अन्तर को भी स्पष्ट करता है।

अथवा की मनाविश्लेषणात्मक पद्धति नारी-मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी एक नवीन कोश का वैज्ञानिक सूत्रपात करती है। यद्यपि काव्य के पूर्व भी नारी की मूल कामसूत्र ५।१।८ १।

प्रवृत्ति का लेकर अनेक व्यक्तियों द्वारा मिश्र-विभिन्न मत प्रगट किए गए हैं। नारी के सम्बन्ध में पुरुषों द्वारा प्रगट किये गए हम मतों में विभिन्नता के साथ वैज्ञानिक सूत्र का तो अभाव है ही साथ ही वे मत-मतौबों के यौन-संकेतों एवं आदर्शवादिता द्वारा रंगीन बना दिये गए हैं।<sup>१९</sup> गाल (Gall) के मतानुसार पुरुषों की यौनेच्छा स्त्रियों से कहीं अधिक बलवती होती है। लासन टेस्ट (Lawson Test) ने भी इसी बात की पुष्टि करते हुए कहा है कि पुरुषों की वाम प्रवृत्ति प्रबल एवं स्त्रियों की दाय-प्रवृत्ति कमजोर होती है।<sup>२०</sup> वेनटे (Venette) के मतानुसार प्रेम के क्षेत्र में तुलनात्मक दृष्टि से पुरुष स्त्री के सामने बच्चे हैं। इस मामलों में स्त्रियों की कल्पनाएँ अधिक समीप होती हैं और प्रेम-विचार के लिए उनके पास अधिक कुर्मुत रहती है। मण्टेने (Montaigne) ने भी इसी बात की पुष्टि करते हुए यह मत प्रगट किया है कि प्रेम स्त्रियों का वह अनुपासन है जो उनकी छिराबों में उत्पन्न होता है।<sup>२१</sup>

समझौती सताव्दी के अधिकारों विविक्तियों ने निश्चयात्मक रूप से यह मत प्रगट किया है कि इच्छा एवं आनन्द दोनों ही स्त्रियों में अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।<sup>२२</sup> फेररंड (Ferrand) की राय में निस्सन्देह स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक भावुक होती है और प्रेम के दुष्परिणामों का प्रभाव स्त्री को ही अधिक पीड़ित करता है।<sup>२३</sup> स्त्री मनोवैज्ञानिक एलन के (Ellen Key) के मतानुसार स्त्री की प्रेम प्रवृत्ति मीन होकर भी अधिक बलवती होती है।<sup>२४</sup> किश के मतानुसार नारी में यौन-प्रवृत्ति इतनी प्रबल होती है कि जीवन के निश्चित काल तक अपनी मूल छविण द्वारा नारी प्रवृत्ति को प्रभावित करती रहती है।<sup>२५</sup>

नारी की यौन-प्रवृत्ति को लेकर मत-मतान्तर बने जा रहे हैं। एक दल की विचारधारा जहाँ नारी में यौन-प्रवृत्ति का प्राबल्य पुरुष से अधिक बताती है वहीं दूसरे दल की विचारधारा के अनुसार पुरुष में यौन प्रवृत्ति का प्राबल्य नारी की अपेक्षा अधिक होता है। एक तीसरी विचारधारा के अनुसार स्त्री और पुरुष दोनों ही में यौन-प्रवृत्तिमान रूप से पाई जाती है।<sup>२६</sup> नारी में पाई जानेवासी निष्क्रियता एवं छविमत्ता ही इस मत-मतान्तर के मूल में काम करती है। छवियों से उत्पन्न बने जाए इस विषय पर एक राय होना कठिन है किन्तु निश्चित रूप से काम प्रवृत्ति को लेकर मध्यम द्वारा जो विरलेषण प्रस्तुत किया गया है, वह छोटे में इस प्रकार है —

२६ साइको० टीक्स पृ० १६३।

२७ वही पृ० १६४, १६५।

२८ वही पृ० १६५।

२९ वही पृ० १६६।

३० वही पृ० १६६।

३१ वही पृ० २०।

३२ वही पृ० २०१।

३३ वही पृ० २०३।

मनुष्य की मूल शक्ति कामशक्ति है। इसके सुचारु रूप से प्रकाशन करने पर ही मनुष्य स्वस्थ रहता है। इसके प्रकाशन में बाधा होने से विभिन्नता तथा भग्न मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है। कामशक्ति के प्रकाशन की चार अवस्थाएँ हैं—

आत्म-प्रेम माता-पिता का प्रेम समझिमी प्रेम और विषम मित्रि प्रेम। ३४  
 कामशक्ति की बाधना है कि सभी मानसिक रोगों का प्रधान कारण प्रेम की मनो-वृत्ति में विकार का पैदा हो जाना है। विद्वत् प्रेम भावना ही रोप है। ३५ विद्वत्प्रियों के कारण यौन-उद्देश्य सक्षिप्त एवं निष्क्रिय रूपों में मिलता है। ३६ इन विद्वत्प्रियों में कामजन्म प्रिय पीड़न एवं कामजन्म आत्म-पीड़न का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ३७ विद्वत्प्रियाँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि यौन-प्रवृत्ति को कुछ मानसिक शक्तियों द्वारा रूढ़ होता पड़ता है जिनमें लग्ना और अग्नि प्रमुख हैं। ३८

कामशक्ति के मतानुसार यौन-कर्म की दृष्टि से कुछ पुरुष ऐसे होते हैं जिनका पुरुषों के प्रति ही लगाव होता है और कुछ स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जिनका लगाव पुरुषों के प्रति न होकर स्त्रियों के प्रति होता है। इस प्रकार की विरोधी यौन भावना को कामशक्ति द्वारा "इन्वर्तन" की संज्ञा प्रदान की गई है और उनकी इस प्रवृत्ति को परिणाम है।

कामशक्ति की एक शिष्टा हेमन का कथन है कि स्त्रियों को सम मित्रि रति भावना की दृष्टि से उनके अन्तर को व्यक्त करते हुए दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम के अन्तर्गत वे स्त्रियाँ आती हैं जो अपने उद्देश्य एवं आचरण दोनों ही में सर्वान्वी का प्रदर्शन करती हैं। उनकी धार्मिक बनाबट से भी यही व्यक्त होता है। उनकी कष्ट-ध्वनि भावों का अपना अपना उद्योगों का अधिकारित रह जाना इसके उदाहरण हैं। द्वितीय के अन्तर्गत वे स्त्रियाँ आती हैं जिनकी धार्मिक बनाबट तो मारी मुलम होती है किन्तु जिनका व्यवहार सर्वान्वी का प्रदर्शन करता है। यह सम मित्रि रतिधीनता या तो उपजावत्ता के अतिव्यवहार के अन्तर्गत बाह के जीवन में भी स्त्री मुलम आचरण के भीतर चलती रहती है या न्यूनाधिक रूप से सर्वान्वी आचरण प्रहम कर लेती है। ३९ इस प्रकार के प्रदर्शन द्वारा वे स्त्रियाँ अपनी सैमिक हीनता को बचाने का प्रयत्न करती हैं। ४० स्त्रियों का समझिमी रति-प्रेम विषम रतिमान प्रेम से कहीं अधिक मादुर एवं मर्मकर होता है। ४१

- ३४. आयु० मनो० पृ० १०८।
- ३५. वही पृ० १११।
- ३६. श्री ऐति० पृ० १६।
- ३७. वही पृ० १७।
- ३८. वही पृ० ४०।

- ३९. वही पृ० १४।
- ४०. ताद० पादु कुपम पृ० २२६।
- ४१. वही पृ० २२८।
- ४२. वही पृ० २६१।

प्राथम्य अवस्था बचपन की अपेक्षा कैतोर<sup>१</sup> काम तथा तदनुसार मारी-मनो-विज्ञान को समझने में अधिक-सहायक सिद्ध होती है। मनोविज्ञान के अध्ययन से हम मारी विषयक निम्न तथ्यों को ग्रहण करते हैं —

[ १ ] कैतोर का प्रारम्भ मनोवैज्ञानिकों ने १२-१३ वर्ष से माना है। लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा यह काल पहले से प्रारम्भ हो जाता है।<sup>४३</sup>

[ २ ] कैतोर काल के प्रारम्भ से आरम्भ-वेतना की भावना के साथ सज्जा और संकोच लड़कियों में अधिक होता है। यह लीर तथा कुछ मूल प्रवृत्तियों के शीघ्र विकास का फल होता है।<sup>४४</sup>

[ ३ ] लड़कियों में बर्षों की भाषा अधिक होती है और वे लड़कों से एक या दो वर्ष पूर्व ही तदनुसार प्राप्त कर लेती हैं।<sup>४५</sup>

[ ४ ] मासिक धर्म के प्रथम वर्तन के साथ ही लिंगों के सतानोत्पत्ति संबंधी सभी अवयव प्रौढ़ होने लगते हैं। प्रौढ़ता प्राप्ति के विभिन्न समय का कारण वयानुक्रम तथा वातावरण पर निर्भर करता है। गर्भ रेश में रहनेवाली लड़कियाँ अथवा बालिका रहन-सहन विषमपूर्ण होता है उनमें काम संबंधी प्रौढ़ता अधिक शीघ्र आ जाती है। ठंडे देश की लड़कियाँ अथवा जिन्हें अपने जीवन-साथन के लिये निरय कठिन भ्रम करना पड़ता है वे यह प्रौढ़ता दूसरों की अपेक्षा कुछ देर में पाती हैं।<sup>४६</sup>

[ ५ ] कैतोर में बालिका की आवाज पहले से अधिक मधुर एवम् कुछ भीमी हो जाती है, कभी कुछ अधिक नींद हो जाते हैं और मांस के बढ़ने से लीर के विभिन्न अवयव पहले से अधिक मोटे हो जाते हैं।<sup>४७</sup>

[ ६ ] मासिक धर्म के कारण स्तन तथा उदर के विकास से बालिका पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। उसकी सज्जा एवम् चिन्ता बढ़ जाती है। इस बात के आकार को छिपाने-से लिए वह कभी-कभी कमा-हीसा कर तथा झुककर चलने का प्रयत्न करती है। इससे उसमें कुछ चिक्चक कर चलने की आवश्यकता पड़ जाती है।<sup>४८</sup>

[ ७ ] प्रथम मासिक धर्म के साथ ही बालिका में वृद्धा एवम् डर की भावना का प्राकृ भाव हो जाता है। ऐसे समय में उसका चिड़चिड़ा और असामाजिक हो जाना

४३. सिस्सोर मनी० पृ० पृ० १६।

४४. वही पृ० २०।

४५. इतसाइ० पाकसाइ० पृ० २३७।

४६. सिस्सोर मो० पृ० पृ० ३१।

४७. वही पृ० ३३।

४८. वही पृ० ३६।

आवश्यक नहीं होता। उदासीनता आमतप तथा एकान्त के लक्षण भी इन्डियोपर होते हैं। ४४

[ ८ ] कैंडोर के प्राथमिक काम से ही वास्तिका के व्यवहार पर प्रभाव पड़ने लगता है। मानसिक अस्थिरता अधामाजिकता एकपु एकान्तवास के लक्षण इन्डियोपर होने लयते हैं। दूसरों द्वारा दिए गए कार्यों के प्रति जबकि इत कोव आमतप उदा सीनता अपने से बुरा तथा सगाव के प्रति एक प्रकार का द्वय पाव उचित होने लगता है। काम-सम्बन्धी बातों को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है, मान घुमाकर एक कोने में बैठने की आसत और मानुक्ततावन अवस्था अपना विद्रोह प्रयत्न करने के लिए वे प्रायः बाँडों में बाँधू से बाया करती हैं। ५

[ ९ ] कैंडोर काम से ही वास्तिकाओं में निम्न संवेग में २१ का प्रादु माव हो जाता है—

विन्या विन्या प्रायः कास्पनिक कार्यों से उत्पन्न होती है। सीम्यं पढ़ाई और विवाह अवका प्रेम ही इसके कारण होते हैं।

५४ भय का संवेग अजित होता है बर्नर अपने अनुभवों के आधार पर व्यक्ति इसे सीखता है। प्रायः भय के कारण व्यक्तिगत वस्तु विषयक अवका समाजिक होते हैं। मानसिक अपरिपक्वता अवका मातावरण के प्रभाव से स्त्रियों में भय की भाषा अधिक होती है।

इंयः द्वय का रूप समाजिक होता है। यह प्रायः कोव से उत्पन्न होता है। बाबाए सामाजिक अवरोध अवका प्रतिस्मिता इसका कारण होती है।

कुष्ठा के कारण प्रायः स्त्रियों में इंय की भावना अधिक पाई जाती है। कोयः स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति में अवरोध उत्पन्न होने पर कोव का उदय होता है। कोव का कारण प्रायः सामाजिक दुष्ठा कष्ट है। किन्तोः वास्तिकाए अपनी इच्छा के अवरोध व्यय अपमान अवका चिढ़ाए जाने पर कोवित हो जाता करती हैं।

ईर्ष्या ईर्ष्या का सम्बन्ध किसी एन्ध्रय वस्तु से होता है। इसका कारण व्यक्तिगत रक्षता है। प्रतिस्मिता अवका बराबरी करने की भावना ईर्ष्या के मूल में

४९ शिरोर मी० पू० पृ० १९, ४०।

५० किप्रोर मनो० पू० पृ० ४१ से ४२।

५१ इनताद० पाक साद० पृ० ४२ से ४९

१४२ से १४०, १९१ से १९८,

६२० से ६२० तथा किप्रोर मनो०

पृ० पृ० ६५ से ७६ तक।



होती है। इसकी प्रतिक्रियाएँ प्रायः शारीरिक होती हैं। यह निम्ना का रूप ग्रहण कर लेती है। स्त्रियों में निम्ना करने की आसत ईर्ष्या का ही परिणाम है।

**चिड़:** कैसन (Casson) के मतानुसार दूसरों का विविध व्यवहार चिड़ का कारण होता है। किछोर कास में चिड़ने की प्रवृत्ति कम होती है परन्तु प्रीड़ हो जाने पर अथवा बुझाया आ जाने पर यह प्रवृत्ति स्वभाव का एक अंग बन जाती है। मनोनुकूल वातावरण के न मिलने पर स्त्रियाँ प्रायः चिड़ बिड़ी हो जाया करती हैं।

**जिज्ञासा:** यह प्रवृत्ति बचपन में बहुत प्रबल होती है। मानसिक विकास के साथ ही जिज्ञासा के स्तर में भी वृद्धि होती है। बुद्धियों के कारण प्रायः जिज्ञासा का दमन करना पड़ता है जो कुछ में परिचित हो जाती है। सामाजिक वातावरण स्त्रियों की जिज्ञासा-पूर्ति में बाधक होता है इसलिये गरी की जिज्ञासा वृत्ति समित वासनाओं अथवा कुछ में परिचित हो जाती है।

**स्नेह:** स्नेह के मूल में आनन्द की भावना रहती है। बचपन की अपेक्षा किछोर में यह संबंध अधिक प्रबल होने लगता है। निर्यजन के कारण अथवा स्नेह प्रकाशन में अवरोध उपस्थित होने पर स्त्रियों में विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

**आत्मन्ध:** आत्मन्ध उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य पर बहुत-कुछ निर्भर होता है। पर साथ ही मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार चार प्रकार की अन्य स्थितियाँ भी आत्मन्ध की उपसन्धि में सहायक होती हैं। प्रथम योग्यतानुसार वातावरण की स्थिति है द्वितीय इंटी की बात को पहचानने की तृतीय अप्रत्याशित स्थिति और चौथी स्थिति यह है जिसके द्वारा अपनी उत्कृष्टता का आभास मिलता है। हीनता अन्यी स्त्रियों के आत्मन्ध में बाधक होती है।

प्रायः यह देखा जाता है कि स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक भावुक होती हैं। किसी सन्तारमक भावे में वे सौम्य आ जाती हैं किन्तु प्रीड़ता प्राप्त करने पर स्त्रियाँ अपने संबंधों पर पुरुषों की अपेक्षा अधिक निर्यजन रखती हैं।

[ १ ] व्यक्तिगत स्त्रियों का आरम्भ गरी में किछोर काल से ही हो जाता है। सड़कियाँ लोथों को यह विज्ञप्तिमा चाहती हैं कि वह स्त्री-मुर्खों से सम्पन्न हैं। उनका अधिकतम समय अपने शरीर को सजाने में जाता है। अपने को सुन्दर और आकर्षक दिखाने के लिए वे अपने शरीर की स्वच्छता बोलने के डंग तथा हाव-भाव पर बहुत ध्यान देती हैं।<sup>१५</sup> वस्त्रों के सम्बन्ध में वे अपनी गी या अन्य स्त्रियों का अनुसरण

करती हैं। कभी-कभी ये प्रचलित रीति के प्रतिक्रम भी पसी जाती हैं परन्तु शीघ्र ही प्रचलित रीति के अनुसार चलने लगती हैं।<sup>१३</sup> उनमें महत्वाकांक्षा की मात्रा कम किन्तु स्वप्नदर्पिता अधिक होती है। कैथोर काल उनके लिए अपनी तरफों में डूबे रहने का समय होता है। कैथोर के प्रारम्भ में तरंगें बहुधा सुखान्त ही हुआ करती हैं। मध्य कैथोर में कल्पनाओं का सम्बन्ध निराशा बिता भय और निराशा से अधिक होता है।<sup>१४</sup> मन-तरंगों में डूबी रहने का कारण वे प्रायः कोई-कोई-सी लगती हैं।

[११] मनोरंजन सम्बन्धी कवियों की दृष्टि से भी कथोर काल से ही तारी में रचि भेद पाया जाता है। छिटके के मतानुसार सङ्कटियाँ प्रत्येक अवस्था में सङ्कटों से अधिक वस्तुएँ एकीकृत करती हैं। सङ्कट-वृत्ति के साथ-साथ उनमें शृंगार-सौख्य-प्रसाधनों को एकत्रित करने की वृत्ति पाई जाती है।<sup>१५</sup> इसके साथ ही उनकी रचि कैथोर के आरम्भ-काल से ही संवेगात्मक भावनाओं से पूर्ण साहित्य के पढ़ने की ओर जाती है। हिन्दू के अनुसार सङ्कटियाँ रहस्यपूर्ण कहानियाँ, उपन्यास तथा प्रेम सम्बन्धी कहानियाँ पढ़ने में अधिक रचि रखती हैं।<sup>१६</sup> सगीत एवम् गूरु के प्रति भी उनकी रचि अधिक रहती है। काव्य की संवेगात्मक भावनाओं का प्रभाव सङ्कटियों पर अधिक पड़ता है।

[१२] मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार प्रेम के आदर्श का विकास बचपन से ही प्रारम्भ हो जाता है। १७ वर्ष की अवस्था तक सङ्कटे-सङ्कटियाँ आपस में सेमना पसन्द करते हैं। आठवें वर्ष के प्रवेश-काल से प्रायः सङ्कटी सङ्कटियों के बीच सेमना पसन्द करती हैं। १४ वें वर्ष के बाद प्रायः दोनों का आकर्षण जागृत होता है। बन्ट एरिन्ड के अनुसार बचपन से ही सङ्कटे व सङ्कटियाँ एक-दूसरे के प्रति जनमान में आकर्षित होने लगते हैं। किथोर के सामने यदि यह पूर्ण निश्चित आदर्श न होता तो प्रथम मेंट पर सम्पूर्ण प्रेम का उत्पन्न होना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से न होता।<sup>१७</sup> मध्य कैथोर में प्रेम समीक्षणी और विपरीतगी दोनों रूपों में पाया जाता है। सङ्कटियों की सङ्कटों के प्रति सखि भावना अधिक बढ़ी और अधिक समय तक रहती है।<sup>१८</sup>

[१३] जिन भेद की दृष्टि से मनोवैज्ञानिकों के प्रयोगों में मायी-हीनता के परम्परागत सिद्धांत को गलत बताया है। रंज-भोज की मात्रा किरणों में पुष्पों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है।<sup>१९</sup> विवरण-विस्तार एवम् ध्यान-परिवर्तन को तीव्रता की दिशा

१३ किथोर मनो० पू० पृ० ७५७२। १७ बही पृ० १४७।

१४ बही पृ० ८२।

१८ बही पृ० १४७।

१५ बही पृ० १०५।

१६ विक० साह० पृ० १४७।

१७ बही पृ० १४५।

में भी वे पुरुषों से आते हैं।<sup>१६</sup> अनेक बौद्धिक प्रयोगों में भी नारी पुरुषों से अग्रणी है। जहाँ तब शत्रुज्ञान अथवा भाषा का सम्बन्ध है स्त्रियाँ शीघ्रबलास से प्रोढ़त्व तक पुरुषों से आगे ठहरी हैं। विभिन्न प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि स्कूल-पूर्वावस्था में लड़कियों का मध्यज्ञान लड़कों से अधिक रहता है वे वाक्य-रचना का प्रारम्भ भी लड़कों से पूर्व करती हैं और वाक्यों में अधिक शब्दों का प्रयोग करती हैं। पठन क्रिया में भी उनकी प्रवृत्ति द्रुत होती है।<sup>१७</sup> स्मरण-शक्ति के प्रयोगों में भी वे लड़कों से आगे हैं।<sup>१८</sup> जहाँ तक विद्यालयीन प्रवृत्ति का प्रश्न है, उन्हें लड़कों से अधिक सक्रियता मिलती है।<sup>१९</sup> उच्च अथवा हाइकोश नेब के अनुसार सम्पत्ति व्यापारिक मामलों एवम् खेल कूद आदिमियों के वातपीठ के विषय अधिक रहते हैं अन्य स्त्रियाँ तथा कपड़े स्त्रियों की वातपीठ के सामान्य विषय हैं। सोपों के बारे में स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक वातपीठ करती हैं।<sup>२०</sup> आदर्श ज्ञान एवम् सामाजिक हाइकोश के मामलों में भी लड़कियाँ प्रयोगों में लड़कों से आगे पाई गई हैं।<sup>२१</sup>

संवेगात्मक भावों की दृष्टि से लड़कों में आक्रामक वृत्ति दुस्साहस अथवा निवेदन को ठुकराना हँसने-चिढ़ाने एवम् क्रूर-खींच करने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है जब कि लड़कियों में परोक्षता अंतर्मुखी व्यक्तिकार केतकुर से कतराना बड़ों के निकट रहने का प्रयत्न प्रशंसा-आदि एवम् सरलतापूर्वक समर्पण कर देना पाया जाता है।<sup>२२</sup> लड़कियाँ लड़कों की तरह सांसारिक कमकारियों का प्रयोग न कर, यातात्मक उपनामों का प्रयोग करती हैं। अपनी सामाजिक मर्यादा पर आघात होते देख कर वे पुरुषों की अपेक्षा शीघ्र ज्योति हो जाती हैं और द्वेष की भावना भी उनमें अधिक होती है।<sup>२३</sup>

स्वप्नों के अध्ययन की दृष्टि से भी पता चलता है कि लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा विविध प्रकार के सपनों के स्वप्न और साथ ही अपने परिवार तथा घर के सपने अधिक मात्रा में देखा करती हैं।<sup>२४</sup> जहाँ तक अंतर्मुखी और बहिर्मुखी प्रवृत्ति के प्रश्न का प्रश्न है मुख्य भाव मुहपट स्वप्न के सपनों पर कार्य करनेवाले सहायता ग्रहण करने में हिचकिचातेवाले सामाजिक अवसरों पर स्वयं को पृष्ठ-भूमि में रखनेवाले, पहनावे के मामले में तरह-तुलनेवाले पुरातन-पन्थी और आत्म-निरीक्षणशील होते हैं जब कि

१०. किष्कि-साह-पृ० ६४८।

११. वही पृ० ६४१।

१२. वही पृ० ६४४।

१३. वही पृ० ६४१।

१४. वही पृ० ६४६।

१५. वही पृ० ६४८।

१६. वही पृ० ६४१।

१७. वही पृ० ६४३।

१८. वही पृ० ६४३।

मित्रों में<sup>१</sup> के समय भवरा जानेवासी बिना योग्य कारण के उद्वेग-पुनः अनुभव करनेवासी साधारण मामलों के निर्णय में भी हिचकिचाहट अनुभव करनेवासी सोच विचार कर काम करनेवासी और जीभता से थोटा अनुभव करनेवासी होती हैं।<sup>२</sup>

उक्त विवेचन की दृष्टिगत रखते हुए जब हम भारी के मनोबैज्ञानिक विकास पर दृष्टि डालते हैं तो वास्तव्यपन से जायज और उमरे बाद की माय्यमाएँ यही प्रगट करती हैं कि वहाँ तक भारी के मनोबैज्ञानिक विकास का प्रश्न है मनोविश्लेषण द्वारा उसकी कई मुक्तियाँ स्पष्ट हो चुकी हैं। मनोयौनिक एवं मनोबैज्ञानिक तथ्यों में यह सिद्ध कर दिया है कि भारी-हीनता की परम्परागत धारणा वास्तव में परम्परागत विश्वास मात्र है बैज्ञानिक सत्य नहीं। शैक्षणिक सांस्कृतिक जगत्वा अन्य प्रकार की मुक्तिवाजों के समाज में धार्मिक गठन के अन्तर तथा बातावरण वैमिश्र के प्रभाव से ही भारी के व्यक्तित्व विकास एवं संवेगात्मक स्वरूप में कुछ वैमिश्र दृष्टि-रोचक होता है, किन्तु वह हीनता नहीं है। जहाँ वह समानता की भूमि पर, सम बातावरण में सम मुक्तिवाजों का साम डठा रही है वहाँ उसने मनोबैज्ञानिक रूप से परम्परागत हीनता के विद्वान्ध को उजाड़ फेंका है।

## आध्यात्मिक विकास

भारतीय भारी के आध्यात्मिक विकास पर दृष्टि डालते समय हमारा ध्यान उस विचार-चिन्तन एवं जीवन-दर्शन की ओर आकर्षित होगा है जिसे आध्यात्म-शास्त्र की सजा प्रदान की जाती है। आध्यात्म-शास्त्र चिकित्सा-शास्त्र के समान बहुमुख्य है। जिस प्रकार चिकित्सा-शास्त्र रोग रोग-निदान आरोग्य तथा श्रैय्य-इन चार तथ्यों से यथार्थ निरूपण में प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार आध्यात्म-शास्त्र बुद्ध बुद्ध-हेतु, मोक्ष तथा मोक्षोपाय इस सिद्धांत बहुमुख्य को मूलमूल मानकर इनकी व्याख्या में यथा शक्ति प्रयत्नशील रहता है।<sup>३</sup> साथ ही भारतवर्ष में दर्शन तथा धर्म का उत्पन्न तथा भारतीय जीवन का गहरा सम्बन्ध है। विविध ताप से उत्पन्न जनता की धान्ति के लिए, क्लेशमय ससार से आत्यन्तिक बुद्ध-निवृत्ति करने के लिए ही दर्शन-शास्त्र का आगिमात्र हुआ है। दर्शन-शास्त्र द्वारा सुचिन्तित आध्यात्मिक तथ्यों के ऊपर ही भारतीय धर्म की दृष्टि प्रतिष्ठित है।<sup>४</sup> अतः इस चिन्तन एवं विचारधारा के अन्तर्गत भारी की स्थिति पर विचार करना भी आवश्यक-सा है क्योंकि काव्यान्तरगत जानबाने भारी-निन्द्या एवं प्रशंसा के अनेक प्रसंगों का भूज इन्हीं विचारधाराओं में निहित है।

१. मित्र० साह० पृ० १७१।

२. भारतीय दर्शन पृ० २०।

३. वही पृ० ११।

साधारणतः जीवन के चार पुरुषार्थ—अर्थ, धर्म, मोक्ष और नाम—माने गए हैं। इन चार पुरुषार्थों की साधना से ही जीवन सफल होता है। परन्तु भारतीय चिन्तन क्षेत्र में प्राणी मात्र के जीवन-साधन के लिए दो मार्गों—प्रेमो मार्ग तथा श्रेयो मार्ग—का निर्देशन है।<sup>१</sup> प्रेमो मार्ग में मनुष्य रमणीय विषयों को आर बाह्य होकर सत्कार में प्रवृत्त होता है। इस प्रवृत्ति के मूल कारण राग तथा द्वेष हैं। श्रेयो मार्ग वास्तव में विषयोन्मुखी इन्द्रियों को बाह्य पदार्थों से बलात् जीवन्मूर्च्छी बनानेवाला मंगलमय मार्ग है जिसके लिए आत्म-संयम तथा सुखि की निराला आवश्यकता है।<sup>२</sup> भारतीय जन-जीवन को हम द्वारा अनुमाणित रहा है, इन्हीं दो मार्गों का अनुसरण करता आया है।

प्रेमो मार्ग का अनुसरण करते समय जीवन सांसारिक रहा है और इस सांसारिकता के बीच नारी की अवहेलना करना असम्भव है। श्रेयो मार्ग का रास्ता वास्तव में नारी-विरोध का रास्ता है। विषयोन्मुखी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाने के लिए जिस आत्म-संयम एवं सुखि की निराला आवश्यकता है उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए बाह्य पदार्थों से विषयोन्मुखी इन्द्रियों का मुक्त करना भी आवश्यक है और इन बाह्य पदार्थों में नारी का आकर्षण अबका उसका सामीप्य भी श्रेयो मार्ग के लिए बाधक है। अतः प्रेमो मार्ग का दृष्टि-भेद नारी के मूल्यांकन में भी भेद-दृष्टि को जन्म देता है। उसकी प्रसंसा अथवा निन्दा का द्विविध स्वस्व ही जीवन-मार्ग को इसी द्विविधता का परिणाम कहा जा सकता है। दूसरे सन्तों में हम यह कह सकते हैं कि जहाँ प्रवृत्ति-मार्ग प्रसंसामुक्त है वहाँ निवृत्ति-मार्ग निन्दापरक है।

भारतीय व्याख्यान के अनुसार विश्व की एकमात्र सत्ता ब्रह्म अथवा पुरुष है जो मायावश अपने को दो रूपों में विभक्त कर लेता है। ये दो रूप हैं—बीज तथा प्रकृति या आत्म और अनात्म। आत्म सक्रिय है और अनात्म निष्क्रिय इसलिये भारतीय दार्शनिकों ने आत्म को पुरुष और अनात्म को नारी रूप में देखा है। पुरुष-रूप आत्म अपना विस्तार जिन क्रियाओं द्वारा करता है उनमें प्रजनन प्रमुख है। अतः प्रजनन के हेतु वह नारी-रूप अनात्म के सघ की कामना करता है। प्रकृति को ईश्वर की मायावशक्ति कहा गया है तथा प्रकृति का अधिपति ईश्वर मायी कहा जाता है।<sup>३</sup> प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही विश्व की सृष्टि उत्पन्न होती है। दोनों का संयोग ही सृष्टि का उत्पादक है। प्रकृति के जड़ होने से यह सत्कार केवल सघ से उत्पन्न नहीं हो सकता न स्वभावतः निष्क्रिय पुरुष से ही।<sup>४</sup> पुरुष प्रकृति के संयोग का

१ कठोपनिषद् १।२।२।

४ भारतीय दर्शन पृ. ४६।

५ बही पृ० ३१२।

६ बही पृ० ३१२।

इसका इतिहास बना रहता है कि वह उससे विवेक-ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष की सिद्धि करता है।<sup>१०</sup> इस प्रकार वहाँ एक ओर भारतीय दर्शन की व्याख्यात्मक विचारधारा नारी-स्वरूपा प्रकृति को मोक्ष-भाग की भाषा में समझती वहीं दूसरी ओर यह विचार भी व्यक्त किया गया है कि पुरुष स्वभावतः असंग और मुक्त है परन्तु अधिकतर के कारण समाज प्रकृति के साथ संयोग निष्पन्न होता है। साम्य-सूत्र के अनुसार अपवर्ण का स्वरूप है प्रकृति पुरुष का परम्पर मिश्रण होना या एकाकी होना अथवा पुरुष की ही प्रकृति से असंग स्थिति।<sup>११</sup>

प्रकृति को ईश्वर की माया-शक्ति कहा गया है। अतः चिन्तन-क्षेत्र में नारी को भी माया के रूप में देखा गया है। माया के सम्बन्ध में भी काफी मतभेद है। डॉक्टराचार्य ने माया तथा अविद्या शब्दों का प्रयोग समानार्थक रूप से किया है।<sup>१२</sup> परन्तु परवर्ती चार्जनिकों ने इन दोनों शब्दों में सूक्ष्म अर्थ भेद की कल्पना की है। परमेश्वर की जीव-शक्ति का नाम माया है। माया रहित होने पर परमेश्वर में प्रवृत्ति नहीं होती और न वह जगत् की सृष्टि करता है। यह अविद्यारमिका जीव-शक्ति 'अव्यक्त' कही जाती है यह परमेश्वर में आधित होनेवाली महा शक्ति हृदिभी है जिसमें अपने स्वरूप का न जानने वाले सारी जीव समन किया करते हैं। त्रिगुणात्मिक माया-ज्ञान विरोधि भाव रूप प्रकाश है। वह अभावरूपा नहीं है। माया न तो सत है, न असतः। इन दोनों से विसृज्य होन के कारण उसे 'अनिर्वचनीय' कहते हैं।<sup>१३</sup> माया की दो शक्तियाँ होती हैं आकर्षण तथा विक्षेप। आकर्षण-शक्ति ब्रह्म के कुछ स्वरूप को मानों डक भेटी है और विक्षेप-शक्ति उस ब्रह्म में आकाशादि प्रपञ्च उत्पन्न कर देती है।<sup>१४</sup> सञ्ज्ञाधारककार की प्रवृत्ति में कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म का उपादान है परन्तु विवरणकार मायाधारसिद्ध ब्रह्म को उपादान मानते हैं। तत्त्व-निर्णयकार ब्रह्म और माया दोनों को पर सिद्धांत-मुक्त्यवसीकार केवल माया-शक्ति को जगत् का उपादान बतलाते हैं। पञ्चमी के मत से कुछ सत्त्वमयी है परन्तु अविद्या रजोमुल और तनोमुल के प्राधान्य होने पर होती है।<sup>१५</sup> माया विषयक मत-मत्तान्तरों के परिणाम-स्वरूप ही नारी की अविद्याहृदिभी मायाविनी आदि कह कर उसकी निन्दा की गई है और कहीं उसे प्रकृति अथवा साध एवम् कल्याण की साधनमूला ईश्वरी आदि कह कर उसकी चन्दा हुई है।

७ भारतीय दशन पृ० ३३०।

१० वही पृ० ४२३।

८ वही पृ० ३३८।

११ वही पृ० ४२५।

९ वही पृ० ४२२।

१२ वही पृ० ४२४।

मृति स्मृति आयम मागधत परम्परा आदि ने सबाकर शास्त्रात्य आदर्शवादी राजानियों की विचार-परम्परा एक नारी विपयक आध्यात्मिक इष्टिकोष पर विचार करने से यह बात होता है कि मोक्षोपाय के नाम पर प्रवृत्ति एवम् भ्रष्टृति ने मार्ग-भ्रम से ही नारी विपयक भेद-दृष्टि को जन्म दिया है। ऋग्वेद का नारी विपयक इष्टिकोष निम्नारम्भक गृहा है। अदिति उषा इन्द्राणी इसा भारती होमा सिनीवाली अदा पूरुषा आदि वैदिक देवियाँ अनेक उत्सवों की अतिथिनी हैं। पंडित रामगोविन्द त्रिवेदी के मतानुसार ऋग्वेद में अदिति का उल्लेख ८० बार हुआ है और वही उसे सर्वव्यापितमती सर्वतातिम् विदधन्मया आकाश अन्तरिक्ष माता पिता पुत्र और समस्त देव के रूप में देखकर, पापों से बचानेवाली तथा यज्ञ-वर्धिका माना गया है।<sup>१३</sup> अदिति के साथ दिति का ऋग्वेद में तीन ही बार उल्लेख है परन्तु सर्वव्यापित देवी ही मानी गई है ईश्वरमाता नहीं।<sup>१४</sup>

ऋग्वेद में सरस्वतीदेवी को पतिउपावनी, यनवात्री उत्प्रेरिका विभिका और ज्ञानदात्री कहा गया है। भारती को यमु के यज्ञ में हवि का उद्यम करनेवाली देवी को यज्ञ में बुलानेवाली और सरयवाहिनी माना गया है।<sup>१५</sup> स्थियाँ दो प्रकार की थी—एक ब्रह्मवादिनी दूसरी गुरुत्त विवाह करनेवाली। जो ब्रह्मवादिनी थी वे हवन करती थी देव पक्षी थी और जिसका नाम कर जाती थी। उनके लिये कुछ अभिहित नहीं था वे सबकी अभिवारिणी होती थी।<sup>१६</sup> अतः यह स्पष्ट है कि अदितियों का मार्ग भेद-दृष्टि का मार्ग नहीं था। आध्यात्मिक इष्टिकोष से नारी-आदि को हेय निम्ननीय व्यवसाय अविद्या अपित्री नहीं माना गया था। डाक्टर बेनीप्रसाद के मतानुसार उत्तर वैदिक काल में ऋग्वेद की अपेक्षा जीवन का आनन्द कम हो गया था और उपस्था की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। जब सप्ताह-स्वाय एक आर्षण होने लगा तो स्त्री को इस त्याग में सब से बड़ी बाधा है अनावर की दृष्टि से देखी जाने लगी।<sup>१७</sup> स्वामी विवेका नन्दजी का कहना है कि सत्यास वेद प्रतिपादित है परन्तु वैदिक सिद्धांत के अनुसार सत्यासाधन में स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं रहता।<sup>१८</sup>

निगम-मार्ग की तरह ही आयम-मार्ग में भी स्त्री-पुरुष के बीच भेद भाव जैसी बात नहीं है। डाक्टर हुकारीप्रसादजी त्रिवेदी के कथनानुसार सभी जातम अपने-अपने उपास्य देव को परम उत्सव के रूप में स्वीकार करते हैं। देवता की शक्ति या शक्तियों में और ईश्वर की ब्रह्म-शक्ति तथा क्रिया-शक्ति में विश्वास करते हैं। भयत को

१३ वैदिक साहित्य पृ० ६४।

१४ वही पृ० ६६।

१५ वही पृ० ७६।

१६ वही पृ० ७६।

१७ हि० पु स० पृ० ७६।

१८ भारतीय नारी पृ० ६४।

परम तत्त्व का परिणाम मानते हैं। भगवान की क्रमिक उत्पत्ति आदि का समर्थन करते हैं। माया के कोश ननुक की कल्पना करते हैं। उपासना में सभी वर्षों और पुरुष तथा स्त्री दोनों का अधिकार मानते हैं।<sup>१०</sup>

स्वतंत्रास्वतरोपनिषद् में ईश्वर के रूप की सुन्दर कल्पना करते हुए उसे 'तू स्त्री है तू पुरुष है, तू ही कुमार या कुमारी है' आदि सम्बोधित किया गया है।<sup>११</sup> देवी मायवत् में परमात्मा की पराशक्ति का उत्कृष्ट विकास करते हुए देवी को विष्णु, ब्रह्मा आदि का गृह्य कहा गया है।<sup>१२</sup> इतना ही नहीं योनासा-वर्णन में मसी प्रकार से सिद्ध कर दिया है कि मूल प्रकृति से स्त्री-पुरुष का विशेष सम्बन्ध है। सप्तसती एवम् देवी मायवत् के अनुसार समस्त विद्या और सब स्त्रियाँ देवी की ही रूप हैं। सभी प्राण्य देवियाँ और समस्त विश्व-स्थित स्त्रियाँ प्रकृति माता की ही संसृष्टिणी हैं।<sup>१३</sup>

छाक्त सम्प्रदाय के अंतर्गत भी स्त्री-तत्त्व की उपासना का विधान है। ईश्वर ने जो स्त्री-तत्त्व उत्पन्न किया वही प्रकृति के नाम से सम्बोधित हुआ। उसे ही माया महामाया अथवा कालि के नाम से पुकारते हैं। उसका तथा ब्रह्म का स्वभाव एक ही माना गया है। जैसे ब्रह्म अनादि और अनन्त है वैसे ही प्रकृति भी। ससार में बितने स्त्री-तत्त्व किंवा स्त्रियों के स्वरूप हैं सब उसी अनादि प्रकृति के स्वरूप माने गये हैं।<sup>१४</sup> इसी प्रकार भी वैष्णव सम्प्रदाय के अंतर्गत लक्ष्मी को परमात्मा की शक्ति माना है। लक्ष्मी नित्य मुक्ता है। नाना रूपधारिणी भगवान की भार्या है। ब्रह्मा आदि अग्न्य देवतागण शरीर के कारण होने से क्षर' है। परन्तु लक्ष्मी विम्व विम्वहवति होने से 'अक्षर' है। परमात्मा देव काय तथा गुण—इन तीनों वस्तुओं के द्वारा अपरिच्छिन्न है परन्तु लक्ष्मी गुण में परमात्मा से स्थूल होकर भी देव और काय की दृष्टि से उनके समान व्यापक है।<sup>१५</sup>

छक्त विचारधारियों के अंतर्गत लारो-अवहेतना अथवा भेद-दृष्टि का व्यवहार दृष्टिगोचर नहीं होता। वास्तव में भेद-दृष्टि का उदय अथवा स्त्रियों की हीनता का प्राबुर्भाव बौद्धधर्म के पतनकाल में ही हुआ। स्वामी विवेकानन्दजी की विचार-धारा के अनुसार, बौद्धधर्म दिष्ट-अध या। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक पीढ़े अक्षरवारी दिष्ट सम्मायास्पद हो गया। जिसका एक अनिवाय फल यह हुआ कि दिष्टगियों का स्वान दिष्टगों की अपेक्षा निम्न हो गया और इस धर्म की यह

१०. मध्य-धर्म साधना पृ० ३७।

११. विश्व-धर्म-वर्णन पृ० ३६।

१२. वही पृ० १६८।

२२. कात्यायन मारी-धर्म पृ० २३।

२३. विश्व-धर्म-वर्णन पृ० २१२।

२४. भारतीय दसम् पृ० ४८१, ४८२।



अभिमानास्पद विवेकता ही उसकी पुर्बलता का मुख्य कारण बन गई।<sup>१५</sup> जनिमों के दिगम्बर-सम्प्रदाय द्वारा भी यह व्यक्त किया गया कि स्त्रियों को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। पुरुष का जन्म लेकर ही स्त्रियों के लिये मोक्ष-प्राप्ति की समाप्ति है।<sup>१६</sup>

पार्श्व-दशन द्वारा यह भावना व्यक्त की गई कि यही मोक्ष आत्मा का दीक्षा-रूपत है। इसके बाद परमोक्त नामक कोई वस्तु नहीं है यह धरीर ही आत्मा है मरण ही मुक्ति है। अतएव जब तक इस धरीर में प्राण है तब तक मुक्त प्राप्ति की चिन्ता करना चाहिए। जब कोई पुण्यार्थ नहीं है। मानव-जीवन के लिए 'काम' ही पुण्यार्थ है।<sup>१७</sup> यह प्रतिक्रिया यज्ञानुष्ठान एवम् उपस्थाचरण के कमस्वरूप ही उत्पन्न हुई थी। अतः ऐहिक सुखवाद पार्श्वों के अनुसार प्राचीन मानव का प्रधान लक्ष्य है। पार्श्वों ने मानव-जीवन को विगुप्त होने से बचाया और पारलौकिक सुख की मृग मृगता में अपने बहुमुख्य धर के व्यर्थ गमानेवाले अनेकों लोगों के सामने इस जीवन को सुखमय बनाने का ठोस उपपेक्ष दिया।<sup>१८</sup> स्वभावतः आधिभौतिक सुखवाद का समर्थक होने के कारण यह मत मोक्ष एवम् परलोक के नाम पर कचन एवम् कामिनी को माना माननेवालों का विरोधी रहा और नारी के हित में एक स्वस्थ दृष्टि कोन ही साबित हुआ।

आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में जब ज्ञान-मार्ग एवम् योग-मार्ग का बंका बचने लगा तो नारी की स्थिति पुनः निम्नारम्भ हो उठी। पातञ्जल-योग-दर्शन का पतुष्पूर्व है हेय हेय हेतु, हान और हानोपाय की चर्चा करते हुए अनापत्त दुःख को हेय मानता है।<sup>१९</sup> दृष्टा एवम् दृश्य का संयोग हेय हेतु है।<sup>२०</sup> उसका हेतु बहिष्ठा है।<sup>२१</sup> बहिष्ठा के अभाव से जो संयोग-भाव है वही हान है और वही दृष्टा कैवल्य है।<sup>२२</sup> अविप्सवा विवेकव्याप्ति हान का उपाय है।<sup>२३</sup> योगों के अनुष्ठान द्वारा बहुविक्रम होने से विवेकव्याप्ति पचन्त ज्ञान-वीति होती रहती है।<sup>२४</sup> जाने चल कर जब पातञ्जल-योग दर्शन की विचार प्रमानता का स्थान प्रक्रिया-अमानता ने ग्रहण कर लिया तो यम के नाम पर ब्रह्मचर्य पर और दिया जाने लगा। अतः ब्रह्मचर्य-पालन को स्त्री-व्रतन स्त्री-निन्दा आदि का रूप मिला है।<sup>२५</sup>

१५. भारतीय नारी पृ० १३ १४।	३१. बही पृ० १६८।
१६. धर्म-संस्कृति पृ० ३६२।	३२. बही पृ० १६२।
१७. भारतीय दर्शन पृ० १३५।	३३. बही पृ० १७०।
१८. बही पृ० १३७।	३४. बही पृ० १७३।
१९. पार्श्वल योग-दर्शन पृ० १३२।	३५. मध्य-वर्ग-साधना पृ० ७४।
२०. बही पृ० १३३।	

भक्ति-भाव का उदय जो निर्गुण एवम् सगुण ब्रह्म के रूप में प्रकट हुआ था पूर्ववर्ती धर्म-दर्शनों पर ही आधारित था। सगुण उपासना ने पौराणिक अवतारों को केन्द्र बनाया और निर्गुण उपासना ने योगियों अर्थात् भाव-मयी साधकों के निर्गुण परब्रह्म को। पक्षी साधना ने हित्कृति की बाह्याचार की शुद्धता को आन्तरिक प्रेम से मीन कर रसमय बनाया और दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुद्धता को ही बुर करने का प्रयत्न किया। एक ने शास्त्र का सहारा लिया दूसरी ने अनुभव का एक न भङ्गा को पक्क-अद्वय माना दूसरी ने ज्ञान को। पर आन्तरिक प्रेम-निवेदन दोनों को दृष्ट था अनेक भक्ति-दर्शनों को साम्य भी।<sup>३६</sup>

निर्गुण भक्ति ने माया को 'छाँनी' तो माना ही पर नारी को भी 'विकार' समझ कर उसकी निन्दा की। वैभक्त जीवन को शास्त्रत जीवन की ओर 'सहज' रूप से अपसर करनेवाला स्वीकार किया और साधना में वैभक्त तथा नित्य के बीच कोई विरोध न मान कर भी वे नारी-भिर के मार्ग का परिणाम न कर सके। इसका कारण इन भक्ति की ज्ञानपरवृत्ति ही मानी जा सकती है।

वैष्णव-दर्शनो में ज्ञान की अपेक्षा मोक्ष-साधन में भक्ति की ही प्रधानता है। अतः भावाभाव का सहज भक्ति-विरोधी होने से सर्वत्र समभावेन किया गया है।<sup>३७</sup> भक्तान में जितने सम्बन्ध की कल्पना हो सकती है उनमें कान्ता-भाव का प्रेम ही श्रेष्ठ माना गया है।<sup>३८</sup> भक्तों नारायण की शक्ति है। शक्ति निषेध व्यापाररूपा होती है। स्त्री में इसी शक्ति का प्राधान्य है। इसीलिए स्त्री निषेध व्यापाररूपा वा अपने आप को समर्पक करके भी शार्ङ्ग होती है। कान्त के लिए आत्म-समर्पण की भावना चरम सीमा पर पहुँचती है। यही कारण है कि भक्त कान्ता-भाव के लक्षण को इतना अद्भुत समझते हैं।<sup>३९</sup> इसीलिए भक्तान न कहा है 'हे उदय मेरी सुरङ्ग भक्ति मुझे बिना प्रकार प्राप्त कर सकती है उस प्रकार न योग न साधन न धर्म न स्वाध्याय न तप और न ज्ञान ही करा सकता है।' अतः 'हे उदय अब तुम श्रुति स्मृति श्रुति निवृत्ति श्रोतव्य और श्रुत—सबका परिणाम करके अनन्यभाव से समस्त बेहवारियों के आरम्भ-स्वरूप एक मेरी ही शरण में आ जाओ और मेरे आश्रित होकर सर्वथा निर्भय हो जाओ।' इतना ही भक्ति की महिला के साधन-साध कान्ता भाव का अङ्ग भी प्रतिपादित होता है और भक्ति नारी-गीत का राजपथ सिद्ध होती है।

३६ मध्य० धर्म-साधना पृ० ६६, १००। ३७ यही पृ० १२०।

३८ भारतीय दर्शन पृ० १०२। ४० भावगत-धर्म पृ० १०६।

३९ मध्य० धर्म-साधना पृ० १४३। ४१ यही पृ० १६२।

प्रति बरबस होती है तथा भय एवम् सज्जा का भाव कुछ कम होने पर पति की ओर आकर्षित होनेवाली नायिका बिधरम् नबोड़ा मानी जाती है ।<sup>१५</sup>

मध्या नायिका में सज्जा एवम् काम समान रूप से पाये जाते हैं । उसमें अनुमाहृत एवम् संकोच समानरूप से रहता है ।<sup>१६</sup> प्रौढ़ा नायिका में सज्जा की कमी एवम् काम का प्राचुर्य होता है तथा वह रति-कला में परम प्रवीण रहती है ।<sup>१७</sup> प्रौढ़ा में रति-प्रियता एवम् आनन्द सम्मोहिता भी रहती है । प्रथम रति-नेति में अत्यन्त बहिर्प्रसन्न करती है और दूसरी अपने पति के रति-मुक्त-जनित प्रेमानन्द में सदा निमग्न रहती है । इसके अतिरिक्त मध्या प्रौढ़ा के बीच-बिच भेद भी किये गए हैं । पति की पट-रुमी के प्रति आसक्ति देखकर मध्या एवम् प्रौढ़ा में जो कोप उत्पन्न होता है उसका स्वल्प या तो पुष्ट रहता है, या प्रकट रूप में रहता है जबकि प्रकट एवम् पुष्ट दोनों रूपों में पाया जाता है । मध्य इस प्रकार की नायिकाओं को क्रमशः धीरा धीरा एवं धीराधीरा की सजा प्रदान की गई है ।<sup>१८</sup> धीरा का कोप व्यंग्योक्ति एवम् रति से सदासीनता द्वारा अधीरा का कोप कटु वचन एवम् ताड़ना द्वारा एवम् धीराधीरा का कोप स्वन तथा अपासम्भ द्वारा प्रकट होता है ।<sup>१९</sup> इसके अतिरिक्त बहुपत्नीत्व के आधार पर स्वकीया के व्येष्टा एवम् कनिष्ठा भेद भी पाये जाते हैं । पति का स्नेह-विकल्प पानेवासी व्येष्टा एवम् न्यून स्नेह प्राप्त करनेवासी कनिष्ठा नहीं जाती है ।<sup>२०</sup>

मोटे रूप से परकीया के समूहों एवम् ऊँचा को भेद होते हैं । अविवाहित अवस्था में ही अथ पुत्र्य से प्रेम करनेवाली समूहों एवम् विवाहित होकर भी अन्य

३

- १५ पति की कृष्ण परतीत कर, नई नबोड़ा नारि ।  
सो बिधरम् नबोड़ति, बरनत विदुष विचारि ॥ —'बगहिनीद'
- १६ इन दुखियाँ अस्मियान को, सुख सिरज्यो ही नाहि ।  
देखत जाने न देखते, मन बेके समुझाहि ॥ —'विहारी सतसई'
- १७ केलि-कला में बसुर भति, प्रीतम हीं प्रति प्रीति ।  
लाज लखे न मन बस, प्रौढ़ा की यह रीति ॥ —'कविकुल कल्पतरु'
- १८ गोप कोप धीरा करे, प्रकट धीरा कोप ।  
लज्जन धीर धीरा को, कोप प्रकट धी धीप ॥ —'माया मृगज'
- १९ केसव प्रभावली खंड १, पृ० १५ से १७ ।
- २० जासों पति प्रति हित करे, सुतिय व्येष्टा चाहि ।  
जासों बहि हित नहि करे, कही कनिष्ठा चाहि ॥ —'सुन्दर मृगज'

पुरुष से प्रेम करनेवाली को ऊँचा कहते हैं।<sup>११</sup> प्रभव-व्यापार में प्रवर्तित विनय कार्य कलाओं की अवस्थानुसार पूरकीया के छः नेत्र और किए जाते हैं। अपनी मनोविनया की अक्षमल पूर्ति होती देख कर प्रसन्न होनेवाली मुक्ति कही जाती है।<sup>१२</sup> अनुगता पूर्वक पर-पुरुषानुराग का संकेत करनेवाली विद्या होती है। विद्या के दो उपनेत्र हैं—जिसमें बचन चातुर्य हो उसे बचन-विद्या एवम् जिसमें किया चातुर्य हो उसे क्रिया-विद्या कहते हैं।<sup>१३</sup> पर-पुरुष से मिलने के स्वप्न एवम् अवसर को गृह्य होते देख कर बुद्धित होनेवाली अनुसंधान कही जाती है जो अपने उपनेत्रों के अनुसार प्रथम अनुसंधान द्वितीय अनुसंधान और तृतीय अनुसंधान होती है। संकेत-स्नान का गृह्य होते देख कर बुद्धित होनेवाली प्रथम अनुसंधान, भविष्यन् संकेत-स्नान के भिन्ने चिन्ताकुल द्वितीय अनुसंधान एवम् निश्चित संकेत-स्नान पर किसी कारणवश न जा सकने से बुद्धित होनेवाली तृतीय अनुसंधान कही जाती है।<sup>१४</sup> पर-पुरुष-प्रेम को क्षिपाने की चेष्टा करनेवाली पुष्पा होती है। बटमा-कावकम के अनुसार बूट पुष्पा भविष्यन् पुष्पा एवम् वर्तमान पुष्पा कही जाती है।<sup>१५</sup> जिसका पर-पुरुष प्रेम सब पर प्रपट हो जाता है उसे सुखिता<sup>१६</sup> एवम् जनक पुरवों से प्रीति करनेवाली कामाक्ष्या को कुसुता कहा जाता है।<sup>१७</sup>

- ११ ऊँचा इह विवाहिता, अविवाहिता अनुदः । —‘उत्तिक प्रिया’
- १२ उई बात बनि आवई, ओ जित चाहत होइ ।  
तातें जानित महुा मुक्ति कहिये सोइ । —‘शुभार निर्बय’
- १३ बचन की रचनाएँ सों जो साथे मिल आव ।  
बचन-विद्या नायिका ताहि कह्य कविराज ॥  
जो तिय साने काज मिल करि कसु किया सुखान ।  
क्रिया-विद्या नायिका ताहि सोजिये जान ॥ —‘जगद्बिनोद’
- १४ केज करि अहुँ संज सों सो बत जिही निहारि । —‘रस-राज’  
होनहार संकेत को परि अभाव उस नाहि एवम्  
जो तिय नुरति संकेत की समन समन अनुमान । —‘बनविनोद’
- १५ जब तिय नुरति सिपावई, करि विद्यावता नाम ।  
भुन, भविष्य उत्तमान सों गुप्ता ताको नाम ॥ —‘शुभार निर्बय’
- १६ जहाँ प्रीति पर कुसुम की प्रगटित अंग में होय .. —‘कवि कुल कल्पवृक्ष’
- १७ जित दिन जाकों रवि कला सदा काज सों काज ।  
नीत अनेकन सों रयें कुसुता ताकों नाम ॥ —‘शुभार शुभार’

सक बर्गीकरण में नारी की प्रणय-प्रवृत्तियों का सामान्यीकरण प्रस्तुत किया गया है। स्वकीया परकीया एवम् सामान्या के रूप में प्रणय का जो स्वरूप हमारे सामने आता है उससे नारी की प्रेम-सम्बन्धी विभिन्न व्यैक्तिक शक्तियों एवम् प्रवृत्तियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बर्गानुसार किये गये इस वर्गीकरण में नारी के तीन स्वभाव सांस्कृतिक पराठन एवम् मानसिक तथा भौतिक-आत्मिक अभिरुचि का सामान्य स्वरूप प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। भुक्तबी की यह कबन कि जिस प्रकार बाह्य दृष्टियों के जन्य रूप है उसी प्रकार मनुष्य की मानसिक स्थिति के भी जिस प्रकार पृथ्वी पर अनेक प्रकार के दृश्य हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी अनेक स्वभाव और चरित्रवाने हैं<sup>१९</sup> यद्यपि सत्य है और सत बर्गीकरण में 'अनेक रूपता' का अभाव भी हो सकता है। किन्तु प्रस्तुत बर्गीकरण में अनेकरूपता को एकरूपता देने का प्रयत्न किया गया है और एकरूपता की इस प्रवृत्ति के अनुसार, निरीक्षण तथा परीक्षण के परभाव ही किसी तथ्य का सामान्यीकरण सम्भव है। अतः यह कहना कि 'केवल यिनी बिनाई बातों को निरिद्ध जैसी के अनुसार बाँस सूँढ़ कर कह दिया'<sup>२०</sup> मेरी किन्नर सम्मति में उचित नहीं है। प्रस्तुत बर्गीकरण के आधार पर नारी की प्रणय-प्रवृत्तियों का एक सामान्य स्वरूप हमारे सामने निरिचलित रूप से उपस्थित हो जाता है। इसे हम प्रणय चित्रणता का नहीं प्रणय-रूप की एकता का सामान्य सिद्धान्त मान सकते हैं। यह प्रणय-व्यापार का काव्य-आत्मीय सैद्धान्तिक मूल्यांकन है चिकित्सा-आत्मीय शस्य-क्रिया नहीं।

इसानुसार — बला के अनुसार नारी के प्रधानतः तीन भेद पाये जाते हैं—  
गर्विता अन्य संयोग दुःखिता एवम् मानवती। जो स्त्री अपने प्रियतम के प्रेम और अपने रूप पर गर्व करे, उसे गर्वितो कहा जाता है। गर्विता दो प्रकार की होती है—  
एक प्रेम-गर्विता दूसरी रूप-गर्विता। अपने प्रिय के प्रेम का गर्व करनेवाली प्रेम गर्विता होती है<sup>२१</sup> और अपने रूप का गर्व करनेवाली रूप गर्विता मानी जाती है।<sup>२२</sup> जो नारी अन्य स्त्री के तन पर अपने प्रियतम के प्रीति-चिह्न देख कर दुःखित होती है उसे

१८ रत्न-मीमांसा पु० ६३।

१९ रत्न-मीमांसा पु० ६४ ६५।

२० जाके प्रिय की प्रीति को, मन में होइ बुझान।

प्रेम-गर्विता नारि को सुन्दर यहँ बसान ॥

—'सुन्दर शृ पार'

२१ जाके अपने रूप को प्रति ही होय बुझान।

रूप-गर्विता कहत है ताकी बहुत बुझान ॥

—'रत्न राज'

अप्य संशय बुद्धिमा कदा जाता है<sup>३२</sup> एवम् अपने प्रिय को किसी अप्य की ओर आकर्षित मानकर ईर्ष्यापूर्वक मान करनेवासी भारी नामवती मानी जाती है।<sup>३३</sup>

उक्त वर्गीकरण में भारी के मान-गुमान को हृदयित रखते हुए उसकी मनोरथा का विवरण करने की प्रकृति पाई जाती है। यद्यपि इस वर्गीकरण में धर्मानुसार किये गये वर्गीकरण से अधिक कोई बात नहीं कही गई है और इसका समावेश आसानी से उन्नी के अंतर्गत हो सकता था क्योंकि यह सारा मान-गुमान प्रभव-संबंधों पर ही आधारित है। संभवतः मान-गुमान की जो भारी-विषय का एक प्रमाण आ है अस्य से व्याख्या करने के हेतु ही यह वर्गीकरण किया गया है।

अवस्थानुसार — प्रभव-परिस्थितियों की अवस्थानुसार भारी के प्रभावतः सप्त भेद उपस्थित किए गये हैं। प्रथम स्वाधीनवृत्तिका है जो नायक को सर्वत्र अपने अधीन रखती है।<sup>३४</sup> द्वितीय वातकुसुमा है जो प्रियतम के आपस की आशा में सविभास रति गृह-द्वार की ओर निहारा करती है।<sup>३५</sup> तृतीय वरकंठिका नायिका होती है जो केनि-स्थान में नायक की अतीसा उत्सुकतापूर्वक करती रखती है।<sup>३६</sup> चतुर्थ पतिव्रतावस्था है जो स्वयं कायात् होकर नायक के पास जाती है या उसे अपने पास बुलाती है।<sup>३७</sup> पंचमी विप्रलब्धा कही जाती है जो केनि-स्थान पर नायक को न पाकर व्याकुल होने लगती है।<sup>३८</sup> छठी अंकिता नायिका होती है जो अपने प्रिय के

- ३२ प्रीतम प्रीत प्रतीति जो, और तिया तन पाई ।  
बुद्धि होय तो जानिये, अप्य सुरत बुझ ताई ॥ —‘अमहिनोद’
- ३३ यदि नायक सोकुन करे, जो उरपा करि मान ।  
मानवती ताको कहे, कै कवि बुद्धि-निधान ॥ —‘रसिक विनोद’
- ३४ केसन जाके पुन बंधों सदा रहे पति-संघ ।  
स्वाधिन वलिका तासु की बरगत प्रेम-प्रसंग ॥ —‘रसिक प्रिया’
- ३५ वातक सुनवा हीरे सो, कहि कैतव सविभास ।  
चितवै रति गृह-द्वार ल्यों पिय आशनि की आस ॥ —‘रसिक प्रिया’
- ३६ प्रिय सहैत घामो नहीं चिता मन में आनि ।  
सोच करे संताप को, वरकंठिका बरानि ॥ —‘आपा धूपध’
- ३७ पियहि बुलावै धातु बस, पतिव्रतावस्था तु होई ॥ —‘हित वरपिनी’
- ३८ निजम घात कर बाइ पिय, मिले न पिय संकेत ।  
विप्रलब्धा सो जानिये विरह-विषय विन भैत ॥ —‘रस-रस’

घटीर पर पर-स्त्री-संसर्ग के चिह्न देखकर ईर्ष्या करती है अपना दुखी होती है।<sup>३३</sup> सावर्धी नायिका, कलहात्म्यरिक्ता होती है जो नायक का वरमान करने के परवाना पदचापाप करने मगती है।<sup>३४</sup> जाठनी प्रवत्स्यप्रयत्नी होती है जो अपने प्रियतम के भविष्य में वियोग की आशंका से दुःखित होने लगती है।<sup>३५</sup> मीवी वह विरहणी नायिका है जो अपने प्रियतम के वियोग से दुःखित होती है। ऐसी नायिका को प्रोक्षित पतिका कहा जाता है।<sup>३६</sup> चसवीं नायिका ध्यापत पतिका मानी जाती है जो अपने प्रियतम के आगमन पर प्रसन्न होती है।<sup>३७</sup>

उक्त दसों नायिकाओं के मुग्धा, मध्या प्रीति परकीया एवम् सामान्या उपमेय भी किये हैं। केशवदास ने इन्हें 'प्रच्छन्न' एवम् 'प्रकाश' नामक दो उपमेयों में ही विभक्त किया है जबकि शेष आचार्यों ने पूरा कथित उपमेयों को ही स्वीकार किया है।

अवस्थानुसार की गई इस व्याख्या में नारी की प्रणयवस्था एवम् परिस्थितियों का सामास्यीकरण करने की प्रवृत्ति प्रधानतः दृष्टिगोचर होती है। अपने प्रियतम को स्वयं रखने के हेतु नारी सदैव सजग रहती आई है। प्रियतम के आगमन की आशा में उसका सविभास रति-गृह-द्वार की ओर निहारना और केसि-स्वयं पर उत्सुकता पूर्वक उसकी प्रतीक्षा करना नायक के पास जाना या उसे अपने पास बुलाना पर-स्त्री संसर्ग के लक्षण देखकर ईर्ष्या करना या दुखी होना कलहोपरान्त दुखी होना भविष्य में होनेवाले वियोग की आशंका से व्याकुल हो उठना आदि प्रणय-वच के नारी सुमय लक्षण हैं। परिस्थितियों प्रायः भावों के सकल्प-विकल्प की विभावक होती हैं और बुद्धिमेव के अनुसार जो मनोभाव या मनोविकार नारी-जीवन में उपस्थित होते हैं, उसी को एक साहित्यिक एवम् सैद्धांतिक स्वल्प प्रदान करने का प्रयत्न अवस्थानुसार

- ३६ धनत रमै रति बिनु लखि प्रीतम के तुम गात ।  
 बुझित होई सो किंठता घरगत पति अग्रवाल ॥ —'शृंगार निर्णय'
- ३७ प्रथम कछु-अपनाग कर पिय की फिर पक्षिताइ ।  
 कलहात्म्यरिक्ता नाइका तहि कहत कबिराइ ॥ —'भगवद्गीता'
- ३८ — होतहार पिय के विरह बिराह होइ जो बाल ।  
 ताहि प्रच्छति प्रेयसी बरनत बुद्धि बिसाल ॥ —'रस रत्न'
- ३९ जाको पति देखनै रहै । अति संताप विरह कुर सहै ।  
 दुर्बल तन व्याकुल होई । प्रीति पतिका कहिये सोई ॥ —'रस मंजरी'
- ४० बहु दिन बिते ते जाको घावे कल ।  
 प्राप्त पतिका नायिका, ताहि कहत पतिमंड ॥ —'रसिक विनोद'

किये गए मेर में परिलक्षित होता है। इस प्रवृत्ति को हम साहित्यिक परिधान संहित मनोवैज्ञानिक दृष्टि से निम्नोपनात्मक कहा मान सकते हैं।

पुनानुसार—पुन के अनुसार नारी के तीन मेर किये गये हैं—उत्तमा मृद्वमा और खमा। उत्तमा प्रायः मानविहीन मध्यमा किञ्चित् मानिनी एवम् खमा बिना अपराध के भी अत्यधिक मान करनेवाली होती है। ४४ उत्तमा का स्वभाव निस्वार्थी होता है। स्वयं के प्रति प्रियतम का अधिक मान देखकर भी वह उसके हित की ही सोचती है। मध्यमा समझबुद्धिवादी होती है। वह हित के बदले हित और अधिक के बदले अधिक की कामना रखती है। खमा का आचरण एकदम खम प्रवृत्ति का चोकर होता है। प्रियतम द्वारा हित प्रदर्शन के परभाव भी वह हित प्रदर्शन से बरे रहती है। ४५

हरिऔधजी ने उत्तमा को पति-प्रेमिका परिवार-प्रेमिका जाति-प्रेमिका देश-प्रेमिका जन्मभूमि-प्रेमिका निजतानुच्छिन्नी लोक-सेविका एवम् धर्म-प्रेमिका के रूप में भी कहा है और मध्यमा को वे धर्म-विदग्धा तथा धर्मपीडिता के रूप में भी कहते हैं। ४६

पुनानुसार वर्णित मेरों में नारी की सहज-वृत्ति और उसके पीछे स्वभाव की व्याख्या का प्राचाम्य पाया जाता है। काम-आन्वीय आचार पर जिस प्रकार नारी के जाति-अनुसार मेर प्रस्तुत किये गये हैं उसी प्रकार पुनानुसार वर्णित मेर का आचार नारी का आचार-व्यवहार माना जा सकता है।

व्याख्यात्मक प्रवृत्तियों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रवृत्ति परम्परागत रही है। भरत मुनि से जमाकर मानवत्त तक और कृपाचम से लेकर हरिऔध तक इसका सिलसिला बराबर जारी रहा। प्रायः प्रथम मनुष्यी के प्रारम्भ से लेकर सम्यक् १६८८ तक ग्युनाधिक अंतर से यह प्रवृत्ति काव्य-क्षेत्र में काम करती रही। विस्तार-मेर का कार्य भी चलता रहा। नारी निपीछण एवम् पीछण की कसौटी पर कसौ जाकर कुछ सामान्य सिद्धांतों में प्रस्तुत की गई। प्रथम के अंतर्गत उसके विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या की गई। यह व्याख्यात्मक प्रवृत्ति नायिका-मेर ने नाम

४४ उत्तम मान बिहीन है तपु मध्यम मयि मान ।

विन अपराधई करत है अपम नारि गुह मान ॥

—‘शु पार निर्भय’

४५ अनहित सो हित उत्तमा अस सो सय मयि जान ।

अपमा हित हूँ सो न हित सोनों तिय पहचान ॥

—‘शु पार निर्भय’

४६ रस-कलाय पु० २८ से १०६ ।



से प्रसिद्ध है। नायिका भेद का विषय जहाँ नाट्य-सास्त्रीय ग्रंथों से मिया गया वहाँ उसका व्यावहारिक अंग नाम सास्त्रीय ग्रंथों से अनुप्राणित था। ४० सब पुरुष जाने तो नायिका भेद की रचनाओं में स्त्री-पुरुषों के अनेक स्वकीय विचारों एवम् भावों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण है, ४१ और प्रकृति व्यवस्था और स्थिति के अनुसार द्विगों का वर्णन ही नायिका भेद कहलाता है। ४२ कतिपय साहित्यिक महारत्नों के मतानुसार यह कार्य 'बाणी की विगर्हना है' ४३ तथा 'नायिका भेद चरित्र-चित्रण में सहायक नहीं, बाधक हुए हैं।' ४४

नायिका भेद की आवश्यकता-अनावश्यकता बचवा उपयोगिता अनुपयोगिता के नाम पर विचार बड़ा करना प्रस्तुत अध्ययन के क्षेत्र से परे की वस्तु है। हम नायिका भेद को नारी-चित्रण की व्याख्यात्मक प्रवृत्ति के रूप में ग्रहण कर सकते हैं क्योंकि नायिका भेद काव्य-शास्त्र के अंतर्गत एक मनोवैज्ञानिक विवेचन है। कुछ नोड़ी सी नायिकाओं का उत्तमेश मारी-मन के विकारों का अध्ययन करने के लिये आवश्यक है जिससे हम और अन्य काव्यों में पात्रों के चरित्र चित्रण सम्बन्धी कोई जल्दा भाविक बात न कह सकें। ४५ अतः हम उस प्रवृत्ति को चरित्र चित्रण में बाधक नहीं मान सकते। चाय ही इस प्रवृत्ति को बाणी की विगर्हना भी नहीं माना जा सकता क्योंकि नायिका भेद की रचनाओं द्वारा मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में नारियों की विभिन्न मनोवृत्तियों का ऐसा विदग्धतापूर्ण चित्रण हुआ है जिसके कारण पाठकों को चरित्र की अनेक उत्तमताओं को सुझाने में सुविधा होती है। उनके द्वारा वे नारियों की प्रकृति से परिचित हो जाने के कारण वास्तव्य जीवन में कटुता उत्पन्न होने के अनेक अवसरों से अपने को बचा सकते हैं। ४६

सामान्यतः कोई भी व्याख्या अपने आप में कभी पूर्ण नहीं कही जा सकती। नारी चरित्र जिसे वेबताओं के लिए भी अज्ञेय समझा जाता है, नायिका भेद द्वारा पूर्ण-रूपेण ज्ञेय हो सकता है यह कहना भी सरासर भूल ही होगी। फिर भी हम इस प्रवृत्ति को नारी चित्रण का व्याख्यात्मक प्रयत्न मान सकते हैं जो अपनी सर्वाधिक सीमा में भी विस्मयनीय और मनोरम है।

४० हि० सा० सुमित्रा पृ० १२४।

४१ रस-मीमांसा पृ० ६६।

४२ रस-कला पृ० १३०।

४३ बुद्ध साधु साहित्य का नायिका

४४ रस-रत्नाकर पृ० ७७।

भेद पृ० १३६।

४५ रस-रंजन पृ० ७३।

४६ वही पृ० ७५।

## शैक्षणिक प्रवृत्तियाँ

नारी के साहित्यिक स्वरूप एवम् व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते समय हमारा ध्यान ऐसीमय प्रवृत्तियों की ओर जाता है। नारी-चित्रण की आधारभूत सामग्री एवम् उसके स्वरूप-निर्धारण में शैक्षणिक प्रवृत्तियों का प्राधान्य रहता है। नारी-चित्रण की प्रमुख शैक्षणिक प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

**कथात्मक—**जीवन अपने आप में एक गाथा है। जीवन के इस कथात्मक स्वरूप का ही दूसरा नाम चरित्र है क्योंकि प्रत्येक चरित्र का व्यक्तित्व उसकी जीवन कथा के साथ जुड़ित रहता है। साहित्य में पात्रों की सृष्टि किसी कथा के माध्यम द्वारा ही होती है। हिन्दी-साहित्य में नारी-पात्रों की सृष्टि एवम् उनका चित्रण पौराणिक ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक कथाओं के आधार पर किया गया है। सीता, राधा, कौसल्य, यशोधरा जैसी मातृकी आदि की चरित्र-सृष्टि का आधार वहीं पौराणिक है वहीं गुरुजनों यशोधरा आदि का चित्रण ऐतिहासिक आधार पर हुआ है। परमावती मागधनी आदि का चित्रण काल्पनिक अधिक है, ऐतिहासिक कम क्योंकि परमावती का पूर्वार्ध तो विस्तृत कल्पित कहानी है।<sup>१४</sup> यतः जहाँ तक नारी-चित्रण की कथात्मक सामग्री का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि उसकी आधारभूत सामग्री या तो पौराणिक कथाओं से ली गई है या इतिहासों से या कल्पना अथवा जनश्रुतियों पर आधारित है। कथात्मक शैली के अंतर्गत आधिकारिक एवम् प्रासंगिक चरित्रों के चित्रण की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। मानस में पार्वती की चरित्र-कथा प्रासंगिक है और सीता की चरित्र-कथा आधिकारिक। गुरुजनों में अनारकली का चित्रण प्रासंगिक रूप में ही हुआ है जबकि गुरुजनों का चित्रण आधिकारिक कथा पर आधारित है।

कथात्मक शैली के अंतर्गत कथानक कल्पना भी पाई जाती है जिनका आधार या तो लोक-विरासत होता है या कवि-कल्पित रहता है। प्रथम प्रकार की कल्पना प्रचलन आठ प्रकार की हो सकती है—

- [ १ ] संभावना अथवा कल्पना पर आधारित ।
- [ २ ] अलौकिक अथवा अमानवीय शक्तियों से सम्बन्धित ।
- [ ३ ] अतिमानवीय और अतिरजनावृत्त मानवीय शक्ति से सम्बन्धित ।
- [ ४ ] आध्यात्मिक एवम् मनोवैज्ञानिक ।
- [ ५ ] संयोग तथा माय से सम्बन्धित ।

[ ६ ] शरीर-वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित ।

[ ७ ] निवेद्य और धुकुल से सम्बन्धित ।

[ ८ ] सामाजिक संघर्ष और रीति रिवाजों से सम्बन्धित ।

कवि-कल्पित कथानक कवि्यों में नारी-चित्रण के हेतु प्रयोज्य दो प्रकार की कवि्यों पाई जाती हैं—शौर्य कर्म सम्बन्धित और भ्रम सम्बन्धित । प्रथम के अंतर्गत किसी दूत अथवा दूती की सहायता से आभाषिभ्यक्ति होती है । इस शौर्य कर्म का संपादन पंछी पवन आदि भी कर सकते हैं और पक्षिक अथवा प्रिय पात्रजन भी । द्वितीय के अंतर्गत उप-मुख्य अवलम्ब्य आकर्षण बिज-वर्जन स्वप्न-वर्जन प्रिय-प्राप्ति के सिव सिव-पार्वती पुञ्ज वारह माध के भाष्यम से बिरह-निवेदन आदि आते हैं ।

कथारमक कवि्यों वास्तव में कथारमक लैली का एक अग्रिम अंग हैं क्योंकि हमारे देश के साहित्य में कथानक की गति और ध्रुवाव होने के लिये कुछ ऐसे अमिश्रण बीजकास से व्यञ्जित होते आ रहे हैं जो बहुत पौड़ी दूर तक यचार्य होते हैं और जो आगे बसकर कथानक कवि में बदल गये हैं ।<sup>२५</sup>

भावनात्मक—नारी-चित्रण की द्वितीय लैलीगत प्रवृत्ति भावात्मक रही है । नारी-चित्रण का वास्तविक स्वरूप उसके भावात्मक रूप में ही व्यक्त होता है क्योंकि 'भाव प्रत्यक्ष व्यक्ति की अंतरात्मा का एक विक्षेप अंग है ।'<sup>२६</sup> यह भावात्मक चित्रण प्रयोज्य दो रूपों में पाया जाता है—वर्जनात्मक रूप में और मनोवैज्ञानिक रूप में । प्रथम में वर्जन का प्रयोग होता है और द्वितीय में सांकेतिकता द्वारा मनोवैज्ञानिक रूप से नारी का भावात्मक स्वरूप चित्रित किया जाता है । राधा के मनोमाधों की लैली निम्न पद में प्रयोज्य वर्जनात्मक रूप में ही प्रस्तुत की गई है—

मारि मन मई अकम्पद ।

अति बिरह लनु तई व्याकुल, घर न नैकु सुहाई ॥

व्याममुम्बर महममोहन मोहिनी-प्री लाई ।

चित्त अंचल कुबेर राधा, जान-पान सुलाई ॥

कबहुं बिहसति, कबहुं विलपति, सजुधि रूति भलाई ।

मातु पितु की माछ मागति, मन बिना मई लाई ॥

अनलि लौं बोहनी नाचती बेगि री री माई ।

दूर प्रभु की करिक भिजिहूँ, एए मोहि सुलाई ॥<sup>२७</sup>

२५. द्वितीय-साहित्य का आदि काल  
पृष्ठ ७४ ।

२६. साहित्यालोचन पृष्ठ २२७ ।

२७. सुरसागर पृ० ४४ पर संख्या  
१२६६ ।

मन का उत्तमना निरह-बिह्वल होना घर का चर भी अच्छा न लगना खान पान का भूख आना कभी हँसना, कभी बिसाप करना और कभी सजा कर सजुपा कर रख जाना आदि मनोभावों का यहाँ स्पष्ट वर्णन है। अतः हम इसे आभात्मक प्रवृत्ति का वर्णनात्मक रूप ही मान सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक रूप में नारी के मनोभावों की साँची हमें निम्न शीपाइयों में देखियाचर होती है—

क्यूरि बदन बिनु बँचन काँसी । पिय लभ पितह भीह करि जाँसी ॥

बँचन महु छिपीके जैननि । निज पति कहैज सिनहि छिय सैबहि ॥५७

छीटा का माँचन से अपने पन्द्र मुख को ढकना प्रियतम की ओर बाँकी भीड़ों से निहारना अपने नेत्रों को ठिरछा करना और इमिठ हाथ यह व्यक्त करना कि यह मेरे पति हैं भारतीय नारी की उस मग्ना का साक्षक है जो ऐसे क्षणों में आघत हो सकती है। अतः वहाँ सांकेतिकता हाथ छीटा के मनोभाव को व्यक्त किया गया है। यह सांकेतिकता अपने आप में मनोवैज्ञानिक है। अतः हमें यहाँ बिचन की मनोवैज्ञानिक शैली के वर्णन होते हैं।

आभात्मक शरीर द्वारा भाव-निरूपण का काम किया जाता है जो वहाँ वर्णनात्मक आधार लेकर चलता है और वहाँ मनोवैज्ञानिक आधार। नारी-जीवन के जो भी आभात्मक बिज हिन्दी-साहित्य में देखियाचर होते हैं वे प्रायः पूर्ण कथित प्रवृत्तियों को लेकर ही चले हैं।

बौद्धिकः—नारी-जीवन की तृतीय शैलीयत प्रवृत्ति बौद्धिक कही जा सकती है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत नारी को बुद्धि की कसौटी पर कस कर उसका सूक्ष्मांकन करने का प्रयत्न किया गया है। यह कही गुणात्मक रूप में प्रवृत्त हुआ है वही प्रज्ञात्मक रूप में और वही उपवेसात्मक रूप में। बौद्धिकता की दृष्टि से नारी-जीवन के गुण-शैलों का वहाँ निर्देशन माना हुआ है वहाँ बिचन का गुणात्मक रूप हमारे सामने आता है। जैसे—

नारी का वह हृदय । हृदय में

धुमा-तिम्बु लहरें सेता,

बाहुन बचलन उसी में चल कर,

कँचन-सा जल रंग देता ॥५८

अथवा

मारि-स्वभाव सत्य कवि कहूँ ही ।  
अनगुण बाढ सवा उर रहूँ ही ॥  
साहत अगुन अपलता भाया ।  
अय अविवेक असोज धराया ॥<sup>६</sup>

या

मुदय-मन में छवि का निस्तार,  
मारि-मन में संकीर्ण अपार ।  
पुरष का हो अगस्त पर चाब  
मारि का एक कान्त पर भाव ॥<sup>७</sup>

वहाँ मारी-जीवन के गुण-बोनों की भीमावा विवेक प्रधान हो जाती है तथा  
उच्च को सत्य का दास्यत्व कम प्रधान कर दिखा जाता है, वहाँ बिगम के प्रज्ञात्मक रूप  
के वर्णन होते हैं। जैसे—

मारी तो हम जी करी, पाया नहीं विचार ।  
अब जानि तब परिहृति, मारी बड़ा विकार ॥<sup>८</sup>

अथवा

मारी तुम केवल अज्ञा हो,  
विद्वान् रजत तप मय रत्न में ॥<sup>९</sup>

अथवा

✓ अज्ञता जीवन हाथ तुम्हारी गूँथी कहानी ।  
झाँस में है गुप्त और अज्ञों में पानी ॥<sup>१०</sup>

अथवा

ओह न मारि-मारि के क्या ।  
वमभारि अह रीति अगुना ॥<sup>११</sup>

मोटे अक्षरों वाली पंक्तियों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये  
उच्च कुटि पर नहीं विवेक पर आधारित हैं। यह गुण-अनगुण का निर्दोषन मात्र ही  
नहीं इसका निबोध है। अतः इसमें मारी-बिगम का प्रज्ञात्मक स्वरूप दृष्टिगोचर  
होता है।

६० संज्ञा-पद्य ( भाग २ )

६१ सान्नेय-संत पृष्ठ १ । ४५ ।

६२ कबीर की साक्षी पृष्ठ १३३ ।

६३ कामायनी पृ० १०६ ।

६४ अयोध्या पृ० ४७ ।

६५ मानस, उत्तर कांड ।

बौद्धिक विषम के अन्तर्गत जिस तृतीय श्रेणी के वर्धन होते हैं, उसे गारी विषम का उपवेद्यात्मक रूप कहा जा सकता है। प्रायः यह विषम उपवेद्यात्मकता लेकर जन्मता है। यथा—

आदिमी की तनु मानु कहिए सगन बन  
वहाँ कोऊ जाय सो ही बुने 'ही' परतु है ।  
कुजर की गति कबि केहरि को मय जाने,  
केनी काली नागिनीऊ कन को बरतु है ॥  
कुच है पहार वहाँ कान बोर रहे लहाँ  
सावि के बटाछ बान प्राय लूँ हृत है ।  
कुम्बर बहुत एक और डर का मैं प्रति  
राखनी बनन जाउँ जाउँ ही करतु है ॥९९॥

अथवा

तुम भूल गए पुण्यात्त मोह में कुछ सत्ता है गारी की ।  
समरसता है सम्मन्ध बनी आधिकार और अधिकारी की ॥१०॥

बौद्धिक विषम के तीनों ही श्रेणियों में प्रायः काम्य का स्थान सूक्ष्मियाँ ग्रहण करती रही हैं क्योंकि इस श्रेणी के अन्तर्गत मार्मिकता के बजाय कथन के ढंग का अनुपपन्न ही अधिक दृष्टिगोचर होता है।

कत्तारमक—गारी-विषम की अनुर्व श्रेणीयन प्रवृत्ति कत्तारमक कही जा सकती है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत शीर्ष्य-निरूपण का प्राधान्य होता है। 'मनुष्यता की सामान्य भूमि पर पहुँची हुई ससार की सब सम्म आतियों में सुशुर्व के सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हैं। १० सूखे सख्यों में शीर्ष्योत्तारता का ही उत्पन्न नाम कत्तारमकता है। जो कविता गारी के रूप-माधुर्य से हमें तृप्त करती है वही अंतर्ज्ञान की सुन्दरता का आभास लेकर हमें मुग्ध भी किया करती है। प्रथम प्रवृत्ति कत्तारमकता है, द्वितीय आभासक। अतः रूप-माधुर्य की प्रतीति कत्तारमक श्रेणी के अन्तर्गत ही होती है।

कत्तारमक विषम के अन्तर्गत दो प्रकार की प्रवृत्ति पाई जाती है। वहाँ गारी-शीर्ष्य के सहज स्वरूप के वर्धन होते हैं उसे हम स्वाभाविक और वहाँ इस शीर्ष्य-वचन के हेतु कम्पन की सहायता ली जाती है उसे आत्मकारिक कह सकते हैं। उस श्रेणी के अन्तर्गत प्रायः असंक्रांतिका का ही प्राधान्य पाया जाता है, सहज स्वाभाविक शीर्ष्य के विषय बहुत कम मिलते हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि स्त्री-रूप के जो

१६ हिरी-सख-साध्यस्यपद पु० १७८, ८० । १८ रस-भीमासा पु० ३० ।  
१७. कामायनी पु० १६२ ।

अथवा

नारि-स्वभाव सत्य कवि कहूँ ही ।  
अवगुण छाठ सब पर रहूँ ही ॥  
साहस अनृत अपमत्ता भावा ।  
मय दम्बित्त असौच अवाया ॥<sup>६१</sup>

या

पुरुष-मन में द्वि का विस्तार,  
नारि-मन में संकोच अपार ।  
पुरुष का हो अगस्त्य पर जाव  
नारि का एक कान्त पर भाव ॥<sup>६२</sup>

वहाँ नारी-जीवन के गुण-दोषों की सीमांसा विवेक प्रदान हो जाती है तथा सत्य को सत्य का शास्त्रत रूप प्रदान कर दिया जाता है वहाँ चित्रण के प्रजात्मक रूप के दर्शन होते हैं। जैसे —

नारी तो हून भी करी, पाया नहीं विचार ।  
अब जानि तब परिहृति, नारी बड़ा बिकार ॥<sup>६३</sup>

अथवा

नारी तुम केवल भ्रष्टा हो,  
विश्वास रखत नय पय तल में ॥<sup>६४</sup>

अथवा

✓ अबना जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी ।  
झींझल में है दूध झीर झीलों में पानी ॥<sup>६५</sup>

अथवा

मोह न नारि-नारि के क्या ।  
पल्लवारि यह रीति अमुपा ॥<sup>६६</sup>

मोटे अक्षरों वाली पंक्तियों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे सत्य बुद्धि पर नहीं विवेक पर आधारित हैं। यह गुण-अवगुण का निर्वेद्यमान ही नहीं, इसका निचोड़ है। अतः इसमें नारी-चित्रण का प्रजात्मक स्वरूप इतिहासपर होता है।

६० अंका-काव्य ( भागस )

६१ साकेत-संत पृष्ठ १ । ४३ ।

६२ अवीर की छाड़ी पृष्ठ १३३ ।

६३ कामायनी पृ० १०६ ।

६४ पसोचरा पृ० ४७ ।

६५ भागस, उत्तर कांड ।

भौतिक विज्ञान के अन्तर्गत जिस भूतीय चीज़ों के वर्णन होते हैं, उसे भौतिक विज्ञान का उपरोच्यार्थक रूप कहा जा सकता है। प्रायः यह विज्ञान उपरोच्यार्थकता लेकर चलता है। यथा—

कामिनी की तनु मातु कहिए सयन बन  
वहाँ कोऊ जाय सो लौ भूते ही परतु है ।  
कुअर की पति कटि केहरि को भय जाये  
बेनी कालो नापिनीऊ छन को बरतु है ॥  
हृष है पहार कहीं कोम चोर रहे वहाँ  
सावि के बटाछ बाल प्राण बूँ हूछ है ।  
सुन्दर बहुत एक और उर जा में पछि  
राजदानी बदन काँते काँते ही करतु है ॥८६॥

अथवा

प्रुम मूल पए पुरयात्त मोह में कय छता है भारी की ।  
समरसता है सम्बन्ध बनी सचिकार और सचिकारी की ॥८७॥

भौतिक विज्ञान के चीजों ही क्यों न प्रायः काव्य का स्थान भूतियाँ ग्रहण करती रही हैं क्योंकि इस चीज़ों के अन्तर्गत मानिकता के बजाय कवन के रूप का अनुशासन ही अधिक दृष्टिगोचर होता है।

कवयानक—भौतिक विज्ञान की वस्तुओं की सीमायन प्रकृति कपालक करी जा सकती है। इस प्रकृति के अन्तर्गत सीमार्थ-निरूपण का प्राधान्य होता है। अनुशासन की सामान्य भूमि पर पृथ्वी हुई संसार की सब मूल्य जातियों में मूल्य के अन्तर्गत मान्य प्रतिष्ठित हैं। १० वृद्धे सख्यों में सीमार्थ-निरूपण का ही मुख्य नाम कपालकता है। जो कविता भौतिक के रूप-आधारों से हमें दृष्ट करती है, वही अंतर्कृति की सुन्दरता का आभास देकर हमें सुख भी प्रिया करती है। प्रथम प्रकृति कपालकता है द्वितीय माहात्म्यक। अथ रूप-आधारों की प्रतीति कपालक चीज़ों के अन्तर्गत ही होती है।

कपालक विज्ञान के अन्तर्गत दो प्रकार की प्रकृति पाए जाते हैं। एक भौतिक सीमार्थ के सहज स्वरूप के वर्णन होते हैं जहाँ इन स्वाभाविक और बड़े इन्द्रिय-वर्णन के हेतु चमत्कार की सहानुभूति भी जाती है जहाँ चार्वाकिक वह स्थान है। इस चीज़ों के अन्तर्गत प्रायः अन्तर्जातिका का ही अन्तर्गत नाम है। दूसरा अन्तर्गत सीमार्थ के बिना बहुत कम मिलते हैं। इसका अनुशासन करने के लिये हमें

११ हिरी-सख-काव्यसंग्रह पृ० १७८, ८०। १८ रस-संग्रह पृ० ३०।  
१२ कवयानकी पृ० १६२।



अपमान कवि-परिपाटी बंध चुके हैं, उनकी अबहेतुता करना असम्भव है। ऐसा प्रतीत होता है कि रूप की अकाशीय उत्पन्न करने के लिए अमलकार-अवसन आवश्यक-सा हो गया है।

स्वामाधिक कलात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत मारी-छोर्न्य का एक सहज स्वयं सामने उपस्थित होता है। जैसे—

लोह भवत तनु सुन्दर सारी । अपत जननि सतुलित छवि मारी ॥  
भूषण लक्ष्म सुदेव सुहाए । प्रग-प्रग रवि सखिज बनाए ॥<sup>६४</sup>

अथवा

स्वर्ग का यह सुमन बरखी पर बिना,  
नाम है इसका उचित ही 'अमिता' । \*

या

कोन हो तुम बसन्त के दूत, विरह पतपट्ट में छवि सुकुमार ।  
बन तिमिर में जपना को रेश, तपन में शीतल माध बहार ॥<sup>६५</sup>

यहाँ केवल अतुलित छवि मारी स्वर्ग का सुमन बसन्त के दूत जैसे विक्षेपन लगा कर ही मारी के स्वामाधिक सौंदर्य की व्यवना का प्रयत्न किया गया है किन्तु आसकारिकता के अन्तर्गत उपमाओं वपकों उत्प्रेसाओं की बाढ़-सी लग जाती है। प्रग प्रत्यंग की मोमा को व्यक्त करने के लिए उपमाओं का ज्वार-सा बढ़ा कर दिया जाता है। यथा—

कपीछान प्रभुल्ल प्राय कामिका राकेन्दु बिम्बानना ।  
संनवी कम्पुसिगी सुरसिका लीड़ा कला तुलसी ॥  
शोना बारिधि की अनुस्य मलि सी लालय्य लीला मबी ।  
की राधा मुगु माबिली मृग मुगी माधुर्य की धृति बी ॥<sup>६६</sup>

आसकारिकता के साथ-साथ बूट कल्पनाओं का भी आचार लिया जाता है।

जैसे—

अहभुत एक अनुपम भाव ।  
बुल्ल कमल पर गज बर लीकत, तावर तिह करत अनुराग ।  
हरि पर सरवर, सर पर गिरिजर, गिरि पर फूली रंज परग ॥<sup>६७</sup>

६४. मालस, बाल-कांड ।

६५. बालैत पृ० १५ ।

६६. कामायनी पृ० १० ।

६७. प्रिय-प्रवास ४ । ४ ।

६८. सुरसापर कांड २, पद संख्या-  
२७९८ ।

सैमीयत प्रवृत्तियाँ वास्तव में कवि-जीवन की परिचायक होती हैं। कल्पना, भावनात्मक एवं वर्णन का अत्यन्तपूर्ण विभाग ही इसके अन्तर्गत पाया जाता है। अतः वास्तविक सैमी नारी-विमर्श को आभासमय साधनी प्रधान करती है। आभासमय जीवी के अन्तर्गत इसका स्वल्प-निरूपण होता है, शैक्षिक विमर्श रचयिता के नारी विमर्शक इंडिकोण का निर्देशक होता है और अतः वास्तविक जीवी के अन्तर्गत कवि के सीधे-ज्ञान का स्वल्प व्यक्त होता है।



## तृतीय अध्याय

### हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र-भूमि

- नायिकाओं का व्यक्तित्व विश्लेषण
- उप-नायिकाओं का व्यक्तित्व विश्लेषण
- अन्य नारी पात्रों का विश्लेषण

कथा में उनका स्थान, स्वभाव एवम्  
मनोभावों के अन्तर्गत उनका व्यक्तित्व,  
चारित्रिक विशेषताएँ एवं दुर्बलताएँ ।



नर क्षेत्र के भीतर रहनेवाली काव्यहृष्टि को अपनी यात्रा का अधिकार मान  
 चरित्र भूमि पर ही व्यतीत करना पड़ता है। चरित्र भूमि महाकाव्यों का  
 मुख्य यात्रा-क्षेत्र है। हृदय पर मिल्य प्रयास करनेवाले कर्णों और व्यापारों की  
 भावना को सामने लाकर कविता बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की संत-प्रकृति का  
 सामञ्जस्य बटित करती हुई उसकी भावार्थक सत्ता के प्रसार का प्रयास करती है।<sup>१</sup>  
 इस प्रसार का क्षेत्र चरित्र भूमि और प्रयास का नाम चरित्र चित्रण है। साथ ही 'रस'  
 संचार से जाने बढ़ने पर हम काव्य की उस उज्ज्वल भूमि में पहुँचते हैं जहाँ मनोविकास  
 अपने सार्वभौम रूप में ही न दिखाई देकर जीवन-व्यापी रूप में दिखाई देते हैं।<sup>२</sup>  
 अतः काव्य की इसी उज्ज्वल भूमि और मनोविकास के जीवनव्यापी रूप का ही दूसरा  
 नाम चरित्र चित्रण है।

### चरित्र चित्रण के स्वरूप

हिन्दी महाकाव्यों की चरित्रभूमि में नायिका-चित्रण के अंतर्गत हम नायिकाओं उप  
 नायिकाओं एवम् अन्य नायिका-पात्रों का चित्रण पाते हैं। नायिकाओं के अंतर्गत अध्ययन की  
 सुविधा की दृष्टि से केवल हिन्दी-महाकाव्यों की प्रधान प्रमुख नायिकाओं का भूस्पर्शन  
 किया गया है। उप-नायिकाओं के अंतर्गत महाकाव्यों में प्रासंगिकता अथवा गीत रूप से  
 आनेवाले सभी-पात्रों की चर्चा की गई है एवम् अन्य नायिका-पात्रों के अंतर्गत उल्लेख  
 नीचे सारांश नायिका-पात्रों का निरूपण प्रस्तुत किया गया है। रामो से सगाकर रामचन्द्र

१ रस-मीमांसा पृ० ७।

२ गीतबानी तुलसीदास पृ० २७।

महाकाव्य तक आते-आते प्रचान्त तीन बातें जरूर चित्रण की दृष्टि से हमारे सामने आती हैं —

प्रथम के अंतर्गत हमें चरित्र-चित्रण का कथारमक रूप ही दिखाई पड़ता है जिसमें रूप-वर्णन और जीवन-युक्त के माध्यम द्वारा ही नारी-पार्श्वों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। मनोविकारवर्णित प्रकृतितत्त्व स्वरूप का प्रायः अभाव है।

द्वितीय के अंतर्गत हमें चरित्र-चित्रण का वह प्रकृतितत्त्व स्वरूप दृष्टि-भोचर होता है जहाँ मनोविकारों के इतने भिन्न-भिन्न प्रकृतितत्त्व स्वरूप दिखाई पड़ते हैं कि पात्र का निज का व्यक्तित्व, आविर्गत भावनाओं अथवा समुदाय विशेष का प्रतिनिधित्व करने लगता है।

तृतीय के अंतर्गत हमें चरित्र-चित्रण का वह सार्वकालिक सारवत स्वरूप दृष्टि-भोचर होता है जो रोग, कास और कषा की परिधि से ऊपर उठ कर निस्वयनीन हो जाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार चरित्र का विधान चार रूपों में हो सकता है—१. वाचस्व रूप में, २. वाचि-स्वभाव के रूप में ३. व्यक्ति स्वभाव के रूप में और ४. सामान्य स्वभाव के रूप में। साव ही प्रथम काव्य में स्वभाव की ध्वजना पार्श्वों के वर्णन और कर्म द्वारा ही होती है उनके स्वगत भावों और विचारों का उल्लेख बहुत कम मिलता है।<sup>१</sup> इसके अतिरिक्त महाकाव्यकार का मंतव्य दृष्टि कोण अथवा उसकी दृष्टि भी जो सांकेतिक वर्णनात्मक या विशेषणात्मक हो सकती है पार्श्वों के चरित्र-चित्रण में सहायक होती है।

हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि पर लगभग एक हजार वर्षों की चरित्र साधना का सेखा-बोखा संकटित है। परम्परा के निर्बाह के साथ ही इस चरित्र-साधना में कालानुसरण की बहुभुत क्षमता दृष्टिभोचर होती है। नारी-चित्रण की दृष्टि से आज यह कहा जा सकता है कि नारी ने अपने समानाधिकार के दावे के साथ साहित्य में प्रवेश किया है और हड़ तथा उवाच कंठ से पिछली अताब की कल्पित अवास्तविक नारी-मूर्ति के चित्रण का प्रतिपाद किया है।<sup>२</sup> इस प्रकार यह चरित्र-साधना गभीरता और गतिशीलता से अनुप्राणित अवश्य हुई है। किन्तु सीमाव्यवस्था गभीरता के मध्य में हमारी सुदीर्घ साधना-मञ्च नारी दृष्टि-प्रमित नहीं होनी पाई है। हिन्दी का महाकाव्यकार गभीरता का हिमायती होकर भी नारी चरित्र के उस रूप का हिमायती नहीं है जो हृदयहीन होकर सिर पर चढ़ा रहे।<sup>३</sup>

१. जायसी पंचावली की भूमिका पृ० १२०, २. कामायनी पृ० २४१।

१२१।

२. हिन्दी-साहित्य की भूमिका पृ० १३३।

हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि पर अंकित नारी-चित्रण की चरित्र-साधना का सहज बर्णन रूप समझने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम हिन्दी महाकाव्यों की नायिकाओं उपनायिकाओं एवम् अन्य नारी-पात्रों के व्यक्तित्व का विश्लेषण करें। विरलेवम करते समय क्या मैं उनका स्थान स्वरूप स्वभाव एवम् मनोमर्षों के के अंतर्गत उनका व्यक्तित्व जानना आवश्यक है। स्रोत में इस विश्लेषण का स्वरूप महाकाव्यानुसार इस प्रकार है —

### नायिकाओं का व्यक्तित्व विश्लेषण

“रासो” की संयोगिता—पृथ्वीराज रासो की प्रधान नायिका संयोगिता को हिन्दी-महाकाव्यों की प्रथम नायिका होने का गौरव भी प्राप्त है। रासो की आधिकारिक कथा-वस्तु के अंतर्गत उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। पृथ्वीराज और जयचन्द के बीच की शत्रुता को तीव्र स्वरूप प्रदान करते हुए संयोगिता के माध्यम द्वारा उन कतह की पृष्ठ-भूमि निर्मित की गई है जिसने कथा को एक नया मोड़ दिया है। संयोगिता-हृदय का परिणाम है जयचंद की शत्रुता एवम् इस शत्रुता का परिणाम है पृथ्वीराज की जीति-कथा का अंत। अतः रासो की कथावस्तु में संयोगिता का स्थान प्रासंगिक उल्लेख मात्र ही नहीं बनकर रह गया है।

संयोगिता का व्यक्तित्व का रासो की कथनात्मकता के अंतर्गत ही व्यक्त हुआ है। संयोगिता अपने “पूव जन्म की कथा”<sup>४</sup> के अनुसार मंजुशोया नामक क्षत्रिय थी जिसे जराज क्षत्रिय के भाव के कारण जयचन्द के घर बन्धन लेना पड़ा था। “विनय मंथनप्रस्ताव”<sup>५</sup> के अनुसार संयोगिता के प्रति जयचन्द के स्नेह में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। वास्तव काल से ही उसकी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था और महान् ब्राह्मणी उसकी पाठिका थी। संयोगिता दलबलित होकर विद्याभ्यसन करती थी और जीवन-काल के मागमन के साथ ही उसे ‘विनय मंथन’ का पाठ पढ़ाया गया था। ‘विनय मंथन’ द्वारा संयोगिता को स्त्रियों की पति के प्रति अनन्य प्रेम भावना रखी के लिए विनय-वारणा की आवश्यकता आदि का ज्ञान कराया गया था। कम एवम् शिक्षा संयोगिता को रूप-गुण-संज्ञा बना रहे थे।

‘भुक्त बर्चन’<sup>६</sup> नामक समय से ज्ञात होता है कि शुभी द्वारा ब्राह्मणी का बेष धारण कर संयोगिता के मन में अचण्डल्य पूर्वानुराग उत्पन्न किया गया था। पृथ्वीराज के स्वाभाविक शुभी एवम् उसकी प्रसन्न मुद्रा पर संयोगिता के हृदय में पृथ्वीराज के प्रति अनुराग जागृत हो उठा और वह पृथ्वीराज से विवाह करने की प्रार्थना कर, प्रेम में

४ पृथ्वीराज रासो समय ४३।

५ वही समय ४७।

६ वही समय ४६।



चुर होकर रात-दिन उठी ॥ ध्यान में मग्न रहने लगी । यह प्रेम-निमग्नता संयोगिता के प्रेममय स्वरूप को व्यक्त करती है ।

अकरोषों के बीच संयोगिता का यह प्रेममय स्वरूप और अधिक ग्लान उठता है । 'बापुकारण्य समय' से ज्ञात होता है कि संयोगिता के मन में पूर्वाभिरुचि-विरह-वेदना संवरित होने लगी थी । जब पृथ्वीराज ने जयचन्द के राजसूय यज्ञ में आमन्त्रण को ठुकरा दिया और जयचन्द द्वारा पृथ्वीराज के अपमान की क्या संयोगिता तक पहुँची तो वह बुझित हो उठती है और पृथ्वीराज से विवाह करने के प्रण को झुठराती है । अपने प्रेमी का अपमान सहन करना उसके लिए कठिन हो जाता है । 'विजय मंगल' द्वारा अर्जित अनन्य प्रेम-भावना के वर्णन संयोगिता में हमें पत्र यज्ञ 'विष्णुस' एवं संयोगिता नेम' के अन्तर्गत होते हैं । यज्ञ विष्णुस एवं पृथ्वीराज पर अपने पिता द्वारा की जानेवाली चढ़ाई के समाचार ज्ञात कर संयोगिता अपने प्रण को और भी मुड़ड़ करती रहती है । जयचन्द द्वारा स्वयंवर-आयोजन के समाचार भी उसके अनुचन में वृद्धि ही करते हैं । पिता द्वारा भेजी जानेवाली दूती की भी संयोगिता एक नहीं चलने देती और परिणामस्वरूप जयचन्द इस प्रेम-वृत्त के लिए क्रुपित होकर संयोगिता को थंगा के किनारे निवासस्थान देता है । इन कठिनाइयों को बिना किए वरैर संयोगिता अपने प्रण पर अटल रहती है ।

'कनकजल समय' के अन्तर्गत संयोगिता का प्रेममय रूप कर्तव्य-बुद्धि और विवेक स्पष्ट हो जाता है । संयोगिता अपनी पित्रसारी से प्रथम बार पृथ्वीराज को देखती है प्रथम वर्णन से प्रेम-विमोहित-सी हो जाती है । पर इस चढ़ा के बीच संयोगिता की कर्तव्य-बुद्धि जागृत होती है । बासी की मोतियों का पास देकर वह पृथ्वीराज के निवृत्त भेजती है । बासी पृथ्वीराज के सामने संयोगिता के प्रेम को व्यक्त करती है । शेष वाधियाँ दोनों के पारस्परिक अनुराग को जानकर पृथ्वीराज की पित्रसारी में ले जाती हैं और पृथ्वीराज तथा संयोगिता का गृहस्थ विवाह हो जाता है । संयोगिता का यह आनन्द कुछ ही समय तक रह पाता है और पृथ्वीराज के जाते ही संयोगिता विरह-विह्वल हो उठती है । विधेय विवेक को जागृत करता है और संयोगिता के मन में गुरुजनों तथा माता-पिता की आज्ञा न मानने का परिणाम परिष्ठाप के रूप में प्रगट होता है । इस परिष्ठाप के मध्य हृदय निश्चय संयोगिता के मन की पूर्वम गारी भावना के भी वर्णन हो उठते हैं । यह गारी-मन की पूर्वमता मरण की वरन करता जाहती है और सञ्जुहास अयु तथा मूर्च्छना से जागृत होकर संयोगिता का विरह-व्याकुल मलिनस्वरूप सामने आ जाता है ।

१० पृथ्वीराज रासो समय ४८ ।

५ यही, समय ४६ ।

६ यही समय ४० ।

१० यही, समय ५१ ।

काका कन्हू द्वारा प्रतिष्ठापित होकर पृथ्वीराज के सौट आने पर संयोगिता पुनः अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाती है। अकल्प सक्रोध का स्वल्प प्रहस्य कर लेता है। पृथ्वीराज द्वारा साथ चलने का आमन्त्रण पाकर भी वह बुझिमा में पड़ जाती है। इस बुझिमा का कारण है अनुराग और आर्तक—पिता की विधायन सेना का भय। यद्यपि पति के साथ ही उसकी पवि है परन्तु पिता की विधायन पग-सेना का कुछ सामन्तों के साथ पृथ्वीराज का मुकाबला करना उसे फूँक से पहाड़ उड़ाने जैसा लगता है। पिता की सैन्य शक्ति उसकी बेबसी है और पति की शक्ति के प्रति अविश्वास बर्धन है। अनुरागबलित आस्था और बुद्धिबलित आर्तक संयोगिता के व्यक्तित्व को नव रसमय बना देती है। उस समय 'साक्षात् शृङ्गार रस-स्वरूप संयोगिता अपना आना पीछा छोड़कर मन-ही-मन मुत्कराती हुई हास्य-रस की भूमि हो जाती है। उसक मननों से कहकह रस टपकता है पर उसका भाव्य-विभास अद्भुत रस का उद्दीपक उसकी हार्दिक वृद्धता ही और और पिता के भय का आभास भयानक रस का भस्कार बन जाता है। समर-हृत्सों का मानविष बीमत्स और सामन्तों के प्रत्यक्ष के नाच उसके चित्त में आश्चर्य उत्पन्न करते हैं। पर इन सब बातों से उकता कर मायी के मरोटे जब वह ईश्वर पर सब कुछ छोड़ देती है तो तान्त्र रस की प्रतिमूर्ति बन जाती है।<sup>११</sup> बहुत विचार विचार के बाद संयोगिता के मन में विश्वास उत्पन्न होता है और वह पृथ्वीराज के भोजे पर सवार होकर पितृ-बुद्ध का परित्याग कर देती है। संयोगिता पृथ्वीराज और सामन्तों के मध्य होनेवाला संवाद बर्दा संयोगिता के विवेकी स्वल्प को हमारे सामने रखता है, नहीं गरी के अक्रान्त स्वल्प की सांकी भी संयोगिता में हृदिमीकर हो जाती है।

'अनवगम्य समय' के अंतर्गत संयोगिता का बीर्ययता-मैत्र और पितृ-स्नेह की झलक भी दिखाई पड़ती है। मुझ-भूमि में पति के साथ भोजे पर सवार होकर जाना<sup>१२</sup> और केहरी कंठीर द्वारा पृथ्वीराज के गले में कमान आस देने पर संयोगिता का प्रत्यक्ष काट देना<sup>१३</sup> संयोगिता के बीरत्व के द्योतक हैं। अब संयोगिता का व्यक्तित्व अंत-पुर की घोमा ही नहीं लाज-वर्धन से अनुप्राणित गरी का रस-रस रजित दुर्गा-स्वरूप भी है। संयोगिता के व्यक्तित्व का वृद्ध रस उस समय उपस्थित होता है जब पृथ्वीराज कमान पर बाण बढ़ाकर जयचन्द की मारने के लिए उत्तर होता है। सभी संयोगिता कोपते हुए हाथ जोड़कर ऐसा करने के लिए पृथ्वीराज को रोकती है।<sup>१४</sup> पितृ प्रेम के बलीमूत हृत्सर ही संयोगिता में यह दुर्बलता आएत हुई थी। यह दुर्बलता गरी-मुक्त और स्वाभाविक ही है।

११ पृथ्वीराज राघो, समय ६१।

१२ वही पृ० १८६७।

१३ वही पृ० १८९८।

१४ वही, समय १५४४।

‘शुक चरित्र प्रस्ताव’<sup>१२</sup> के अनुसार संयोगिता के दाम्पत्य जीवन की शक्ति स्पष्ट हो जाती है। पृथ्वीराज संयोगिता का बर्णन आसन की अधिकारिणी बनाता है और संयोगिता का यह प्रसूतन इष्टिनी के हृदय में संयोगिता के प्रति ईश्या-भाव उत्पन्न कर देता है। संयोगिता को अपने प्रेम पर विश्वास है और इष्टिनी के पथभ्रम से अपरिचित रह कर वह सभी राशियों को उचित भाव देती है। शुक द्वारा की गई प्रेम-नरीश्या में भी संयोगिता खरी उतरती है। संयोगिता के चरित्र में सौमित्रा बाहु के अन्धन कहीं इष्टिमोचर नहीं होते। इसके अतिरिक्त घंठपुर में निवास करते हुए भी संयोगिता के चरित्र में झीनता नहीं आने पाई है। कवि जब का पूर्वा मिलने पर और राजमन्त्री के आने के समाचारों से अज्ञात रहने के कारण जब पृथ्वीराज पश्चात्ताप करते हुए रह होकर दरबार में जाता है तो संयोगिता का स्वानिर्माण बाधित हो उठता है। वह सोचती है कि ‘स्थियों को तो लोग न जाने क्यों नीच बुद्धि समझते हैं। यह नहीं जानते कि इस सृष्टि की क्या स्थियों से ही है। जो स्त्री बन्धनर मुक्त-मुक्त बटाती है और मरण में भी उसका साथ देती है उसे दुष्प्रसन्न समझना बन्ध्याम नहीं तो क्या है?’<sup>१३</sup> संयोगिता की यह विचारबारा उस युग की उस नारी का आक्रोश है जो घंठपुर की कुटन में काम-केल और विषय-वासना की पूर्ति का एक साधन मात्र समझी जाती थी। पति के बन्दी होने के समाचार प्राप्त होते ही प्राची का निःसर्जन कर देता संयोगिता के प्रेम की चरम परिस्थिति है।

जहाँ तक संयोगिता की आर्थिक विशेषताओं एवं दुर्बलताओं का प्रश्न है कथा ने प्रवाह में उसकी आर्थिक विशेषताएँ उभर आई हैं और रासोकार की कथागत इष्टियों में अग्रत्यक्त रूप से उसकी आर्थिक दुर्बलताओं को भी विशेषताओं के नाम पर प्रयत्न किया है। उसकी ऐतिहासिकता को असीमितता ने नारी-सुखम भीस स्वभाव को अतिरंजनापूर्ण रूप-वर्णन ने और उसके प्रेममय स्वरूप को और नामुनता परक स्वरूप ने ढक लिया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ‘कनकचमय’ में जहाँ संयोगिता की आतिथ्य विशेषताओं को उभराने का अवसर मिला है वहीं ‘शुक चरित्र प्रस्ताव’ के अंतर्गत उसकी आर्थिक विशेषताएँ, उस युग की विसासितापरक कथा की कोठरी में दुर्बलताओं का धिक्कार होने के लिए छोड़ दी गई हैं।

पद्यावली की पद्यावली—पद्यावली ‘पद्यावली’ की प्रमुख नायिका है। उसका चित्रण इसीलिए आदर्श प्रमाण है। आधिकारिक कथावस्तु की नति एवं प्रगति प्रदान करने में उसकी चरित्र-सृष्टि अपना विशिष्ट स्थान रखती है। कथावस्तु के पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध का केन्द्र-बिन्दु पद्यावली ही है। अतः कथा में पद्यावली की

स्थिति कास्मनिकता एवम् ऐतिहासिकता दोनों ही दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कथा की सन्निहितता के नाम पर 'बुद्धि पथिनी भीष्मा'<sup>१०</sup> के अनुसार स्वयं जबका जन्मोत्ति के रूप में पद्मावती को बुद्धि का प्रतीक मानना महज गोरख-बंदा ही है।

पद्मावती सिन्धु के राजा युवसेन की प्रधान पटरानी चुपचाती की कोठ से उत्तम बड़ी में उत्पन्न हुई थी। 'जन्म बॉर्ड'<sup>११</sup> के अनुसार पाँच वर्ष की अवस्था में ही उसे पुराण पढ़ने बिठा दिया गया था और बारह वर्ष की अवस्था तक पहुँचते बहू प्रवानी हो गई थी। वह अत्यन्त स्वभाव थी। उसके कुरंग-नवल और-सी नासिका कमल-सा मुख माथि-से अबर, हीरे के समान दाँत केहरि-कटि हृदय पर हुलसनेवाले कल-र-बीर कुच और शंख मुवास खनी अहिनीय थे। यौवन के चार स झुकी पद्मावती की संपूर्ण कसाओं को रच रचकर बिचाता ने संभारा था। अनमागमन ने उसकी बाह को बाध कर दिया था और मारी-मुलम बिन्ता उसके मन में जाग्रत होने लगी थी क्योंकि 'ममा सहस्रय यौवन' हा जाने के बाद भी पिता उसके लिए कहीं 'दाँत' नहीं बसा रहे थे और मत्ता त्रास के कारण कष्ट नहीं पाती थी। ऐसी स्थिति में हीरामन के समक्ष उसके उत्पन्न जहाँ उसके मारी-मुलम स्वाभाविक स्वस्व को हमारे सामने रखते हैं वहीं अपने भविष्य के लिए चिन्तित होना पद्मावती की वातिमत्त विरोधता को भी प्रदर्शित करता है। पिता का दाँत न बसाना और मत्ता द्वारा त्रास के कारण चुप्पी बारभ करना हर कन्या की बिन्ता का विषय हो सकता है। आकुलता एवम् मिमञ्ज के निष्ठ सङ्गनुमृति की इच्छा से आत्मानिष्पत्ति स्वाभाविक ही है। अतः सपानी पद्मावती में यौवनायमन के साथ इस आकुलता एवम् आत्मानिष्पत्ति का पाया जाना सर्वथा नारीजनोचित ही है।

'मानसरोधक खंड'<sup>१२</sup> के अंतर्गत सखियों के कहने से नैहर-मुलम खेल में प्रवृत्त हो जाना, बूझा कामकर पानी में बैठना जल-खेड़ा करना हार का खेल रचना और हार के गुम होते ही घर पर उसके सम्बन्ध में पूछे जाने की बिन्ता से जाँकों का धनधना जाना पद्मावती की वातिमत्त विरोधताओं एवम् दुर्बलता को भी व्यक्त करते हैं। बीड़ा-कसाप की स्वच्छन्दता एवम् जल-खेड़ा के समय की उन्मुक्तता मारी के लिए नैहर में भी सुलभ है। बिबाहोत्तराण्य प्रायः स्थितियों में लज्जा एवम् अङ्गता या जाती है। इसी प्रकार राजपुत्री के लिए एक मोतियों की भाषा का हो जाना विरोध बिन्ता का विषय नहीं होता किन्तु भाषा के गुम जाने पर पद्मावती ने जाँकों का धनधना जाना और पूछे जाने पर इस हाथि की सफाई का प्रश्न पद्मावती की नारी

१० आभासी प्रकाशनी पृ० ३०१।

११ वहीं पृ० २३ से २४।

१२ वहीं पृ० १३ से २२।

सुमन दुर्लभता के ही चोटक है। जब पचावती का यह सरला स्वल्प भी बाधित होती है।

पचावती का प्रेममय स्वल्प उसके व्यक्तित्व का निहित अंग है। राजा के मोग के संघर्ष से प्रेमवश होकर यह वियोग चारण कर लेती है और पर-पीड़ा से उसका हृदय पीसा पड़ने लगता है।<sup>१२</sup> पचावती का यह वियोग संघर्ष एक भव्य अन्तर्मुख के रूप ही उचित होता है जो संभवतः उसके प्रेमाकुल हृदय को व्यक्त करने के लिए ही चित्रित किया गया है। मावी की प्रतिष्ठा का पूर्वमास प्रायः प्रेमाकुलों को ही आया करता है। पचावती इसका अनुभव करती है। इसी वियोगावस्था में हीरामन या आगमन उसे संतोष प्रदान करता है। हीरामन को गले लगाकर उसका रोना और सन्धियों के पूछने पर पचावती का यह कहना कि बिछुड़न का जो दुःख हृदय में भर चुका था मितलब्ध सुख के कारण बड़ी दुःख तपनों का गीर होकर दुबक जाता है।<sup>१३</sup> उसकी यह सात्वता क्षुब्ध प्रेमाकुलता का ही प्रतीक है।

प्रेमाकुलता में भी पचावती का प्रेम बंधा नहीं है। हीरामन के मुख से रत्नसेन की प्रशंसा सुनकर पचावती के मन में आगेवाला अधिमान भी विरक्तजन्य है। पचावती का यह कथन है कि कञ्चन को कोप का खोभ नहीं होता मग ही उसके साथ जोना पाता है।<sup>१४</sup> उसकी समझता का चोटक है। पिता के समुक्त इस बर्तन को बसाने का बर्तन सिंह के मुख में हाथ बाँधने बँसा।<sup>१५</sup> समझता उसकी आशंका को व्यक्त करता है। यह आशंका अनिश्चयजनित है। जब बँका एक पतुँचता हुआ यह 'अनिश्चय प्रेम प्रसूत है गुड़ रति-भाव का चालक है।<sup>१६</sup> प्रायः प्रिय-मासि के अनिश्चय की आशंका प्रेमी हृदयों की आशंकों को हड़ता प्रदान करती है। पचावती के मन में आती यह भावना कि यदि वह प्रेम-वियोगी मरता है तो हरया मुझे ॥ मनेदी क्योंकि उसके वियोग का कारण मैं ही हूँ।<sup>१७</sup> प्रेमियों के हृदय में छलनेवाली आशा ही है और यह निश्चय कि 'जो वह जोय समारे छासा। पाइहि मुमुति हैई जय मासा'<sup>१८</sup> इस आशा को हड़ता प्रदान करता है। यह हड़ता पचावती के मन में रत्नसेन को धूँसी देने के समाचार ज्ञात करके और अधिक बढ़ जाती है। पचावती का यह निश्चय कि 'योगी मेरे कारण मरता है तो मेरा उसका साथ बरती-स्वर्ग का है। वह चला है तो अगमन उसकी सेवा करूँगी और यदि जाता है तो मेरे प्रायः

२० आगती प्रेमावती पृ० ७३।

२१ वही पृ० ७६।

२२ वही पृ० ७७।

२३ वही पृ० ७७।

२४ आगती प्रेमावती की धुनिका पृ०

६७।

२५ आगती प्रेमावती पृ० ७५।

२६ वही पृ० ७५।

ही उसका साज बेने १० पद्मावती के प्रेममय स्वरूप की महत्ता को व्यक्त करता है। प्रेम-मयीक्षण के अथ उत्सर्ग की कड़ीटी पर कंचन की रेखायें प्रकट कर उसके व्यक्तित्व को सच्ची प्रेमिका के रूप में प्रकट करते हैं।

पद्मावती का विरहिणी स्वरूप भी उसके चरित्र की एक विशेषता है। सफ़ट काल के लिए जबुर गृहिणी प्रायः कुछ बचा लिया करती है। मारी की यह सचय वृत्ति उसके गृहिणी स्वरूप का एक ध्य होती है। जयन्तायजुनी पदुबने पर अब रत्नसेन गीठ में कुछ न खूने का संकेत करता है तो पद्मावती सखी द्वारा बुधबाप प्राप्त रत्नों में से एक नग राजा को देती है और जबुर गृहिणी की तरह यह कहने से भी नहीं चुकती कि 'संग्रह किया हुआ मन ही संकट के समय काम आता है।' १५ वहीं पद्मावती में गृहिणी की संभय-भूति के साथ-साथ उपदेश देने की मारी-सुलभ उस प्रवृत्ति के भी दर्शन हो जाते हैं जो प्रायः ऐसे ही अवसरों पर पुरुषों की चिन्तन क्षमता पर कुटुम्बियां लेती हैं।

पद्मावती की दूरदर्शिता एवम् बुद्धिमत्ता का परिचय राजन बैठन के निष्कासन एवम् गोर-बादल को राजा की भुक्ति के लिए तैयार करने के समय मिलता है। यह साचकर कि कवि की बाणी हृत्मान की समझ-सी होती है और वह बहुत करने के परभाव प्राप्त होता है। अथवा बोड़े ही न मिलता है १६ पद्मावती का राजन बैठन को दुसाकर, अपना एक कर्म दे देना उसकी दूरदर्शिता का प्रतीक है। इसी प्रकार स्वयं गोर-बादल के घर बाहर उसने अपनी बुद्धिमत्ता का ही परिचय दिया है। सेवक के द्वार जाना पानियों को नहीं छोड़ता और गोर-बादल के ही घरों में वह काम 'गंगाबल के विपरीत विद्या में बहने' १७ जैसा था। किन्तु सफ़ट के समय सेवक के द्वार जाकर पानियों के आचरण के विपरीत कार्य कर पद्मावती ने अपनी दूरदर्शिता एवम् बुद्धिमत्ता का ही परिचय दिया है। इसी प्रकार पद्मावती ने अपनी बात वहीं गोर-बादल के सामने रोते हुए रखी है, १८ वहीं गोर-बादल को होश दानेय अनिरुद्ध, परशुराम राजन १९ जैसी संज्ञाएँ भी प्रदान की हैं। प्रथम द्वारा उसने अपनी आविगल बुद्धिमत्ता को प्रगट किया है और द्वितीय द्वारा व्यबहारिक बुद्धिमत्ता को। रोककर काम निष्कासना मारी-बाभुयें हैं और प्रसंवा कर काम करवाना व्यबहारिक बाभुयें।

पद्मावती ने देवपाल की दूती २० एवम् बादशाह की दूती २१ के समझ को

२०. बावली प्रभावली पृ० ७५।

२५. वही पृ० १८६।

२६. वही पृ० २०१।

३०. वही पृ० २८६।

३१. बावली प्रभावली पृ० २०६।

३२. वही पृ० २८६।

३३. वही पृ० २६७ से २७४।

३४. वही पृ० २७५ से २७८।

उत्तमर व्यक्त क्रिये हैं उनसे उसकी पतिनिष्ठ एवम् पतिव्रत पर ही प्रकाश नहीं पड़ता अपितु, धर्म एवम् पूज्य बुद्धि मिथित दाम्पत्य प्रेम का भी स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। पद्मावती का अनन्य प्रेम उसे केवल प्रेम-गविता के रूप में ही चित्रित नहीं करता वह धर्म प्रेमिका भी सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त पद्मावती का व्यक्तित्व क्षत्राणी नारी शुभम ओज एवम् उत्सर्ग भाव से भी उद्भासित है। योरा-बादल को बुझ के लिए उत्साहित<sup>३५</sup> करते समय उसकी ओजस्विनी बाणी में क्षत्राणी का जातिगत ओज प्रस्फुरित होने लगता है। पिता पर चढ़कर सती होने की उत्सर्ग-वेत्ता में छाई का कंठ न छोड़ने का निश्चय तथा उस गाँठ को जो पति ने बोड़ी भी आदि-वंत तक न छोड़ने की मानना<sup>३६</sup> उसके उत्सर्ग भाव की दृढ़ भावना को प्रकट करती है। अतः उत्सर्ग एवम् अनुराग का महीन ताना-बाना पद्मावती के व्यक्तित्व का निर्माण करता है जो वैयक्तिक विशेषताओं के साथ जातिगत गुणों से भी परिपूरित है।

व्यक्तिगत विशिष्टताएं रखने के बाद भी नारी होने के कारण पद्मावती का चरित्र जातिगत दुर्बलताएं भिन्ने हुए हैं। बहुपत्नित्व प्रथा के परिणामस्वरूप पद्मावती को भी सौविमा काहु का विकार होकर सामान्य नारी की तरह ईर्ष्या-बाध को प्रथम देना पड़ता है। नाममती के साथ होनेवाले पद्मावती के विचार<sup>३७</sup> द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि पद्मावती में वे सारी दुर्बलताएं हैं जो प्रायः साधारण नारियों में सौत के प्रति हुवा करती हैं। नाममती को नापिन समझ कर अपने रूप-गुणों की प्रशंसा के साथ अपने प्रेम क बल पर नीचा दिखाने और अभी-कट्टी चुपाने की प्रकृति भी पद्मावती में पाई जाती है। कहा-मुनी से प्रारम्भ होनेवाली इस कमचोरी की अति 'हाना-पारी' में बिखार पड़ी है और यह 'बीरता भिड़त' पद्मावती की जातिगत दुर्बलता को ही प्रगट करती है। उसकी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता इस दुर्बलता में लो जाती है। यह जातिगत दोष यहाँ उसके व्यक्तित्व को कुछ छोटा कर देता है वहीं उसका चरित्र काल्पनिकता की असीमिक भूमि से उतरकर लौकिक मानभूमि पर आसीन हो जाता है। इस प्रकार साधारणता-असाधारणता का यह ताल-मेस उसे कवि कल्पनाविज्ञान बादल-नारी के साथ-साथ हाड़-मांस की नारी भी रखता है।

रामचरित धामस की सीता—मानस की प्रधान नायिका के रूप में सीता का चित्रण सात्विक एवम् आदर्श प्रधान है। मानस की आधिकारिक कथावस्तु में सीता का महात्मपूर्ण स्थान है। राम-रावण युद्ध का कथा भी इति से एक कारण सीता भी है। इसी प्रकार राम के अवतार की सार्वकथा अवशिष्ट पृथ्वी को घस-मार से मुक्त

३५ आवसी पद्मावती पृ० २८१।

३७ वही पृ० १६२ से १६७।

३६ वही पृ० ३००।

करने के सत्कार्य में श्री सीता एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यद्यपि कथावस्तु में सीता के चरित्र की सृष्टि नायक के शौर्य-प्रदर्शन एवम् लोकहर्षक स्वल्प की पुष्टि करने के लिये हुई है, किन्तु सीता की पति-परामर्शता एवम् राममनता ने मुष्कटा के स्थान पर कथा को स्वाभाविक पथि प्रदान की है। वस्तुतः कथा-भाग में सीता का स्थान गौण होते हुए भी नायक के जीवन एवम् शक्ति के लिए कसीटी के समान है। अतः कथावस्तु में यह हेतु मान ही गयी है।

सीता का चरित्र भारतीय मारी के आदर्श को सामने रख कर सात्विकता की भाव-भूमि पर अंकित हुआ है। सीता के व्यक्तित्व के तीन प्रधान रूप हैं—आदर्श पुत्री का आदर्श कुलवधू का और आदर्श पत्नी का।

जनकजनता के रूप में सीता सुमरता को भी सुन्दर बनानेवाली एवम् सोमा के घर में दीपहिता के समान है। सीता की सोमा उचित उपमानों के कारण अवर्धनीय ही नहीं अपनी अनौकिकता के कारण राय के सहज पुनीत मन को भी सुख करने की शक्ति रखती है।<sup>३०</sup> शौर्य-युवन को आते हुए, पुष्पवाटिका में राम के रूप को लज्जाये लोचनों से देखने के पश्चात् सीता के मन का पिता-ग्रह को स्मरण कर सुख होना और सखी की मुड़ मिरा को मुन कर किम्वद के कारण माता का भय मानना<sup>३१</sup> सीता के आदर्श पुत्री स्वल्प को ही हमारे सामने रखते हैं। अनुव्रतन के समय सीता के मन में उछलेवाला उडम और मन-स्वाय भी पिता की 'चारन हठ' के सामने मुष्करित नहीं होता अपितु, अपनी व्याकुलता को बड़ी देर कर सीता का संकुचा जाना<sup>३२</sup> भारतीय पुत्री के उस आदर्श की ही हमारे सामने प्रयत्न करता है जिस आदर्श की हृष्टि में माता-पिता की इच्छा ही सर्वोपरि होती है।

सीता का आदर्श कुलवधू के रूप में हमारे सामने तब उपस्थित होता है जब राय-जनवास के समाचार सुनकर व्याकुल-ही सीता कीउत्था के चरणों की वन्दना कर तिर नीचा किए बैठ जाती है और अपने चरण-मल से नरती को कुरेवती हुई, अपने सुन्दर नेत्रों से आसू बहाने लगती है।<sup>३३</sup> सास की मर्यादा संकट-काल में भी सीता को मुक्त बनाने रखती है। सास एवम् पति द्वारा कानन-वध की चर्चा सुन कर जब उत्तर देना आवश्यक हो जाता है तो सास के चरण-स्पर्श कर हाथ जोड़ते हुए सीता का अपनी अभिनय के लिए अना-वाचना कर्मा<sup>३४</sup> सीता की कुलवधू-मर्यादा को स्पष्ट कर देता है। नीति आपत्ति-काल में मर्यादा-त्याग की अनुमति प्रदान करती है किन्तु

३० नागध, नाग-कांड पृ० २३६, ३७ । ३१ नागध, अयोध्याकांड पृ० ४३८, ४६ ।

३२ वही पृ० २३८ से २० ।

३२ वही पृ० ४६४ ।

३० वही पृ० २८४, ४३ ।



उसे भी 'अविनय' मानकर की जानेवसी दया-याचना भारतीय कुसवधू के छात्रिक स्वस्व की वरम परिचयि मानी जा सकजी है। इसी प्रकार राजा बलरम के सम्मुख भी सीता का संकोचबल उत्तर न देना एवम् वन में अपने पिता-सुरतुस्य-हितकारी सुमंत्र के सम्मुख उत्तर देने को अनुरोधित समझना तथा सम्मुख होने का कारण विपत्ति को बताना<sup>४३</sup> सीता के आदर्श कुसवधू-स्वभाव का ही प्रतीक है। सीता के आदर्श कुसवधूस्वस्व की सर्वोच्च शक्त उक्त समय स्पष्ट हो जाती है जब तापस वेध में माता-पिता से मिलने पर रातभर उन्हीं के पास रहना सीता को अहित नहीं जान पड़ता किन्तु संकोचबल मन-ही-मन अनुमत्त करने के बाद यह यह कह नहीं पाती।<sup>४४</sup> आदर्श पुत्री एवम् आदर्श कुसवधू की यह बुद्धिवा केवल सीता के द्विधिवि स्वस्व की ही उन्नति नहीं बनाती अपितु दोनों कुल पवित्र हो जाते हैं और सीता की कीर्ति वनी : सुरसरि को भी विधित कर देती है।<sup>४५</sup>

सीता का आदर्श पत्नी का स्वस्व सफ़ट-कास की कसौटी से प्रारम्भ होता और सफ़ट-कास में ही निवार पाता है। सीता का पत्नीत्व विपाद के गंवावस से होकर हमारे सामने आता है। सीता का पत्नीत्व अने सफ़ट की बाहु है। यह न तो वनवास से विचलित होती है न विपिन-वास से बचपटी है। रावण द्वारा हृदय के बाह भी यह पत्नीत्व लज्जलङ्घता नहीं अघोष-बाटिका की मातनार्थ ए याचनाओं इते डाँबाडोल नहीं करती और अग्नि-परीक्षा भी इस पत्नीत्व पर आंच न आने देती। सीता का आदर्श पत्नी-स्वस्व स्नेह एवम् रिस्ती को बिना पति के सूर्य भी अधिक तपानेवाला समझता है। भोग-योग के समान मूवय धार की तरह और संसार को वन की याचना के समान मानता है।<sup>४६</sup> उक्त पत्नीत्व की दृष्टि में अग पंच वन धूमि पहाड़ सिंह, तालाव अवाह नदियाँ कोश भील हिरन पक्षी—छा प्राप्तपति के साथ रहते हुए सुखधामी प्रतीत होते हैं।<sup>४७</sup> अघोष-बाटिका की अघड्य बस्त्रा में भी यह पत्नीत्व अजोत प्रकाश की नमिनी की तरह अचहेनना करते हुए। तो राम की करि-कर छम मुना को ही अपने कंठ के उपमुक्त समझता है या रावण न तलवार को ही।<sup>४८</sup> अतः मन वचन और कर्म से पवित्र इस पत्नीत्व के लिए सब न पति आनेवासी अग्नि भी बचन की तरह जीवत ही विद्य होती है।

सीता का यह विधिवि स्वस्व आतिगत गुणों के साथ व्यक्तियुक्त विशेषताओं न देकर बलता है। कथा कुसवधू एवम् पत्नी का आदर्श आतिगत गुणों और दुर्बलताओं

४३ जानस, अयोध्याकांड पृ० ४६७। ४६ रामचरित मानस पृ० ४६४।

४४ वही पृ० ६८६। ४७ वही पृ० ४६८।

४५ वही पृ० ४८६। ४८ वही पृ० ८६०।

की सबसे बड़ा कारण व्यक्तिगत विशेषता में परिचित हो जाता है। सीता की व्यक्तिगत समस्या कहीं नीति का बल पकड़ती है और कहीं भावना का। व्यक्तिगत भावना कहीं कल्याण कहीं दुःखपूर्ण और कहीं पत्नी की मर्यादा के भीचे बल कर व्यक्तिगत विशेषता के रूप में उभर आती है। मानस की चरित्र-भूमि में सीता की दुर्बलता केवल दो स्तरों पर ही नाटी-मुसमल उरोजना एवम् आसका के रूप में पूर्णरूपेण उभर पाई है। उरोजना का बखतर उस समय उपस्थित होता है जब स्वर्ण मृग के पीछे गये राम के लिए आगुर होकर सीता लक्ष्मण को मर्मस्पर्शी बात<sup>४४</sup> कह कर राम की लोक में जाने को साधारण करती है। अजोक बाटिका-काल आसका से पूर्व है और वह सीता की नाटी-मुसमल आसकाओं को दुर्बलता के रूप में ही प्रगट करता है।

व्यक्तिगत समस्या व्यक्तिगत दुर्बलताओं के साथ सीता में कुछ दुर्बलतायें मानसकार के दृष्टिकोण के कारण भी उपस्थित हुई हैं। सीता के व्यक्तिगत-विकास की दृष्टि से यह चित्रण सम्बन्धी दुर्बलता मानी जा सकती है। मानसकार की राममयता एवम् कथावस्तु ने सीता के सामान्य जीवन एवम् दृष्टि-स्वल्प को उभराने का बखतर प्रदान नहीं किया है। सीता के दृष्टि-स्वल्प की सफल माध उतपत्ति के लिए मुन्ढी<sup>४५</sup> देते समय अवसर प्रगट हो जाती है। इसी प्रकार राम द्वारा मर-जीता करने के हेतु सीता को सखनुज वह बुझने के पश्चात् सीता का जलन में समाकर प्रतिबिम्ब प्रकट कर लेता<sup>४६</sup> सीता के विरह-विलाप-काल को दिखाने जैसी स्थिति में आस होता है। इस स्पष्टीकरण को मूल आने पर भी सीता के व्यक्तिगत में इस प्रचरता का अनुभव किया जा सकता है जो मारुतीय नाटी के चरित्र की सर्वोच्च ऊँचाई को सीता में समाहित करता है। संक्षेप में सीता का व्यक्तिगत मानवीय कम सर्वाधिक अधिक है। उसके नाटीत्व को बेकार ने एवम् यथार्थ को आसने ने पृथ-भूमि में पटक दिया है। इसलिए, वह जीवन के अनुप्राणित कम जीवन के लिए अनुकरणीय अधिक है।

रामचन्द्र चरित्रा की सीता—प्रधान नायिका के रूप में सीता का व्यक्तिगत 'रामचन्द्र चरित्रा की चरित्र-भूमि में अत्यंत एवम् रेखाशुद्धि-ता आस पड़ता है। चरित्रा की सर्वाधिक कथावस्तु का अंग होने के बाद भी सीता केशव के ब्रह्म रोषिष्य के कारण कथा में एक शिथिल-सी कड़ी का नाम करती है। चरित्रा के ३६ प्रकाशों की कथा-सूची<sup>४७</sup> देखने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि चरित्रा में सीता का स्थान गौण-ता रह गया है। 'रघुनाथ की जलन कमल की भास'<sup>४८</sup> पहिचाने से

४४. रामचरित मानस पु० ७८६।

४५. केशव-रामायणी पु० ४६७।

४६. वही पु० ६०२।

४७. वही पु० ५५३।

४८. वही पु० ७७६।

जगाकर 'बड़भागी' मिथिलेश-मुता का पुत्रों सहित सासुरों के पय लगने २४ तक का कथा-विस्तार, सीता के व्यक्तित्व को उभार नहीं पाया है। अतः रामचन्द्र चन्द्रिका की कथावस्तु में सीता का स्थान व्यापिकारिक होकर भी प्रासंगिक रह गया है। कथावस्तु में उसे वह प्रधानता प्राप्त नहीं हो सकी है जो किसी महाकाव्य की प्रधान नायिका को उपलब्ध होती है। कथा में वह हेतु मात्र बन कर रह गई है।

चन्द्रिका की सीता विश्वामित्र के मन्त्रों में वह लज्जुया है जो नवभूषण के मूषमारुह भूतल पर अवतरित हुई है २५ और वनारण्य के मन्त्रों में वह विभूषण की धिरताय है। २६ उसका पठि-श्रेय बन-यमन के समय उसके चरित्र की जो जाँची प्रस्तुत करता है, वह सीता की दृढ़ता एवम् पति के प्रति लगाव विश्वास का परिचायक है। वह नीच भूख उपहास नास को सहन कर सकती है बिपत्ति कर सकती है बड़का की जनन-ज्वाला में रहना उसे स्वीकार है, पति के प्रताप से तपन-ठाप को भी सहन करने को तत्पर है, परन्तु रघुबीर का बिछू उसके लिए असहनीय है। २७ पति से दूर रहते हुए उसे न तो व्योम्या में रहना ही अधिकार लगता है और न विदेह-नाम जाना ही क्योंकि लुबा के समय माता और बिपत्ति के समय गारी की आश्रमकला को वह आश्रमक समझती है। २८ पति का सामीप्य सीता के लिए सुखप्रद है। इसीलिए पाम भी सीता को सीठस लगती है। २९ इस प्रकृति के संतर्पण भी सीता का पठि-श्रेय एवम् उसकी पति-परायणता परिमलित होती है।

रामचन्द्र द्वारा हरण के पश्चात् सीता के जिस बियोध-वैध का स्वप्न दृष्टिपोषक होता है वह भी सीता की पति-परायणता एवम् अनन्य श्रेय का परिचायक है। मैत्री साक्षी में एकाकार हुई एक बेनीचारी सीता पक से निक्काबी हुई भुताली की तरह प्रतीत होती है। संपूर्ण जंगों को जंग में कुपाने का प्रयत्न करते हुए नमित दृष्टि से अभुपाठ करती सीता ३० राम की छाया-आभा ३१ होकर भी बिछू की साकार प्रतिमा जान पड़ती है। चन्द्रिका की सीता का व्यक्तित्व उसके पाठिपुत्र्य स्वस्व को ही हमारे सामने रखता है। इस पाठिपुत्र्य की चरम परिणति उस समय प्रगट होती है जब परित्याज्य का जीवन व्यतीत कर भी सीता नव-कुस द्वारा नव सेना को भीषित कर देती है। इस जीवन-दान का आकार भी नहीं 'अनसा बाबा कर्मणा' है जो राममय है और जिसके कारण सेना के भी उठने में बड़ी या विराम का विलम्ब नहीं होता। ३२

२४ कैलाश दर्शनसौ पु० ४१४।

२५ वही पु० २३०।

२६ वही पु० २३६।

२७ वही पु० २७६।

२८ वही पु० २७५।

२९ वही पु० २७७।

३० वही पु० २८८।

३१ वही पु० २५८।

३२ वही पु० ४१३।

केसव का प्रभाव-संश्लेष सीता के व्यक्तित्व को उभरने नहीं देता है और मनोमार्थों के संतर्पण भी उसके चरित्र पर कोई विशिष्ट प्रकाश नहीं पड़ता। पिप्पसावन समय सीता की मूकता और पुनर्मिस्रण के समय सीता की भाव-हीनता भी बलती है। पुनो वक्षिण सामुद्रों के पार सपत्नी हुई बकुभागी मिथिलेश-सुता<sup>६३</sup> केवल धार्मिक रूप से ही बकुभागी पोषित की जाती है। बकुभागीता के कोई मनोभाव सीता के मुख पर परिलक्षित होते हुए निहित नहीं हुए हैं। तुलसी की तरह ही केसव ने भी सीता की रूढ़ को पावन में रखवा कर छाया-शरीर द्वारा मूम की अभिसापा<sup>६४</sup> कराई है। यद्यपि तुलसी की तरह केसव बलोक बाटिका में सीता के स्वाभाविक विशेषण प्रमाणों को व्यक्त नहीं कर पाये हैं। वास्तव में रामचन्द्रिका की सीता का व्यक्तित्व न तो बाटिका रूढ़ि से और न मनोमार्थों की रूढ़ि से ही उभर पाया है। मुठ्ठीबर ज्यों में सीता का व्यक्तित्व सिमट कर केवल एक धूमिल-सा रेखाचित्र मात्र रह गया है।

प्रिय प्रवास की राधा—'प्रिय-प्रवास' की प्रधान नायिका के रूप में राधा का चित्रण भी प्रधानतः जादवी प्रवास है। प्रिय-प्रवास की कथावस्तु में राधा का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि वही का रूढ़िकोण 'सन्ने स्नेही अमनितन के देश के स्वाम जैसे नायक' तक ही सीमित न रह कर राधा जैसी सदा हृदय विस्मयमानुरक्त<sup>६५</sup> नायिका की ओर भी रह गई है। अतः प्रिय-प्रवास की कथावस्तु में राधा अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। सब पूछा जावे तो प्रिय-प्रवास-जनित व्यापा-कथा के प्राय-वट राधा के वसु-उल्लासों से ही जुड़े पड़े हैं।

'रमणि तुम्ह दिरोमनि राधिका' का व्यक्तित्व जहाँ एक ओर उसकी कामार्जना मोहिनी कमनीय कान्त छवि को कपोलान की प्रपुष्पप्राय कसिका के रूप में होमा बाटिका की अमूल्य भाषिनी लावण्य नीलामयी मूर्ति को प्रगट करता है,<sup>६६</sup> वहीं दूसरी ओर सुमना प्रसन्नवदना स्त्री-वाति एतोनमा राधा गुणगुला सर्वत्र सम्मानिता तथा रोनी-श्रद्धमनोवकारिणता के रूप में भी दिखाई पड़ती है।<sup>६७</sup> प्रिय मुकुन्द-प्रवास प्रसंग से जहाँ यह एक ओर किन्ना धीमा, परम मनीषा एवम् उम्मा<sup>६८</sup> बन जाती है, वहीं दूसरी ओर उसका वर-मीठा-कातर मन पथम को अपना प्रलय-सदृश प्रदत्त करके समग्र भी कसोड पथिक<sup>६९</sup> रोपी<sup>७०</sup> कसाटा हृदय सजना<sup>७१</sup> आदि को प्रेमांश

६३. केसव-संपादनी पृ० ४१४।

६५. वही पृ० ४। ५३।

६४. वही पृ० २५२।

६६. वही पृ० ६। ५६।

६७. प्रिय-प्रवास पृ० १७। १४।

७०. वही पृ० ६। ४३।

६८. वही पृ० ४। ४, ७।

७१. वही पृ० ६। ४६।

६९. वही पृ० ४। ५।

होकर भूल नहीं पाता। प्रियानुराग और सोक-सेवानुराग ही राधा के व्यक्तित्व के दो पहलू हैं जो उसके व्यक्तित्व को बिलिखटा प्रदान करते हैं। राधा इस बात को नहीं भूल पाती कि वह मारी है, घरस हूबया है, प्यार-बंजिठा है, यत उसका बिकल-बिभला और व्यस्त हो जाना स्वाभाविक है।<sup>१२</sup> ताराओं से जघित नम को जगना मेलों में मुदित बक-मंछिया निहार कर उसे स्वाम का मुक्ता ललित उर याद आ जाता है,<sup>१३</sup> पूनी सय्या प्रिय की कान्ति-सी दृष्टिगोचर होती है<sup>१४</sup> और बिबर भी फिर जाती है, उनमें ब्यास की ही चाहना है।<sup>१५</sup> राधा के मन में यह आकांक्षा है कि प्रियतम आकर उससे भीखी बातचीत करें, प्यारपूर्वक गोर में लें, नेत्र तुल हो जायें कुछ दूर हो और उसे जानन्द प्राप्त हो। किन्तु राधा ही हृदय में यह भावना भी बनी रहती है कि प्रियतम भी बें जयत-हित करें, चाहे घर न भी जायें।<sup>१६</sup>

प्रियानुराग एवम् सोक-सेवानुराग का यह द्वन्द्व राधा में बराबर बना रहता है। प्रियानुराग प्राकृतिक है क्योंकि उर की आलसार्थे जघित नहीं होना चाहती। यत राधा उन्हें सान्त्विकी वृत्ति में रंग देती है।<sup>१७</sup> यह कार्य प्रयत्नजम्ब है। राधा इसे स्वीकार करती है कि उसमें मोह-माया का आधिक्य है, वह प्रभव रंग में नित्य रजिता है, फिर भी वह स्वयं को पूत कार्यावली में मिरत कर लेना चाहती है जिससे उसका प्रभव पूर्वत स्यात् हो जाये।<sup>१८</sup> राधा स्वयं के कुछ से इतनी कहिता एवम् सोकमणा नहीं है जिसनी व्यक्ति वह जगवाधियों के कुछों से है।<sup>१९</sup> यत वह प्रियतम की आज्ञा को न भूलते हुए, विश्व के काम जाना चाहती है और अपने कामार्थ-पुत्र को भव में पूर्वता प्राप्त होते देखना चाहती है।<sup>२०</sup> इस दृष्टि से उसका प्रियानुराग सोक-सेवानुराग का अनुसरण करता है। सोक-सेवानुराग ही उसकी लक्षणा लक्षि है और इसीलिए राधा सुजल और की अया समों की साधिका कंगारों की परम निधि पीड़ितों की औपधि बीनों की बहल जनाधामितों की जननि वृन्-जवनि की आराध्या एवम् विश्व की प्रेमिका है।<sup>२१</sup>

मनोभावों के वर्तवत राधा के चिर विद्योनी स्वल्प की अर्चना ही अधिक हुई है। उसकी करुणा ममता सहानुभूति सेवा और परबुद्ध-कातरणा के मूल में भी बही प्रिय-अवाधजम्ब देखना पछाके मारती-सी परिलक्षित होती है। उसका आनाप

७२ प्रिय-प्रणास पृ० १६। ३०।

७३ वही पृ० १६। ५०।

७४ वही पृ० १६। ५४।

७५ वही पृ० १६। ७०।

७६ वही पृ० १६। ८८।

७७ वही पृ० १६। १०१।

७८ वही पृ० १६। १३०।

७९ वही पृ० १६। १३२।

८० वही पृ० १६। १३३।

८१ वही पृ० १७। ४६।

प्रसाद भी इसी विधोनी स्वल्प की प्रतिच्छाया के रूप में प्रकट होता है। यथोक्त की सात्वता प्रधान करते-करते जब राधा के चरित्र का भाव घसक कर चारि-बूतों के रूप में गलत रूप से टपक पड़ता है तब उसे आश्रय का नीर बहा कर चार सेवा का पुनरुद्भव चारि प्रकट करता<sup>८२</sup> वास्तव में बेचना को छिपाने का नारी सुमन प्रयत्न ही है। चरित्र के घसकते क्षण पर यह चानुरीग्रन्थ समस्त राधा के मनोभावों की अद्भुत छानवी ही प्रस्तुत करता है।

प्रिय प्रकाश में राधा के संयोगी स्वल्प एवम् उद्भव्य मनोभावों का अभाव है जो उसके चरित्र-चित्रण को एकानिता के क्षेत्र से बचा नहीं पाता। परन्तु प्रिय प्रकाश की कथावस्तु में यह संभव भी नहीं था। नारी-चित्रण के सर्वांगीण चित्रण के समाहार की श्रिय-शवास की कथावस्तु से अपेक्षा भी नहीं की जा सकती है। प्रेम के विकास में आन्तर्य स्त्रियों के मनोवैज्ञानिक विरोध के हेतु जिस भावना-रस की आवश्यकता थी वह कथावस्तु के कारण सम्भव नहीं हो पाया। साथ ही महाकाव्यकार के चारित्र्य ने राधा के परम्परागत स्वल्प को नया रंग देने में जिस दृष्टिकोण को अपनाया है उससे भी कुछ असंभवितों जठरा स्वाभाविक है। फिर भी अपनी सीमा में अपनी एकांगिता में अपनी असंभवितों में राधा राधा ही रही है और उसका चिरविद्योनिनी बेध लोभनेवानुवेष्टित होकर भी नारी सुमन है। इसी में उसके चरित्र की महान्ताएँ एवम् सुव्यक्तताएँ छिपी हुई हैं।

**साकेत की उन्मिता**—उन्मिता 'साकेत' की प्रधान नायिका है। साकेत की कथावस्तु में उसका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसे राम-काव्य की परम्परागत अवस्था के पश्चात् साकेत ने प्रधान नायिका का योग्यपूर्ण पद प्राप्त हुआ है। श्री मंत्रमुनारे भाग्येश्वरी के कथासुधार 'ऐसे लघ्व्य पात्र को जिसका अस्तित्व नाम मात्र को ही रहा हो किसी काव्य की मुख्य भूमिका में लाकर प्रतिष्ठित करना वा दृष्टियों से नया और कान्तिकारी प्रयत्न है।<sup>८३</sup> वे दो दृष्टियाँ सामाजिक एवम् साहित्यिक हैं। एक छोटे-से संकेत को लेकर एक बड़े काव्य की प्रधान नायिका का निर्माण करना उसे नये रसों और नई भावनाओं से सजाना गुतबी की सामाजिक क्षान्तिरसिता का प्रयत्न प्रमाण है।<sup>८४</sup> दूसरी क्षान्तिरसिता साहित्यिक है क्योंकि उन्मिता और भारत का नायकत्व स्वीकार कर साकेत में पहले पहल महाकाव्य की भीरुम-अपान पद्धति को उपेक्षा की गई है।<sup>८५</sup> अतः यह कहा जा सकता है कि क्षान्तिरसिता के रूप में उन्मिता राम काव्य का एक नया मोड़ है जिसकी प्राक्-प्रतिष्ठा साकेत की कथावस्तु में सुव्यक्तता का सूत्रपाद करती है।

८२ प्रिय प्रकाश पृ० १७।१८ से ४०। ८४ वही पृ० ४६।

८३ आधुनिक साहित्य पृ० ४५। ८५ वही पृ० ४६।

अपने 'उमिता' नाम के औषध को सार्वक करनेवाली उमिता, बाह्यार में जब पट पहने हुए, प्रकट भूतिमति उषा के समान स्वयं बिबि के हाव से बानी गई समीप स्वयं की गई प्रतिमा-सी प्रतीत होती है।<sup>८९</sup> गुराई से मिलता हुआ आक्य हीरकों में बड़े गोल नीलम से बड़े-बड़े मेघ पछराय से बबर, मोतियों से बाँध बन पटल से केस, काँठ कपोल, उस कल्प-चिस्ती की कसा को बन्य करते हुए, उसके हातफे आते ताक्य में उसे एक अनिध सुन्दरी के रूप में प्रस्तुत करते हैं।<sup>९०</sup> उमिता की हास-परिहास पट्टा और उसका कसा चातुर्य उसके सुखमय शम्पत्य जीवन का चोकर है। उमिता की मंजरी-सी उंगलियों में कसा बाँध करती है।<sup>९१</sup> उसे जब-जबसा होना स्वीकार होता है।<sup>९२</sup> वह बाँध होने के बहाने को इसलिए स्वीकार नहीं करती कि उसे बाँधी की सजा प्राप्त हो। उसकी यही आकांक्षा है कि उसे बेबी बनाकर रखा जावे। अतः वह पति को बेब बनाकर रखना चाहती है।<sup>९३</sup> इस प्रकार उसका शम्पत्य जीवन उसे एक मानमयी, प्रेममयी विनोदमयी कलामयी और भक्तिमयी के रूप में प्रस्तुत करता है।

राम-बन-गमन प्रसंग उमिता के विमोह का प्रारम्भ है। अपने मन को धू पर स्वर्ग भाव सरसाने एवम् मातृ-स्नेह-सुखा बरसाने के हेतु वह प्रियपथ का विघ्न नहीं बनने देती है और उसे बिकार पहिच रखते हुए, खोक-भार से चूर्ण न होने देने का प्रयत्न करती है।<sup>९४</sup> फिर भी उसकी आविष्यत दुर्बलता उसका साथ नहीं छोड़ती और सीता के कंठावरोध के साथ ही वह निरुत्त मुक्त उमिता 'हाव' कह कर बहान से गिर पड़ती है।<sup>९५</sup> मन्वय में भी बिस्लेष उपस्थिति हो जाता है और यौवन में ही यतिवेष।<sup>९६</sup> उसकी पीसी पड़ी मुख-कान्ति एवम् नीली-नीली ललाट बाँधें<sup>९७</sup> विमोह-मनित बेरना को व्यक्त करती हैं। उसका सब जना गया है, पर आका नहीं पई है।<sup>९८</sup> उसे इस बात का खेद है कि वह नाम का साथ भी न दे सकी।<sup>९९</sup> ऐसी स्थिति में रघुनन्दन की इस असहाय बहू<sup>१००</sup> के लिए अंशु, जलनि अंबर में स्वच्छ सरत की पुनीत लीड़ा जबकि-पिच-लीड़ा-सी हो जाती है।<sup>१०१</sup> बिना प्रयोक्ता के मोग रोग हो उठते हैं।<sup>१०२</sup>

८६	साकेत पृ० २६।
८७	वही पृ० २७।
८८	वही पृ० ३७।
८९	वही पृ० ३१।
९०	वही पृ० ३०।
९१	वही पृ० १०२।
९२	वही पृ० ११२।

९३	वही पृ० १५२।
९४	वही पृ० १६०।
९५	वही पृ० १६१।
९६	वही पृ० १६२।
९७	वही पृ० १६७।
९८	वही पृ० २२२।
९९	वही पृ० २७०।

## हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र-भूमि

वही युद्धक्षमा के समझ प्रगट होते उसके बिरहोद्धार अधु बग कर नयम् सर्ग के प्रारंभ में धिक्क गये हैं।

उर्मिला के हृदय में सगी बिरह की जाम चास-वृत्त से धक्क उठती है उसके रोम रोम से स्वेद टपक पड़ता है पर इस कटुता में भी मधुर स्मृति के मिठास पर वह बलिहारी जाती है।<sup>१</sup> पीड़ा में उसकी सहानुभूति को उमार दिया है। पूर्णों में पत्नी सरनि को अपने अंग सहेज कर वह झूट जाने की समाह देती है क्योंकि उर्मिला कोनों की खेज पर निवास करती है।<sup>२</sup> वह प्रोषित पतिव्राजों को इसीलिए निर्ममिष्ठ करना चाहती है कि हम बुद्धिनी मिले तो कुछ बटे।<sup>३</sup> पतंग की कानी भाव्य-निपि के प्रति जब उसके मन की सहानुभूति बाहुल्य होती है तो संसार की काम नहीं परिणाम निकारनेवासी बहिष्क-वृत्ति उसे बलने लगती है।<sup>४</sup> उर्मिला के लिए बिभि के प्रमाद से विनोद भी विपाद है।<sup>५</sup> उसे जहाँ बिरह ने गार दिया है सुष-मुष हर सी है, वही कालजान का विचार भी दिया है। बिरह के संग अभिसार भी है।<sup>६</sup> अतः वह सती मानस-मंदिर में पति की प्रतिमा बाप आप भारती बनी उस बिरह में बसते हैं।<sup>७</sup> उर पर अश्वि-शिला का शुकमार बर कर उसे हयबल-बार से टिल-टिल काट रही थी।<sup>८</sup> उसकी जीकों में प्रिय की पूर्ति बही हुई थी मोन मूने से से और उसका विषम विषोप योग से भी अधिक था।<sup>९</sup>

संयोगिनी एवम् वियोगिनी के अविरक्त उर्मिला के व्यक्तित्व का सब से महद् स्वस्म्य उसके भारीत्व का प्रकरतम रूप उसके सज्जानी वेश में दृष्टिगोचर होता है। तत्काल को शक्ति लगने का समाचार श्राव कर जब उर्मिला सेना के समग्र शत्रुध्वज के निकट जाकर लड़ी होती है तो मरानी की तरह प्रतीत होता है।<sup>१०</sup> उसके बड़ा चास से छूटे बालों की बटा में आनन पर सी बरब पूट पड़े से और मांसे का सिद्धर बंगार स्रष्ट सबग हो उठा था।<sup>११</sup> जबम बमार्गों को विषम कर्म-फल बलाने के लिए उसका भीति के समान बाये बलने की शोषणा करना।<sup>१२</sup> निःसंदेह उसके सज्जानी सुमन जोर को प्रकट करता है। वियोगिनी उर्मिला का वह जोरस्त्री स्वरूप अनुपम है।

- १०० साकेत पृ० २८६।  
१०१ गही पृ० २८२।  
१०२ गही पृ० २७४।  
१०३ गही पृ० २८१।  
१०४ गही पृ० २८६।  
१०५ गही पृ० २७६।

- १०६ गही पृ० २६७।  
१०७ गही पृ० ३४०।  
१०८ गही पृ० २६८।  
१०९ गही पृ० ४७२।  
११० गही पृ० ४७२।  
१११ गही पृ० ४७४।



रामायण भोग विरह-विमल और जोरह वर्ष की अवधि के पश्चात् प्राप्त होने वाला संयोग उमिता के व्यक्तिस्व का निर्माण करते हैं। उसके अनुपम और अनुताप में जहाँ उसकी जातिगत विषयताएँ एवम् दुर्बलताएँ मनोमानों के उतार पड़ाव के साथ अभिव्यक्त हुई हैं वही उसकी व्यक्तिगत विशेषताएँ उसके व्यक्तिस्व तथा स्वरूप को निखार देती हैं। फिर भी साकेत के विरह-विनाश में पक्ष-पक्ष में परिवर्तित होने वाले छहों ने उमिता के संवेगात्मक स्वरूप की मामिकता में व्यवधान उपस्थित किया है। 'राम द्वारा गाई गई 'वधु उमिता की पुनः-नीता' यद्यपि उसे इस सूत्र पर सङ्घर्ष-कारिणी के ऊपर धर्म-स्थापन करनेवाली भाव्यशालिनी घोषित करती है<sup>११२</sup> किन्तु उसके विमल-नाम में परिवार के किसी भी प्राणी का सात्वना प्रदान करने न जाना उसका कुलबन्ध स्वरूप को व्यक्त करने में असमर्थ ही साबित हुआ है। मर्यादापन्न बरारम के छन्दों में वह 'रघुपुत्र की वसहाय बाहु' ही अधिक जान पड़ती है। इसे चित्रन-रूप बचवा कवि भी असावधानी ही माना जा सकता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से उमिता का मनोविश्लेषण भी संवेगात्मक तीव्रता तथा मूल प्रवृत्तियों से कई स्थानों पर दूर जा पड़ा है। इतना सब होते हुए भी उमिता का संयोग-समाप एवम् विमल-विनाश मारी सुलभ ही जान पड़ता है। आवलगाविता का बहगुण उस अवस्थाविक मारी नहीं बना जानता। काव्य की वह चिर उपेक्षिता साकेत ही नहीं हिन्दी-महाकाव्यों की भरित भूमि में प्रथम बार जिस रूप में प्रविष्ट होती है वह रूप अच्युतिपतित होकर भी अोजसम आदर्श प्रदान होकर भी स्वाभाविकता के निकट एवम् दैवी पुष्पों से मण्डित होकर भी मारी-सुलभ है।

कामायनी की मञ्चा — मञ्चा कामायनी की प्रमुख नायिका है। उसने कामायनी की कथा को गतिशीलता प्रदान की है और नायक की सहृदयी के रूप में उपस्थित होकर भी उसने नायक के समस्त उदात्त गुणों को आत्मसात्-सा कर लिया है। उसका छात्सिक स्वरूप कथा पर छाया रहता है। वह पौरुष से ओत-ओत चिन्तावाता नायक को निवृत्ति के मार्ग से नीचकर, मंगलमय वृद्धि के लिए बहसर करती है। अतः कथा में उसका स्थान एक अति-श्रोत एवम् प्रेरणा-प्रवाह की तरह है।

मञ्चा का व्यक्तिस्व अपनी उपमा आप है। वह उदार हृदय की बाह्य अनुकृति है। उसकी सम्पुक्त मञ्जी काया बाजार बेत के भीत रोमराने मेघों के धर्म के मध्य भी मीथन की नित्य छवि से भीत होकर, बिदल की करण कामना-मूर्ति-सी प्रतीत होती है।<sup>११३</sup> उसके मन में जब उल्लाह मग्न था जो समित कथा का ज्ञान सीखने के लिये उसे पंखों के बेत की ओर नीच कर लाया था। मुक्त व्योम-रत्न पर नित्य

मनु के उसका सम्पास बढ़ जाता था और उसके मन का कुतूहल व्यस्त होकर हृष्य सदा का सुन्दर सत्य कोज रहा था।<sup>११४</sup> जन-प्राप्तन के पश्चात् उसका निष्पाय जैसा जीवन विध्वंस्य हाकर मटक रहा था। नमि का अन्त देखकर उसके मन में किसी के जीवित होने का अनुमान बाधित हुआ।<sup>११५</sup> अज्ञात अटितताओं का अनुमान कर विध्वंस के प्रति अगन्तव्य बने मनु के कर्मविमुख अपने ही बोझ से दबे जा रहे जीवन में उसने अवलम्ब की तरह प्रवेश किया।<sup>११६</sup> और अपनी दया माया ममता मधुरिया अनाथ विरहास तथा स्वच्छ हृष्य को समर्पित कर दिया।<sup>११७</sup> अज्ञा का यह समर्पण मात्र उसके गारी-हृष्य का वह उदात्त पुन है, जो उप को जीवन का सत्य मानकर दीन अवसाह से दबे जा रहे पुरुष के प्रति स्नेह से प्रवित हो उठता है। वह उस अमृत सतान को अपने साहचर्य से मय-मुक्त कर मगलमय बुद्धि की ओर बहसर करते हुए, उसके जीवन को पूर्ण आकर्षण का केन्द्र बना देना चाहती है ताकि सकल समृद्धि बिंधी बसी जावे।<sup>११८</sup> इस प्रकार अज्ञा के उत्सर्ग में विधाता की कस्याधी बुद्धि को मूढता पर पूर्ण क्लेश सफल बनाने की मइसी भावना बिंधी हुई है।<sup>११९</sup>

वह उति और काम की सुन्दर, मोसी-भासी संतान है। यह जमना है जो संवृति में प्रेम-कसा का संवेध सुनाने के लिए आती है। बही बह चेतनता की मांड है मूल-सुबारी की सुमनन है जीवन के उच्च विचारों की शान्तिमयी सीठनता है।<sup>१२०</sup> उसके समर्पण में बहूज का एक मुनिहित भाव एहता है।<sup>१२१</sup> इसी बीच जबकि विजय पथ पर मधुर जीवन का खेल नियति द्वारा हो अपरिचितों में खेल करवाता जाहता है,<sup>१२२</sup> गारी का आतिगत संस्कार अज्ञा में बाधित होकर बृह-उपकरण बुद्धने में लभ जाता है और शस्य पशु या चान्य का संचार होने समता है।<sup>१२३</sup> यह बृह-व्यवस्था बही अज्ञा के आतिगत गुणों को हमारे सामने उपस्थित करती है वहीं भावि गारी का वह पुरुषार्थी स्वल्प भी हमारे सामने मस्ता है जो विधूतम जीवन को एक सामाजिक धृष्टता में सुव्यवस्थित रखने का प्रयत्न करता है।

मनु की बाधित वासना अज्ञा के गारीत्व को मनोभावनात्मक करौनी है। विस्लेषणों की मावकता से मनु द्वारा जब अज्ञा के गारीत्व का विचलित करने का मल किया जाता है तो पुरुष के इस वास को 'अधीर मन की अमृति और क्षोममुक्त

११४ कामायनी पं० ३१।

११५ बही पृ० ३२।

११६ बही पृ० ३२, ३६।

११७ बही पृ० ३७।

११८ बही पृ० ३८।

११९ बही पृ० ३८।

१२० बही पृ० ७६ ७७।

१२१ बही पृ० ८१।

१२२ बही पृ० ८१।

१२३ बही पृ० ८२।

सम्पाद १२४ कह कर, एक हफ्ती-सी तिङ्गकी बैसा नारी सुसभ टासमदूस का प्रयत्न किया जाता है। किन्तु भट्टा को इस बात का भान है कि वह दुर्बलता में नारी है क्योंकि अवयव की सुन्दर कोयलता के कारण उसे हारना पड़ता है।<sup>१२४</sup> अतः मनु द्वारा वह उन्मत्त होकर उसका हाथ पकड़ लिया जाता है तो नारीत्व का मूल मनु अनुभाव, बीड़ा चित्ता एवं उल्लास सहित हृष्य का जानब-बूझ बन कर रास करने लगता है।<sup>१२५</sup> उसकी पलकों का विरला नासिका की नोक का झुकना भ्रू-सता का बे-रोक कानों की राह पकड़ना ललित कर्ण कपोल पर सत्त्वा का स्पर्श एवम् कदम्ब-सा खिजा पुसक तथा मृगवृक्षों में उस परिस्थिति का निर्माण कर देता है जो नारी-हृष्य-का फिर बंध बन जाता है।<sup>१२६</sup> भट्टा का परिमय परम्परागत कवियों से अनुप्राणित न होकर मनोविज्ञान की दृढ़ धूमि पर आसीन है। वह आदि नारी के सर्वथा अनुरूप है।

भट्टा के मातृत्व में उसके नारीत्व का स्वरूप और भी निखार पाने समर्थ है। उसका मूल केतकी गर्म-सा पीला पड़ जाता है, बाँझों में आलस भरा स्नेह क्षमता है, मातृत्व के बोझ से झुके हुए पीन पयोधर बचने लगे हैं और इस अवस्था में ही भट्टा कोमल कानों की नय पट्टिका बनाती है।<sup>१२७</sup> भाबी बतनी का सरस एवं धम-दिन्नु बन कर समकथा-सा भान पड़ता है।<sup>१२८</sup> उसने फुटीर तैयार किया है और बेतली लता का मुबिण्णू भी डाला है।<sup>१२९</sup> दुह-भरनी के इस दुह-विधान के साथ कितनी ही मीठी बमिलापायें भी हैं जो चुपके से बूम रही हैं। भाबी संतान को झूने पर छुनाने की चुनचुन कर उसका बदन घुमने की अपनी छाती से लिपटा कर उसे बाटी में घुमने की तथा उसकी मीठी रसना से मधुर बोस घुनने की मानघा १३१ भट्टा के नारी सुसभ मातृ स्वरूप को व्यक्त करती है। किन्तु मातृ-हृष्य की मीठी बमिलापायें साकार भी नहीं हो पायीं कि भट्टा को पति-विश्रोह का प्रहार सहन करना पड़ता है। इस परिस्थिति-स्था में ही उसे मातृत्व का उत्तर दायित्व वहन करना पड़ता है। एक ओर दियोधन्य परिचाप है और दूसरी ओर संतान के लालन-पालन का उत्तरदायित्व। एक ओर दियोध है, दूसरी ओर वात्सल्य। और इसी दियोध-वात्सल्य के मध्य भट्टा का सर्वमगना स्वरूप धनै धनै विकसित होने लगता है।

१२४ कामायनी पृ० २१।

१२५ वही पृ० १०४।

१२६ वही पृ० २४।

१२७ वही पृ० २४।

१२८ वही पृ० १४२।

१२९ वही पृ० १४३।

१३० वही पृ० १४२।

१३१ वही पृ० १४२।

आसू से भीने आँखों पर मन का सबकुछ रखते हुए अज्ञान ने अपनी स्मृतियों से जीवन का सविनय सिखा है। एक ओर बड़ा मनु की याद उसे सासरी स्त्री है वहीं कुटिया की सोल-किरण-सी दीप-लाला बुझने न पाये इस भय से अज्ञान दब कड़ा कर भीरे-भीरे सब सहने के लिये स्वयं को तैयार करती है।<sup>१३२</sup> बिरह-न्य पीड़ा का मातृत्व का सुखार दवाने का प्रयत्न करता है और इसी विधोम-वत्सल मध्य प्रिय के अगिष्ट की आशंका का स्पष्ट अज्ञान को विषमिष्ट कर बैठता है। बासी मनु की खोज में अज्ञान निकल पड़ती है। अज्ञान मनु को खोज निकामती है और तु को पुनः अज्ञान का अवलम्ब प्राप्त होता है। मनु के संवेदन में हृदय को यज्ञा-ज्ञान की अजस्र वर्षा स्नेह की मनु रचनी और जीवन की चिर वृष्टि में संतोष-सी दान पड़ती है।<sup>१३३</sup> परन्तु फिर भी मनु अज्ञान को छोटी छोड़कर भाव लड़े होते हैं और अज्ञान अपने पुत्र को हज़ा को खोप कर पुनः मनु को खोज निकामती है। अपना उब कुल देकर भी वह स्वयं को रंक नहीं मानती।<sup>१३४</sup> उसकी निर्बिकार मातृ-मूर्ति उबार है उसका स्वरूप सर्व-भगमा का स्वरूप है और वह क्षमा-निसय मे बाध करती है।<sup>१३५</sup>

अज्ञान नारी का मंगल रूप है। वह क्षमा की देवी और उदारता की सीमा है। वह हिंसा और स्वार्थ की विरोधिनी है। वह निवृत्ति में प्रवृत्ति की राह बताती है और विरक्ति में निवृत्ति के आनन्दमय पथ पर, हड़ आत्मा के साथ मनु का सबम बन कर बड़ती है। वह सहज समपथमयी है। मानवता की कल्याण-कामना से प्रेरित होकर मनुष्य के संकल्प से वह अपने जीवन के सोने से सपनों को दान करने में नहीं हिचकती और आसू से भीने आँखों पर मन का सबकुछ रख कर केवल नारी के अज्ञान-मय स्वरूप को जीवन के समस्त पर पीपुष-सोख-सा प्रवाहित करती है। वह पूज आत्म विश्वासमयी नारी है। जो पुरुषत्व मोह में नारी की सत्ता को धूल जाने वाल पथ मोठ पुरुष को समरसता काप ठ पड़ाती हुई अपने सर्वभगमा स्वरूप को सार्वक करती है। संतोष में अज्ञान वह विश्वासमयी निष्ठान स्मिति है जो निस्सबम मन्नास पक्षि को अवलम्ब प्रदान कर ठिठोसी करने का अवसर नहीं देती।<sup>१३६</sup>

हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र भूमि में अज्ञान का व्यक्तित्व और मनोभावों के अंतर्गत व्यक्त उसका स्वरूप अपने आप में अतिथीय है। उसका उदात्त स्वरूप उसकी अपनी विशेषता है और उसकी नारी सुलभ कमजोरियाँ ही उसकी दुर्बलतायें मानी

१३२ कामायनी प० १७६, ७७ ।

१३३ वही प० १४६ ।

१३४ वही प० १२६ ।

१३५ वही प० २२६, ९ ।

१३६ वही प० २४६ ।

जा सकती है। आकर प्रमदाक्षर की विचारधारा के साथ अपनी सहमति व्यक्त करते हुए, उन्हीं के शब्दों में यही कहा जा सकता है कि 'अपने उदात्त रूप के आचार पर बड़ा कामायनी की प्रमुख नायिका के रूप में आयी है' और 'कवानक-नायक सभी पर उसके महान् व्यक्तित्व की आया है। हिन्दी की साहित्यिक परम्परा में कामायनी का यह उदात्त महान् चित्रांकन एक नवीन प्रयोग है।'<sup>१३०</sup>

**'दूरबहा' की दूरबहा** — 'दूरबहा' की प्रथम नायिका दूरबहा है। महाकाव्य का नामकरण भी नायिका के नाम से ही हुआ है। अतः यह स्पष्ट है कि 'दूरबहा' की कथा-वस्तु में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। महाकाव्य की आधिकारिक कथावस्तु उसी के चरित्र से अनुप्राणित है। ऐतिहासिक व्यक्तित्व रखते हुए भी इस महाकाव्य की कथावस्तु में उसकी जीवन रेखायें कवि-कल्पना द्वारा रचित ही नहीं हुई हैं अपितु उसके अंतर्गत का प्राग्वहिक विकास भी दूरबहा की कथावस्तु के अंतर्गत समर आया है। वस्तुतः दूर बेह की एक साधनहीन नायिका किन्तु प्रकार भारत के एक मुगल-शासक की नायिका हुई, इसका स्पष्ट वर्णन यद्यपि इतिहास में रचित है, पर उसके प्राचीन की वास्तविक हलचल का वर्णन 'दूरबहा' काव्य में ही प्राप्त होता है।<sup>१३१</sup> अतः दूरबहा की कथावस्तु दूरबहा के चरित्र से ही अनुप्राणित एवम् गतिमान है।

दूरबहा का व्यक्तित्व कालचक्र ने अपेक्षाओं पर धर्मिय निमग्न का भेदा-बोधा है। जन्म के ठीक बाद ही प्रकृति के आश्रय में काफ़ीना छूट जाने के मम से माता-पिता द्वारा छोड़ी हुई इस अनाथ-कन्या को एक वर्मपरायण बूढ़े घरदार का वाधम प्राप्त होता है और कमार की सराय में भाग्यवत पुनः उसे माता का जक बनाम से संनाम बना देता है। धीरे-धीरे यह मधुर नवमी आत्मा मेहर बंधुर-सी बढ़ती जाती है। सौन्दर्य-धर्मिणी की समाप्ति ने साथ ही जीवन का बसन्त फूलने लगता है। मृदु वासन्ती सनीर आ-आ कर उसकी बेह-सदिका का जीवन बढ़ने लगता है और इस प्रकार मुन्बरी मेहसुनिसा पर दिन दिन पानी बढ़ता जाता है।<sup>१३२</sup> अपनी मजात यौवनावस्था में ही एक दिन बाम में उसकी सुखीम से भेट हाटी है और सुखीम द्वारा काँटा निकाल कर बामन फड़ककर बाँधत ही मेहर ने दिन में एक बूझ काँटा लव जाता है।<sup>१३३</sup> बूझ के कदुतर को भी 'कड़' से उड़ा देने वाली मेहर का जीवनानुसुखीम की सुख-वर्षा में परिचित हो जाता है।<sup>१३४</sup>

- 
- १३० प्रस्ताव का काव्य पृ० ४०७ द। १४० यही पृ० ६०।  
 १३१ यही योनी के यौ पृ० १४०। १४१ यही पृ० ६०।  
 १३२ दूरबहा पृ० ४४।

मेहर और ससीम के इस परिणय के मध्य जमीना व्यवधान बन कर उपस्थित होती है। अफ़्दर द्वारा अलीकुली खाँ के साथ उसका विवाह कर दिया जाता है और इस प्रकार नियति नाम में मुरज्जही का जीवन थक पुनः उसका जाता है। इसी बीच उसके नायक के परीक्षण का दाग उपस्थित होता है। उसके पति की हत्या के निमित्त जब ससीम लुकाव डालकर प्रविष्ट होता है तो वह तमवार खींच कर उसका मुकाबला करती है। 'अबरी' पर कुम्हारों के ताने लगने<sup>१४२</sup> भी जुझाई भी उसे अपने गारी-बर्म से विचलित नहीं कर पाती। अपने पावन घर की सीमारों के भीतर का अमर बाम्पत्य बर्म<sup>१४३</sup> उसे साहस और नीति की मूर्तिमान प्रतिमा बना कामता है और उसकी बाणी का ओझ एक पवित्रता गारीके सेजस्वी स्वरूपको हमारे सामने ला अड़ा करता है। अपनी आँख का पानी सुरक्षित रखने वाली घर की यह रानी ससीम के लिये बाबूक हृदय प्रशस्ति नहीं पर-नापी है जो अपने कर्तव्य-बर्म पर एक मन धन व्योमचक्र कर चुकी है।<sup>१४४</sup> किन्तु कर्तव्य-बर्म के नाम पर ससीम को बुरकार कर और कोमल नावों को क्षमर में रौंद कर भी मेहर का कम तक का प्यार बिसुध नहीं हो पाता। ससीम के जाते ही मेहर के हाथ से तमवार का छूट जाना और उसका अचेत होकर घरा पर गिर पड़ना<sup>१४५</sup> इस बात का प्रमाण है।

आगरा से जो उसके स्वप्नों का सारा है विवाह हाथ समय मुरज्जही के हृदय के मुकुमार भाव फूट से पड़ते हैं। वह उन कुलों के एकतावास के अमिनय प्रेमाभाष और कुशल से कलियाँ घूब-घूब कर प्यार करनेवाले से विदा माँती है।<sup>१४६</sup> मर्यादा अपेक्षा कर्तव्य-बर्म के नाम पर वह भ्रान्ति से धान्ति से अपनी भोली भूल से और साथ ही अपनी मुर्झाई आलाओं की छमाजि के फूल से विदा लेती है।<sup>१४७</sup> किन्तु उसका नारी-हृदय जिस मोहो भूल से विदा जाइता है, वह जैसे विदा होता नहीं जाइती। जिस व्यक्ति के साथ वह अब चुकी है वह भावनाहीन है। मोहनी मेहर का बाहू उस पर बल नहीं पाता। वह हरमसरा के बाहर पग भी नहीं रख सकती और उसके कानों पर, मुँह पर, पग पर तूना है।<sup>१४८</sup> फिर भी सहनशीलता के बाव भी उम्टा ही असर होता है और पति द्वारा अपनी बच्ची जैसा के जमीन पर पटक दिये जाने के परभाव मुरज्जही का स्वाभिमान आवृत हो उठता है। पति का दुर्व्यवहार और उसका निरपेक्ष होता अपमान उसके लिये अघहनीय हो उठता है। ऐसी निस्सत सहने से

१४२ वही पृ० ६०।

१४३ वही पृ० ६६।

१४४ वही पृ० ६६।

१४५ वही पृ० ७०।

१४६ वही पृ० ७२।

१४७ वही पृ० ७३।

१४८ वही पृ० ८०।

बहु प्राण दे देना उचित समझती है।<sup>१४४</sup> दूरजहाँ के नारी-मन की इतना जबर बाटी है। वह निरपराधक रूप से यह निर्णय कर लेती है कि मानवताविहीन पति का धम्याम न तो उससे सहा जा सकता है और न जिनसेही मर के जर से उसका अस्तक भुक्त सकता है। वह प्रेम के इतारे पर मान सहित अपने प्राणों का बर्गन कर सकती है किन्तु मर्यादा छोड़कर किसी के तन्तुने बाटना उसके लिये सम्भव नहीं है।<sup>१४५</sup> स्नेह हीन सिद्धा से ठेक निकासने की आज्ञा त्याग कर वह जोड़े का पबाब सोझे से देने की दृष्टि से बिबाह-विच्छेद का निश्चय प्रकट करती है।<sup>१४६</sup> पर सर्व सुखी की बातों से प्रभावित होकर वह पुनः अपने हृदय से सड़कर, उसे सगाम भगाने का निर्णय करती है।<sup>१४७</sup> वह जेठेजमा एवम् धानि नारी-मुसम हो है जो दूरजहाँ में जातिगत स्वभाव के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

दूरजहाँ के हृदय पर सगी-सगाम दुर्बल के बहाने में अधिक काल तक टिक न सकी। घेरमफ्तान की हत्या के पश्चात् यद्यपि चार वर्ष तक उसने अपने भावुक हृदय को समय से सम्माने रखा परन्तु सलीम द्वारा विकृत स्थिति में बस देने पर यह समय नईसकाने सगता है। सलीम की सेवा भावना और उसके प्रेमोद्गारों के सामने दूरजहाँ की तटस्वता टिक नहीं पाती। एक दिन आँखों में प्रम-मधु झलक उठते हैं रमबी का सिर झुक जाता है और इस झुक सिर पर जहाँगीर पदार्थ होकर ठाम रख ही देता है।<sup>१४८</sup> बपों का सड़का प्यार पुनः एकारण हो जाता है।

दूरजहाँ की चरित्र धूमि में जिस काव्य-कीर्तन के साथ 'दूरजहाँ के सिककों' ने उसका सिकका कमनाया है, उसके अंतर्गत उसके व्यक्तित्व एवम् मनोभावों की जो ध्वजना हुई है, वह अद्विष्ट है। भार्ता के बात-प्रतिबातों के अंतर्गत दूरजहाँ के व्यक्तित्व के सबसे एवम् बुलबल पक्ष बसनिध की तरह स्पष्ट हो जाते हैं। माया की धम्यात्मकता एवम् मुहावरों के सफल प्रयोग में कहीं-कहीं मनोभावों को छतना सजीव कर दिया है कि उनकी बचार्पता एवम् प्रभावोत्पादकता में कोई शंका ही उपस्थित नहीं होती। वस्तुतः 'दूरजहाँ' में दूरजहाँ का इतिहास-उपेक्षित नारी-हृदय अपनी सौरभ-भाषा के साथ प्रतिक्रिा है।

**सिद्धार्य की पड़ोसदा—**यज्ञोपरा 'सिद्धार्य' की प्रमुख नायिका है। सिद्धार्य की कथावस्तु में उसका रचान जैसे परम्पारित धारणाओं की पुष्टि तथा कथानक कदियों के निर्वाहबार्थ ही प्रस्तुत किया गया है। एक ओर जहाँ वह सिद्धार्य के सरल भाषण पर

१४४ दूरजहाँ पृ० ४७।

१४५ वही पृ० ६१।

१४६ वही पृ० ४४।

१४७ वही पृ० १४४।

१४८ वही पृ० ४६।

सम्पुष्ट ज्ञान सम मारियों का विषम विधान के लिए,<sup>१२४</sup> सिद्धार्थ की कथा-भूमि में प्रस्तुत की जाती है वहीं दूसरी ओर महाभिनित्यमय के परचाय कथा में उसका स्थान केवल नवि-परिपाटी एवम् कथानक कथियों की वृत्ति ही करता ज्ञान पड़ता है। फिर भी यमोवरा सिद्धार्थ की कथावस्तु में आधिकारिक स्थान रखती है और यदा स्थान उसने महाकाव्य की कथावस्तु को प्रतिमान् एवम् सरस बनाया है।

यमोवरा भी अन्य प्रधान नायिकाओं की तरह बलीकृष्ट सुन्दरी है। उसके ज्ञान की अति बलीकृष्ट सुन्दरताययी प्रभा को देखकर माधव कुमार का उल्लस मानस भी पर्यमित हो उठता है।<sup>१२५</sup> यमोवरा को हार के पुरस्कार के साथ ही राजकुमार के हृदय पाने का सौभाग्य भी प्राप्त होता है और सती-अधि-सारदा-सिन्धुजा समा<sup>१२६</sup> यमोवरा को प्राप्त करने के लिए, कुमार को भी जीवन-वतिपोषिता में माय जाने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यद्यपि यमोवरा को इस बात का श्रेष्ठ है कि उसके कारण प्रभु को 'असि-परा-हम' ज्ञानन माधि का स्नेह उठाना पड़ा परन्तु साथ ही उसे इसका सुख भी है कि वह इस महा महिमायय ज्ञान का कारण हुई।<sup>१२७</sup> इस बात की समा प्राबन्ता के समय उसका विनयी एवम् परबल मारि-सुख एक साथ परिमिश्रित हो उठता है। यमोवरा का साम्प्रत्य जीवन कैलि-कीड़ा के मध्य भी मूक-सा ही हृदयोवरा होता है। वह सङ्घटी कम सेवा बाधी विनम्र पत्नी अधिक ज्ञान पड़ती है। कहीं तो वह प्रिय के विचार को देखकर अपनी वृत्ति के लिए क्षमा-याचना करती है<sup>१२८</sup> और कहीं शोक-ग्रस्तता हो कुमार के निकट जाकर दया की याचना करती सीखती है।<sup>१२९</sup> वह सिद्धार्थ के लिए जपत में सबसे सब भाँति अधिक प्रिय होकर भी<sup>१३०</sup> प्रेम-वर्जिता नहीं विनीता ही दिखाई पड़ती है।

प्रति-प्रमाण के परचाय यमोवरा का विनयी स्वकथ संयोजी स्वकथ की अपेक्षा उसके व्यक्तित्व को कहीं अधिक व्यक्त करता है। यदि के इस प्रकार छोटी अवस्था में स्थाप जाने के परचाय उसे अपना ही कोई शेष मगर आता है,<sup>१३१</sup> उसे मृगया से अर्धवि हो जाती है और यमोवरा सर-आतन-तापित केतकी-सी चिन्म हो उठती है।<sup>१३२</sup> वह शरीर-जली अमर तथा रोहिणी नदी के समझ अपने विच्छेद-मार्गों को व्यक्त करने लगती है। उसके विनयी जीवन से मारि की साचाटी और हृदय का हाहा

१२४ सिद्धार्थ पृ० ६७।

१२५ वही पृ० ७२।

१२६ वही पृ० ८३।

१२७ वही पृ० ८३।

१२८ वही पृ० ८३।

१२९ वही पृ० ८३।

१२८ वही पृ० १७५।

१२९ वही पृ० १७५।

१३० वही पृ० १८६।

१३१ वही पृ० २४३।

१३२ वही पृ० २४३।



कार ही प्रकट होता है। चाकेस के साथ व्यक्त किए क्षण उधर-उधर कर साधने मयते हैं। इस को संवेष्ट प्रदान करते समय वह उसे अपनी प्रेयसी का परिचय न करने की सलाह इसलिए देती है कि उसका जोड़ा निरक्षर कर सिद्धार्थ को उसका ध्यान आ जावे<sup>१६३</sup> यशोधरा के वियोगजन्य उद्वेगों में प्रिय-मिलन की लालसा का प्राधान्य एवम् विरह-जन्य कष्टना की छाया है।

प्रिय-वर्धन के लिए व्याकुल रहनेवासी यशोधरा को जब प्रिय-वर्धन की प्राप्ति होती है तो वह 'पति आर्य' पुकारती हुई प्रभ के पदों में सिसकती हुई गिर पड़ती है।<sup>१६४</sup> सिद्धार्थ की दृष्टि विमोक्त कर ही यशोधरा के हृदय दिव्य क्योति से बिखल होकर अयु-विहीन हो जाते हैं।<sup>१६५</sup>

सिद्धार्थ की चरित्र भूमि में यशोधरा का व्यक्तित्व उभरने नहीं पाया है। सौन्दर्य एवम् विषाद के सहारे रंगों के अतिरिक्त उसकी जीवन-रेखाएँ अत्यन्त धूमिल हैं। सिद्धार्थ में यशोधरा के नारी-हृदय की सहज अभिव्यक्ति का अभाव है। महाकाव्य की चरित्र भूमि में उसका व्यक्तित्व एवम् मर्यादाओं के अन्तर्गत उसका स्वरूप जो-सा गया है। महाकाव्यकार ने उसे धर्म-पाल की एक मूक गठरी मान बना कर छोड़ दिया है। वस्तुतः न तो सिद्धार्थ ही और न सिद्धार्थकार ही उसके प्रति न्याय कर पाए हैं। महाकाव्य की चरित्र भूमि में प्रविष्ट होते समय विपुल विघ्नमयुक्त लड़ी हुई<sup>१६६</sup> यह नारी जीवन और विघ्न दोनों ही क्षेत्रों में विपुल विघ्नमयुक्त बनकर लड़ी की लड़ी रह गई है।

साकेत सम्रत की माँझवी—माँझवी 'साकेत संत' की प्रमाण नायिका है। यद्यपि साकेत संत की कथावस्तु प्रधानतः मरुत की महानता एवम् उदात्त गुणों से ही अनुप्राणित है किन्तु माँझवी का भी उसमें आधिक्य है। बिद्युत् त्याग-वृत्ति ने मरुत को साकेत का संत बनाया है उस त्याग-वृत्ति में माँझवी का भी पूरा सहयोग है। और इस प्रकार साकेत-संत की सच्ची सहचरिणी के अनुकूल ही कथा में उसकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई है।

माँझवी का व्यक्तित्व अपनी गरिमा के अनुकूल है। वह जपवती है। उसके हों की ओर में बनबोर रस-वर्षण की और उसके अधरों की मुस्कान में हित-भाषण को पिघलाने की क्षति है।<sup>१६७</sup> उसका मधुरासाप कोकिलाओं को भी कपानेवाला उसका गति-विनास लहरियों के लास्य सस्नास को भी भुसानेवाला है।<sup>१६८</sup> वह उपा

१६३ सिद्धार्थ पृ० ५६५।

१६४ वही पृ० ५८२।

१६५ वही पृ० २८५।

१६६ वही पृ० ७१।

१६७ साकेत-संत १। ३५।

१६८ वही पृ० १। ३४।

है तारक पीत है मयल बन की पुनीत सुरभि है । १०० उसका साम्प्रत्य जीवन उसकी हास-परिहासमयता का स्रोतक है । कुसचक्र की भीमा में रूढ़े हुए उसे अपना स्वजन समाज ही प्रिय है । १०१ वह पति के आशोष-प्रयोध में ही हाथ बटानेवासी नहीं कुछ के समय भी स्वयं जाकर अपने योग्य कार्य की याचना करनेवासी है । १०२ पति द्वारा उसे उमिता को सम्हालने का काम मिलता है । इसी पुर-मार को वह पूर्ण निष्ठा के साथ करती है और कम की बख् आज माता-सौ बनकर अपने कार्य से दिव्य देवियों को भी पराजित कर देती है । १०३

माँझी का योगीय एवम् उसका कर्नरत स्वस्व ही उनके व्यक्तित्व का महत्तर 'य' है । एकपक्ष चाणक्य की आधी दुसारी बेह होकर, एक होकर भी चौदह बपों तक य किसी मानना को न निहारने हुए अविचार-रग का पालन करना १०४ निश्चिदेह के चरित्र की महामुद्रा है । उनके लिए बाहों का भरता भी पश्चिततर ना । वह पट्टर भी दूर की । १०५ बल्लुग वह भरत जैसे उपस्थी की सखी उपस्थिती मार्गी की ।

'साकेत सन' की चरित्र भूमि में यद्यपि माँझी का चरित्र-चित्रण नाम मात्र को हुआ है और योनोमार्गों के अन्तर्गत भी उसके गारी-हृष्य की सुकोमल भावनाओं की अनिश्चित होने का अवसर प्राप्त न हो सका है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि अपने स्वजन-समाज को ही प्रिय माननेवासी यह कुसचक्र अपनी ऐशानुहित में ही अपने आप में पूर्ण है । उसका तापसीवन् जीवन ही उसके व्यक्तित्व का उसके गारीत्व का वह परिणाम स्वस्व है जिसे जबकि के उपरान्त प्राप्त कर भरत को हिमात्म-दर्शन की इच्छा नहीं रह जाती है । एक तपी की पत्नी के अनुस्व उसका आचरण ही उनके गारी जीवन का सबलतम स्वरूप है और वही उसके गारीत्व को विविष्टता प्रदान करता है । अपने इसी तापसी वेग के कारण हिन्दी-महाकाव्यों के गारी-मार्गों के मध्य उसे अत्यन्त से ही जोड़ा जा सकता है ।

कुम्भायन की राधा—'कुम्भायन' की प्रमुख नायिका राधा ही है । यद्यपि कुम्भायन की कथाबन्धु में उसका सम्प्रेष आधुनिक-सा ही जान पड़ता है परन्तु अपनी सीमितता में भी वह चीन नहीं होत पाया है । कुम्भायन में प्रथम बार कृष्ण की संपूर्ण जीवन-कथा को संक्रमित काव्य का स्वरूप प्रदान करने के कारण भी कथा में राधा की स्थिति परम्परागत आस्था के अनुस्व विकसित नहीं हो पाई है । इसके अतिरिक्त

११६. साकेत संत १ । ४२ ।

१००. वही १ । २२ ।

१०१. वही ४ । २२ ।

१०२. वही ४० । ११६ ।

१०३. वही ४० । ११० ।

१०४. वही ४० । ११२ ।

इस महाकाव्य में प्रेम के सपूर्ण स्वरूपों की व्यञ्जना भी भुगल मूर्ति का बाजार लेकर व्यक्त नहीं की गई है। अतः राधा का चरित्र-चित्रण और कथा में उसका स्थान सीमित होना स्वाभाविक है। फिर भी 'एकहि में अर राधिका इँछ-भाग मय भानि' के अनुसार कथा में राधा का स्थान गीत नहीं होने पाया है। उसके महत्त्व की पूर्ण रूपेण रक्षा की गई है।

कृष्णायन के अंतर्गत राधा के व्यक्तित्व के प्रमाणित तीन स्वरूप दृष्टि-भोर होते हैं—बाल-सखि का स्वरूप प्रेमिका का स्वरूप एवम् प्रेम-साधिका का स्वरूप।

अपने बाल-सखि-स्वरूप में राधिका मुखरा चंचल एवम् भोभी बालिका-सी दृष्टिपोचर होती है। प्रथम भेंट के समय जहाँ वह अपना नाम धाम और पिता का परिचय देने में देर नहीं करती वही वह कृष्ण को 'भोर' कहने से भी नहीं झुकती।<sup>१०६</sup> कृष्ण द्वारा यह पूछने पर कि हमने तुम्हारा क्या पुराया है उसका इन बचनों को न समझते हुए, अभिनेय ठाकते रह जाना उसके भोले भाँसे स्वभाव का चोटक है।<sup>१०७</sup> नन्द द्वारा कृष्ण के खींचे जाने पर राधा का गलबाही देकर यह कहना कि नन्द है तुम्हें मुझे सीपा है,<sup>१०८</sup> जहाँ उसकी विनाश-वृत्ति का परिचायक है वही वह उसके बाल-सुखम स्वभाव का भी चोटक है। हरि के साथ उसका बसना बीसना यही भयते हुए हरि को देखकर उसका बुझिटा हो जाना यत्नोदा के उखाड़ना देने पर उसका खींच कर रिसा जाना मयामी फेंक कर हरि के निकट जा बड़े होना बसोबा के मारने दीड़ने पर भय बलति हुए भाग बड़े होना और जरिक में बाँकर कृष्ण के साथ गी-बोझ बाँध करना<sup>१०९</sup> वास्तव में राधा के बाल-स्वभाव के ही चोटक हैं। उसका यह बाल-सखि स्वरूप अपने आप में रसमय एवम् अनुपम है।

प्रेमिका के रूप में राधा साधन की अनन्य उपासिका है। अपने इसी प्रेममय स्वरूप के कारण उसमें और श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है। उसे असब कर श्रीकृष्ण की कोई पति नहीं है। यदि वे सूझा हैं तो वह फिर नव सुष्टि है।<sup>११०</sup> वह भक्ति का रूप धारण कर सब में आई है। श्रीकृष्ण ने यत्नपूर्वक जिस प्रेम-विटप को सबाया है राधा को उसी प्रेम-विटप को अपनी हथबारी से सींचने का शुभ भार बहुत करना पड़ता है।<sup>१११</sup> प्रिय द्वारा खींचे गए इस कुस्तर भार एवम् प्रिय-विमोग की बाँध चुन कर राधा बिलख उठती है। हरि के समझाने पर भी उसका हृदयानेन एक बार पुनः उसे बिदा होते श्रीकृष्ण के रज के सामने जा पटकता है हरि रज रयाग कर उसे हूक

१०६ कृष्णायन पृ० ३४।

१०७ वही पृ० ३६।

१०८ वही पृ० ४५।

१०९ वही पृ० ७१ ७२।

११० वही पृ० ३६।

१११ वही पृ० १००।

से सभा संग हैं और उगी अन्न से राधा ठीक बीसे ही प्राकृत नापी नहीं होती बीसे सीप में फिरने के बजाए स्वाति चलकन नहीं रह जाती है।<sup>१८१</sup> इस प्रकार की बर्णना-किन्ना राधा को रचित कर देती है।

प्रेम-साधिका के रूप में राधा अपने आप में पूर्ण उपस्थिती है। कृष्ण से दूर होकर भी वह कृष्ण से दूर नहीं रहती। उद्यम को बल-शक्त के समथ बंजीबादक हरि के चरणों में प्रणाम कर सुमनामनि बहाते<sup>१८२</sup> हुए उसका देखना और वंशीवत प्रसंग के निराकरण के हेतु हरि को अपने एवम् राधिका के अर्द्ध भाव का संकेत करना<sup>१८३</sup> वास्तव में राधा के प्रेम-साधिका स्वरूप का ही संकेत है। कुरक्षेत्र के घेने में भी राधा देहवारी शक्ति की तरह ही दृष्टिोपर होती है।<sup>१८४</sup> प्रेम-साधिका के बल पर ही हरि राधा को अपरिचिती मानते हैं। उसने बालमुकुन्द के रह की प्राप्ति कर पुरुषापी को अपने बसीभूत किया है और वह बहू भी चाहती है उन्हें मुसा सेती है।<sup>१८५</sup> आजीवन मनसा बाधा और कर्मणा से हरि की सच्ची आराधना करने एवम् हरिमम प्राण रहने के कारण ही वह एकविध नमुशाय के समग्र भीकृष्ण की बाल-सीता को प्रवर्धित कर पाती है।<sup>१८६</sup> इस प्रकार राधा की प्रेम-साधना अपने आप में अनन्य है।

कृष्णायन की चरित्र भूमि में राधा के चरित्र का विचार और मनोभावों के अंतर्गत उसका स्वरूप पूर्णरूपेण प्रकट नहीं होने पाया है। कृष्णायनकार हाथ राधा कृष्ण के प्रेम-वर्तनों को न तो विस्तार ही बिना गया है और न उनकी व्यापक व्यंजना ही की गई है। भीकृष्ण की बाल-सखी के रूप में राधा का जो भी स्वरूप दृष्टिोपर होता है, वह मूर्त्तायन की राधा से ही अनुप्राणित है। कृष्णायनकार हाथ हरि की अनन्य शक्ति के रूप में ही उसका उल्लेख हुआ है और और सामर मुपि के विषय राधा और कृष्ण के इस अर्द्ध एवम् पुरातन सम्बन्ध का निर्द्वेष भी कर दिया गया है। चकिमती मुपत्रा भावि भी तरह भीकृष्ण की विवाहिला पत्नी न होने पर भी 'रसाम सती राधा' कृष्णायन की प्रमाण नायिका ही साधित होती है। दोपटी के भावों में 'अमोक्ष मुन्दरी राधा का चरित्र अधिस्त एवम् स्वभाव अथाव है।<sup>१८७</sup> सब पूछा जावे तो रसाम की यह चिर प्रेम-साधिका अपने आप में ही महिमावान् है। अतः कृष्णायन की सीमित सीमा में भी उसका व्यक्तित्व सीमाहीन एवम् अनन्य है।

१८१ कृष्णायन पृ० ११७।

१८२ वही पृ० १२३।

१८२ वही पृ० १२३।

१८३ वही पृ० १२६।

१८३ वही पृ० १२७।

१८७ वही पृ० १२३।

१८४ वही पृ० १२०।

रावण की मंढोदरी—मंढोदरी 'रावण' की प्रधान नायिका है। कथा में उसका स्थान गीण-सा है। नामक की पत्नी होने के नाते और रावण के बल की वृद्धि करनेवासी के रूप में ही कथा में उसका उल्लेख हुआ है। विभीषण द्वारा उसे अपनी पत्नी बनाने का प्रयत्न भी कथा का एक भाग बनकर मंढोदरी के साथ जुड़ा हुआ है। परन्तु फिर भी कथा में उसकी स्थिति नेपथ्य-बाजी से अधिक गहरी जान पड़ती।

मंढोदरी रावण की पटरानी के रूप में चित्रित हुई है। उसके जीवन-वृत्त के अनुसार वह मय वानव की पुत्री एवम् हेमा नामक अप्सरा की दोह से उत्पन्न समुपम सुन्दरी है। जिस दिन से यह मय वानव-नन्दनी सनापुत्री में व्याहृ कर जाती है ऐसा प्रतीत होता है मार्गो मानसरोवर में हेम सरोज अपनी सुपमा बिखेर कर खिल रहा हो। उसकी मंढ हंसी की छटा वसुधा पर सुधा-बार बहाती है।<sup>१८५</sup> पार्वती की बन्वना कर वह मिथु को गोप सिमाने की याचना करती है<sup>१८६</sup> और पार्वती से मनोवांछित वर प्राप्त कर वह राक्षस-वध की विभूति को बढ़ानेवाले पुत्र को पर्य में वारण करती है।<sup>१८७</sup>

मेघनाद सहज ऐजस्वी पुत्र की माता एवम् रावण सहस्र नीति-निपुण वीर की पत्नी होकर भी मंढोदरी के व्यक्तित्व की ध्वंजना कभी भी उसके इस महिमसी स्वस्व को व्यक्त नहीं करती। पुत्र और पति की मृत्यु पर वह वय पात करती हुई हडिनीचर होती है किन्तु यह मनोमान-सून्य मुक्त स्वन भी उसकी कथना की अमिथ्यंजना करने में असमर्थ ही सिद्ध हुआ है। विभीषण के राक्षसामिषेक के उत्सव के समय मंढोदरी के हृदय में विचारों की बाढ़ उमड़ने लगती है और वह विचार में पड़ जाती है कि वह उस हाव को कैसे जान सकती है जिसने छत्रु को उसके परिचाय का उपाय बताया हो घननाभ जैसे सूर सपुत्र का लड़े-लड़े पीस कटबाया हो रेष राष्ट्र तथा धाति का गौरव अपने स्वार्थ-साधन के हेतु नष्ट किया हो।<sup>१८८</sup> किन्तु मंढोदरी की इस दृष्टा में भी लड़खड़ाहट या लड़ी होती है।

मंढोदरी अपने विगत सुखद दिनों का स्मरण करती हुई सोचती है कि संसार का ऐसा कौन-सा बीमब योग रहा जिसके युक्त का अनुभव उसने न किया हो और जब तक जीवननाश रहे तब तक कुछ उसकी परछाई को भी छू नहीं पाया। अपनी उन पर ऐसी कोई स्त्री नहीं थी जो उसके समान बहुयाजिन हो।<sup>१८९</sup> किन्तु उसे अपनी दमनीयता पर श्रेय होता है। रावण जैसे वीर की पत्नी को हथियाने का प्रयत्न उसे

१८५ रावण महाकाव्य पृ० २० ।

१८६ वही पृ० २१ ।

१८७ वही पृ० २२ ।

१८१ वही पृ० १८२ ।

१८२ वही पृ० १८३ ।

ऐसा मय्या है जैसे पुरोडास रामच जाना चाहता हो ।<sup>१६१</sup> उसकी मारी मृतम दुर्बलता उसे यह स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है कि जपिमा म्लेच्छ के पाले पड़ गई है, उसकी लज्जा लुटने का रही है परन्तु युद्ध पर लाला पड़ने के कारण वह बोध भी नहीं धरती क्योंकि उसकी रक्षा करनेवाला कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होता । रोने रोने उसका घटित भी इतना दीप्त हो गया है कि वह हाव में गरासन ग्रहण नहीं कर सकती ।<sup>१६२</sup> अतः परिस्थितियों एवम् विधाता को बाध ज्ञानकर मंदोदरी छोट-उड़ित होकर ऐसी बन जाती है कि दूतियों की निमज्जतापूष बातों पर भी रोक नहीं मगाती । नायिनियाँ आकर उसका शृङ्गार करती हैं यासनियाँ आकर उसे कुर्शों से सजाती हैं और कुरि हारिणें आकर उसे चूड़ियाँ पहिनाती हैं ।<sup>१६३</sup> इन बातों से मंदोदरी की दुर्बलता पर ही प्रकाश पड़ता है और उसका पातिव्रत्य परिस्थितियों के मध्य लड़खड़ा जाता है । प्राणों पर खेल कर अपने वैभव-श्रेष्ठ पर जरा भी आँख न माले देनेवाली मारी की हड़ता के वर्णन उसके स्वल्प में दृष्टिगोचर नहीं होते ।

ऐसी सङ्कटावस्था के मध्य बाध्य नायिनी ही उसे सुपथ की राह बता कर उबार लेती है । साथ ही अवलामों की रणक तीबी कटार मंदोदरी को मौनते हुए उसे सुखमर पाकर उत कटार द्वारा मद्यम का हृदय विदीर्ण करने की सलाह के साथ साथ वह मंदोदरी को अन्न वसन और काया में अपनी मर्यादा रक्षा का उपदेश भी देती है ।<sup>१६४</sup> चान नायिनी की ये बातें भी मंदोदरी के व्यक्तित्व को छोटा ही साबित करती हैं । ऐसा प्रतीत होता है जैसे मरु के समर की कत व्य-बुद्धि का भी मंदोदरी में समाव है और उसे ये बातें किसी अन्न द्वारा पीबने की आशयनकता है ।

‘रावन’ महाकाव्य की चरित्र-भूमि में मंदोदरी का व्यक्तित्व प्रधान नायिका के अनुरूप उभर नहीं पाया है । रावन की मृत्यु के उपरान्त विभीषण द्वारा प्रल किए जाने पर प्रकट होने वाले उनके मनोद्वारों से भी उमर्त दुर्बलता ही साजती है । एक जलोहनमयी मोड़ा की पटरानी इतनी अधिक दुर्बल दृष्टया हो सकती है यह कुछ अस्वाभाविक-नी बात लगती है । रावणार द्वारा विभिन्न मंदोदरी यदि पूर्व परम्परा से ही अनुमानित होती तो भी संभवतः रावन महाकाव्य की मंदोदरी का ऐसा दुर्बल स्वरूप हमारे सामने उपस्थित नहीं होना पाता । रावणार द्वारा विचार-व्यवस्था के नाम पर जिस विमोह की भुम'<sup>१६५</sup> की दुर्गई की गई है उसी विमोह की भुम में

१६१. रावण महाकाव्य पृ० १५४ । १६६. वही पृ० १६२ ।

१६४. वही पृ० १८४ पृ० १८७. वही पृ० २ ।

१६५. वही पृ० १५३ से १८७ ।

संभवतः किसी भी नारी-गात्र की संशोभरी से बढ़कर हस्या' नहीं हुई है और सब पूछा जाये तो हिन्दी-महाकाव्यों की चरित्र-भूमि में यशोवती से दुर्बलतर अन्य कोई नारी-गात्र प्रधान नायिका के रूप में चित्रित ही नहीं हुआ है।

### उप-नायिकाओं का व्यक्तित्व-विवेचन

#### रासी की उप-नायिकाएँ

चित्ररेखा—रासी की चरित्र-भूमि में, उप-नायिका के चित्रण की दृष्टि से चित्र रेखा का महत्वपूर्ण स्थान है। चित्ररेखा का चित्रण प्रासंगिक कथावस्तु के अंतर्गत हुआ है। पृष्ठीराज की शरणागत-वत्सलता को प्रबलित करने के लिए ही चित्ररेखा की सृष्टि हुई है क्योंकि शाहजुहीन के पास हूर जैसी जो पातुर थी, रासी को लेकर हुरीन भीष्म की शरण में आया था।<sup>१</sup> चित्ररेखा पातुरी थी। वह पन्द्रह वर्षीया सुवाचावाली रूप रंग-संपन्न रति के समान अववाली और गान तथा भीन-बादन में निपुण थी। उसमें अन्य बत्तीसों पुत्र थे और वह यजनी के माह को अत्यन्त प्रिय थी।<sup>२</sup> माह ने चित्ररेखा को अरब खाँ के पास से प्राप्त किया था।<sup>३</sup> अरब खाँ के यहाँ से चलते समय ही शाह का मन चित्ररेखा की ओर भ्रम यम्य की भाँति आकर्षित हो गया था।<sup>४</sup> रेखा के रूप में चित्ररेखा सुप-रूप-मनसा मृन्मूक हारावली सुरति नखला अच्छे गुर्जोवाली और काम-वैलि थी। उसका रूप नबी के समान कट्याह कुल-ठटों की तरह और माह कोष्ठ तरंगों की तरह थे। यह मिलोक पुर्नय मुखरी जग-कीड़ा-रसयुक्त थी।<sup>५</sup>

माह का बाहर पाकर चित्ररेखा का प्रेम बढ़ता जाता था और चित्ररेखा ने भी सुस्तान को ओर से वैंबी पतक की तरह जबना गान-मोहित कुरंग के समान जबना संभवसीमूत मधुकर की तरह अपने बह में कर रखा था।<sup>६</sup> किन्तु बाद में चित्ररेखा माह के माई मीरजुहीन की दृष्टि में बढ़ गई और दोनों ही परस्पर प्रेम में बँध गए।<sup>७</sup> यह समाचार सुनकर सुस्तान क्रोधित हुआ और उसने मीरजुहीन को बेठा बनी थी किन्तु मीरजुहीन ने चित्ररेखा के प्रेम का परिष्ठाग न किया। परिणामस्वरूप चित्ररेखा सहित मीर ने पृष्ठीराज की शरण ली। शाह ने जद्दाई की। पृष्ठीराज ने

- |                              |                   |
|------------------------------|-------------------|
| १ पृष्ठीराज रासी, समय ६। १६। | २ वही १२। २६।     |
| ३ वही ५० ६। ३।               | ४ वही १२। ३१, ३२। |
| ५ वही १२। २८।                | ६ वही समय ६। ३।   |
| ७ वही १२। १७।                |                   |

मीर की सहायता की किन्तु मीर मुख-भूमि में काम आया और बिजयेपा ने अपने प्रेमी की साथ क साथ बीठे की ही कब में मड़ कर अपने प्रेम का परिचय दिया।<sup>८</sup>

रासोकार द्वारा वर्णित इस कथा के अंतर्गत यद्यपि पातुरी बिजयेपा का चरित्र स्पष्ट उभरने नहीं पाया है परन्तु हम उसके व्यक्तित्व को प्रभावित दो कर्तों में देख सकते हैं—पातुरी के रूप में और प्रेमिका के रूप में। पातुरी-जीवन उसकी साक्षात् है और साह के साथ उसका प्रेम-व्यापार इसी पातुरी-वृत्ति का उदाहरण है। मीर की प्रेमिका के रूप में वह उत्तमवर्गीय गायी है। बनने प्रेमी के साथ उसने केवल साही सुखों और सम्मान का ही परिचय नहीं किया बल्कि प्रेमी की मृत्यु के उपरान्त उसी की कब में उसी के साथ मड़ जाना पसन्द किया। उसके जीवन का आरम्भ 'मामान्या के रूप में हुआ है परन्तु उसका अन्त सर्व सामान्या-मुत्तम नहीं है। रासोकार की कथात्मक शैली के कारण स्वभाव एवम् मनोभावों की दृष्टि में बिजयेपा व्यक्तित्व-भूय है। उसके चरित्र-चित्रण में वर्णनात्मकता का प्राबल्य है। बिजयेपा का पातुरी जीवन उसके चरित्र की दुर्बलता और उसका उत्कर्ष उसकी आर्थिक विपत्तता है।

इच्छिनी—रासोकार द्वारा इच्छिनी का चित्रण भी प्रासंगिक कथा के रूप में ही हुआ है। वह चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इच्छिनी का स्थान भी उपनायिका के अंतर्गत ही आता है। इच्छिनी की चरित्र-मूर्ति पृथ्वीराज क चौरे-अर्यन्तर्ग ही की गई है। वह बाबू के राजा समय पंचार की कनिष्ठा बन्धा थी। समय की बड़ी सङ्गी मंथोदरी का विवाह भीमदेव के साथ होता निरिचत हुआ था किन्तु इच्छिनी के रूप की प्रशंसा सुनकर भीमदेव उस पर आसक्त हो पा। इच्छिनी पृथ्वीराज की बाग्यान्ता थी। भीमदेव ने इच्छिनी क रूप पर मोहित होकर अपने प्रधान को समय क पास भेजा। समय ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया और इच्छिनी के विवाह का प्रदेय पृथ्वीराज के पास भेज दिया। इधर भीमदेव न बड़ाई की रीयायी की। चाहबुरीन से भी सहायता मांगी। मुख हुआ और अंत में पृथ्वीराज के साथ इच्छिनी का विवाह, भीमदेव तथा चाहबुरीन की पराजय के परभाव सम्पन्न हो गया। अतः यह स्पष्ट है कि 'इच्छिनी व्याह-कथा' और उसके अंतर्गत इच्छिनी का चित्रण भी पृथ्वीराज क चौरे-अर्यन्तर्ग के हेतु किया गया है।

कथात्मक एवम् वर्णनात्मक शैली के कारण चरित्र-चित्रण के अंतर्गत केवल इच्छिनी का ही एवम् मध्य-जिह्वा-वचन ही हमारे सामने आता है। वह वय भूमि में है एवम् उसका रंग अति सुरंग है।<sup>९</sup> वह मानों इक्षुय भूमि के समान है।<sup>१०</sup> वह

८ पृथ्वीराज रासो, समय १४।६। १० वही १४।११।

९ वही समय १।३.६।



रासोकार ने पद्मावती के चरित्र-चित्रण में भी अपनी उसी प्रासंगिक कथात्मक एवं वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग किया है। कथानक चक्रियों के आधार पर कवि पद्मावती के मन में रूप-गुण अवलम्बन आकर्षण उत्पन्न कर पूर्वागुण्य जाणूत करता है। शुक द्वारा सम्बोध भिन्नता कर प्रिय प्राप्ति का आशय कर, पद्मावती के प्रेममय स्वरूप की भी जाँची प्रस्तुत करता है। कथा में पद्मावती के मनोभावों के अन्तर्गत उसका स्नेही सजानु स्वरूप ही व्यक्त हो पाया है और किञ्चित् व्याकुलता का आभास भी मिलता है। रासो की चरित्र-भूमि में भाषिका के समस्त रूप-गुण रखते हुए भी पद्मावती का व्यक्तित्व प्रासंगिक सब-विषय से अधिक नहीं उभर पाया है और रासो की विकासकामता के ढोड़ में उसका चरित्र भी समा गया है।

शशिप्रता—रासो की उपनायिकाओं में मानराय पादव की पुत्री शशिप्रता का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। कथा में प्रासंगिकता के अन्तर्गत ही वह अन्य उपनायिकाओं से कुछ भिन्न स्थिति रखती है। पृथ्वीराज के शीर्ष प्रदर्शन एवं मान-सम्मान की कसौटी के रूप में तो उसका चित्रण हुआ ही है परन्तु इसी विधान की पूर्ति और पृथ्वीराज को मृत्युलोक में देवता के समान बनवाने और प्रतापी पति सिद्ध करने के लिए ही शिव के माप एवं बरबाद की सखि शशिप्रता का चित्रण रासोकार ने प्रस्तुत किया है।

शशिप्रता साधु भद्र वपराय की। उसके पूर्वजन्म का नाम पिचरेखा था। अपने रूप-गान-गर्भ में हृदय से बड़ जाने के कारण उसे दक्षिण-नरेश की बेटी मना पड़ा।<sup>२१</sup> साधु ही वह शिव आप्त भी थी क्योंकि स्वर्ग में हृदय का आतिथ्य स्वीकार किए हुए महादेव का अपने स्वरूप से अन्न मात्र के लिए कामचलीमूत कर, वह उनके काम का भाजन बनी भी और इस प्रकार स्वर्ग से पतित होकर उसे मृत्युलोक में मानवी गरीब धारण करना पड़ा था।<sup>२२</sup> शशिप्रता चन्द्रमुखी मृगलोचनी कमकंठी मुक्त नासा गङ्गागामिनी एक सर्वांग सुन्दरी का ऐसा स्वरूप लेकर अवतरित हुई थी भालो ब्रह्मा ने भूमि पर दूसरी मैनका का निर्माण किया हो।<sup>२३</sup>

नट द्वारा वर्णित शशिप्रता के रूप ने पृथ्वीराज के मन में उसका प्रति अनुधा जाणूत किया और हंस के रूप में अवतरित अम्बर ने शशिप्रता तथा पृथ्वीराज की एक-दूसरे के प्रति आकर्षित किया। इसी आकर्षण ने शशिप्रता को हड़ता प्रवाण की और काम्यबुद्ध नरेश के भतीजे वीरचन्द्र जैसे बर स विवाह करने की अपेक्षा उसने वारम्बर हृदय को अधिक उचित समझा। रास-विश शिव की पूजा करता।<sup>२४</sup> सबियों

२१ पृथ्वीराज रासो, समय २३। ७२। २३ वही २३। २६। २७।

२२ वही २४। १४६।

२४ वही २३। १८०।

की सीखकी अभ्युत्थान करना<sup>२४</sup> जाति उसके हृदय प्रेम के प्रतीक हैं और उसकी यही प्रेम हृदय उसके पिता माता को भुज्जय पृथ्वीराज के पास शिवालय में शशिप्रता प्राप्ति का सन्देश भेजने को साधार करती है।<sup>२५</sup>

शशिप्रता की मनोकामना अन्त में पूर्ण होती है। माता पिता की आज्ञा लेकर वह शिवालय में जाती है<sup>२६</sup> पृथ्वीराज भी अपने योद्धाओं सहित वहीं जा पहुँचता है और पृथ्वीराज तथा शशिप्रता की जाति पार होते ही शशिप्रता की हृदि लज्जा से मुक्त जाती है। एवं पृथ्वीराज उसका हाथ पकड़ लेता है।<sup>२७</sup> जनबोर युद्ध के पश्चात् विजय पृथ्वीराज को मिलती है। पृथ्वीराज शशिप्रता सहित दिल्ली पहुँचता है और सुन्दरी लक्ष्मि-प्रता के साथ विहार करत हुए इन्द्र की भाँति स्वच्छन्दता-स्वतन्त्रता से राज्य करता है।

राजोकार की कर्मात्मक तथा कर्मनात्मक रीति के कारण शशिप्रता का चरित्र विनय भी वृत्तात् मान है। मनोभावों के अन्तर्गत उसका स्वरूप कुछ स्वभाव पर अवश्य प्रकट होता है। उसके लज्जा मिश्रित प्रेममय स्वरूप की छाँकी उस समय उपस्थित होती है जब अवश्य पर्यन्त जानेवाले उसके कटाक्ष जानों से कुछ पूछना चाहते हैं किन्तु लज्जावश कुछ पूछ नहीं पाते और नैन-सैन से ही सब बातें अवशों से कह देते हैं।<sup>२८</sup> उसके कर्मात्मक मिश्रित स्नेहमय संयम का स्वरूप उस समय देखा जा सकता है जब प्रियतम द्वारा हाथ पकड़ लिए जाने पर मुस्सनों का स्मरण अत्यन्त बन कर बहना चाहता है किन्तु अमयल-सूचक अश्रुओं का वह समयपूर्वक रोक लेती है।<sup>२९</sup> युद्ध-काल में पृथ्वीराज के साथ होनेवाला उसका प्रेमाभाषण वहीं उसके समर्पण-भाव को उपस्थित करता है, वहीं राजा द्वारा रायचपूचक यह कहे जाने पर कि वह तीनों अवस्था में उसके साथ वैसी ही प्रीति रखेगा वैसी कुशावस्था में है, शशिप्रता का पृथ्वीराज के चरणों में लिपट जाना उसकी गीरी मुलम सरलता एवम् अज्ञा का प्रतीक है।

शशिप्रता के चरित्र-विनय में भी राजोकार ने कर्मात्मक कर्तव्यों का आशय लिना है। इन कर्तव्यों में वहीं शशिप्रता के चरित्र को कुछ विधायताएँ प्रदान की हैं, वहीं कुछ मनोवैज्ञानिक कमजोरियाँ या दुबलताएँ भी उत्पन्न कर दी हैं। अवश्यमय अनुराग ने जहाँ उसके प्रेम की हृदय प्रदान की है वहीं प्रिय-दत्तन या मित्र के पूर्व ही शशिप्रता की विरह-कल्पना उसकी दुर्बलता एवम् आधिपिक अस्वाभाविकता का उदाहरण है। अतः कर्मात्मक कर्तव्यों शशिप्रता के चरित्र-विनय में नहीं-नहीं अस्वाभाविकता बनकर उनकी दुर्बलता को ही प्रदर्शित करती हैं।

२४ पृथ्वीराज राजोत्थान २४। २४६ से २४७। २८ वही २४। २४७।

२५ वही २४। २४६। २९ वही २४। २४०।

२७ वही २४। २४७। ३० वही २४। २४२।

## पद्मावत की उपनायिकाएँ

नागमती — नागमती पद्मावत की रूप-गुणसम्पन्न नायिका है। कथा में उसकी स्थिति पद्मावती के कारण उपनायिका बनी हो गई है। एक पतिपरायणा हिन्दू स्त्री के रूप में कथा में उसके प्रेम की मार्मिक व्यंजना हुई है। वर पद्मावत की कथावस्तु में उसका स्थान गौण नहीं होने पाया है। अपनी सहज स्वाभाविक विशेषताओं एवम् दुर्बलताओं के कारण उसने पद्मावत की कथावस्तु को अनुप्राणित किया है।

नागमती का व्यक्तित्व विविध है। सर्वप्रथम वह रूप-गर्विता के रूप में उपस्थित होती है। 'नागमती-सुखा-सम्बाध खंड' के अंतर्गत उसकी इस रूप-गर्विता वृत्ति के वर्णन होते हैं। इस रूप-गर्विता वृत्ति के अंतर्गत उसके आतिगत सामान्य स्वभाव का ही परिचय मिलता है। एक पति-परायणा पत्नी में प्रेम-वर्ध स्वभाविक होता है। वर प्रेम-गर्विता के रूप में भी उसके सामान्य आतिगत स्वभाव की ही व्यंजना है। अपने इसी प्रेम के कारण पति की हित-कामना की दृष्टि से उसके हृदय में पद्मावती के प्रति ईर्ष्या भावना भी उचित होती है क्योंकि 'ठगिनी परमिनी का नाश होने के कारण ही राजा को पर-हाथ में पड़ना पड़ा'।<sup>११</sup> 'नागमती-सुखावती-विबाध खंड' के अंतर्गत भी नागमती की नारी सुलभ ईर्ष्या-वृत्ति के वर्णन होते हैं। हृदय में विरोध और मुँह पर मीठी बातें करना बातों-बातों में ही अपने रूप का पर्ब प्रदर्शित करते हुए छीठ को नीचा दिखाने के लिये कभी-कटी कहना वास्तव में नागमती के व्यक्तित्व नारी-स्वभाव को ही प्रदर्शित करते हैं।

प्रिय विभोग की वासना तथा प्रिय-विभोग के पश्चात् नागमती के विरहोद्गार उसके पति-परायणा हृदय की मार्मिक अभिव्यंजना प्रस्तुत करते हैं। इन विरहोद्गारों के अंतर्गत उसका गुड़ एवम् पंगीर प्रेम परिलक्षित होता है। उसके बाएँ हाथ रोते रोते फटते हैं। एक-एक बीर निश्वास सहस्रों दुर्कों से पूर्ण रहता है और दिन भर समय भी वर्ष के समान जल पड़ता है।<sup>१२</sup> जिस पंखी के निकट जाकर वह विरह की बात करती है, वही पंखी जल जाता है और कृष्ण पक्षहीन हो जाते हैं।<sup>१३</sup> उसके हाव क्रियरी एवम् गर्व छाँट के समान हो उठती हैं। रोम रोम से ध्वनि सठ्ठी है। वर वह अपनी व्यथा को व्यक्त करने में असमर्थ-सी साबित होती

११ नागमती प्रभावतो पृ २६६।

१२ वही पृ० १२८।

१३ वही पृ० १२७।

है।<sup>३४</sup> काय द्वारा पद्मावती को संवेत भिजवाते समय वह यह भी व्यक्त करती है कि उसे मोग से कोई खरोकार नहीं है। वह पति से एक बार मिलना चाहती है।<sup>३५</sup> इस प्रकार उसके चरित्रों से एक पति-परायणा नारी का हृदय शक्तिता है।

पद्मावत की चरित्र भूमि में नागमती पून-अपेक्ष परती है। उसे अपने प्रेम पर पक्ष है और एक प्रसन्न गृहणी का जीवन व्यतीत कर वह पति के साथ ही छली होकर अपने उत्सर्गमय स्वप्न का भी परिचय देती है। नागमती में स्त्री-सुलभ छल-छिद्रों के भी दर्शन होते हैं। मुझे का बिस्ती के आ जाने का बहाना<sup>३६</sup> राजा के कुपित होने पर सुखा सींगते हुए राजा के मर्म लेने की बात करना<sup>३७</sup> आदि इसके प्रमाण हैं। इसे उसकी नाप सुलभ बुद्धिमान माना जा सकता है। नागमती के बिरहोद्गारों को व्यक्त करते समय विदेशी प्रभाव के कारण जायसी द्वारा नागमती के चरित्र में कतिपय असंगतियाँ भी आ गई हैं। कुल मिलाकर नागमती एक प्रेम परायणा गृहणी ही सिद्ध होती है और उसके बिरहजन्य उद्गार एवम् सफ़ट के क्षण उसके पत्नीत्व को ही प्रदर्शित करते हैं।

बाबल की पत्नी—बाबल की पत्नी की चरित्र-सृष्टि 'पद्मावत' में प्रासंगिक रूप में ही हुई है। जब कथा में उसका स्वामि प्रासंगिक मान है। उसके चरित्र के दो पहलू हमारे सामने उपस्थित होते हैं—नव-वधू के रूप में और लक्ष्मी के रूप में। नववधू के वर-वेष्ट में वह सामान्य नारी की सुकोमल भावनाओं को ही परिलक्षित करती है। उसका घूबट निकाल कर द्वार पर आकर खड़ा होना और पति को अपनी ओर निहारते न देख भी रुका कर मुस्काहना<sup>३८</sup> उसकी नारी सुलभ प्रयत्न-वैधाओं को ही व्यक्त करता है। उसके हृदय में पति को पीठ दिखाते बेवकूफ को सोच-विचार आसूत होता है अथवा वह दुविधा कि यदि लजाती हूँ तो प्रिय बने जावेंगे और यदि स्वयं उन्हें ग्रहण करती हूँ तो मुझे पीठ समझे<sup>३९</sup> वास्तव में नारी के आतिथ्य स्वस्व की ही व्यंजना करत है। अपने प्रथम गृह प्रवेश का हवाला देकर पति को रत्न में जाने से रोक्ना<sup>४०</sup> भी उसकी नारी-सुलभ प्रवृत्ति का ही चोटक है।

अबर-से-अबर के जूझने के मुझने<sup>४१</sup> एवम् अन्य विपत्तियों के पश्चात् भी जब उसकी अम्मी नीली हिय-बोली आछूती ही रही और कंत ने उसे नहीं सोसा काजस से भीगा जोखम भी प्रियतम का रोआं तक न पिबला सका<sup>४२</sup> तब उसका नारी-हृदय,

३४ आसती प्रभावली पु० १२२।

३६ वही पु० २८३।

३५ वही पु० १६।

४० वही पु० २८४।

३६ वही पु० ३५।

४१ वही पु० २८४।

३७ वही पु० ३७।

४२ वही पु० २८५।

३८ वही पु० २८३।

राजाजी की हड़ता एबम् क्षाण-गीरज से परिपूर्ण हो उठता है । राजाजी-सुमन बीच उसकी बाजी से फूट पड़ता है और वह धरी का बाना ग्रहण कर सेती है । दोनों स्थितियों में मित्राप का संकेत<sup>४३</sup> उसके हृदय की उस हड़ता एबम् जात्वा को ही व्यक्त करता है जो एक राजाजी नारी में बलानुक्रम एबम् परम्परा से प्रभावित एक सहज प्रकृति हो जाती है ।

बादल की पत्नी पद्मावत की चरित्र-भूमि में एक खंड चित्र के समान है । गहनोपरान्त जानेवासी बंधु के रूप में वह एक भावना-भूरित नारी है और परिस्थिति जन्य आतावरण के मध्य एक अन्तर्जात राजाजी है । बायसी के विदेशी न्यायारिक इतिहास के कारण उसकी भावामिष्यक्ति में आत्माभाषिका की जा गई है । टीली हरि के सास का हृदय में बैठना कुछ बपी तुम्बी को पीठ से कुसा कर पीड़ा से बंकि हुए पति को रस-मग्न करने की बात सोचना<sup>४४</sup> इसका उदाहरण है । इसी प्रकार बित बप में बादल की पत्नी के मनोभावों की चर्चा की गई है और बबर-से-बबर के बूझने का जो बुझा आनंद<sup>४५</sup> बाजी द्वारा व्यक्त कराया गया है, वह बादल की पत्नी की कामुकतापरक धृति का ही परिचायक नहीं अपितु उसे 'सामान्या नायिका' से भी गई बीटी स्थिति में ला खड़ा करता है । प्रथम बार गृह-ग्रन्थ करनेवासी एक भारतीय बंधु इतनी अधिक काम-मुझरा कदापि नहीं हो सकती । इस प्रकार की भाव-मिष्यबना मनोपोनिक एबम् सांस्कारिक दोनों ही हरि से नारी सुमन नहीं कही जा सकती । 'भड़ाई बाहटे हा तो पहिं भुसखे सप्राप्त करो'<sup>४६</sup> और 'कुम्भस्वस एबम् कुछ दोनों ही मधोन्मत्त हो रहे हैं इन्हें पेसो'<sup>४७</sup> जैसे वाक्य बादल की पत्नी को निर्लज्जता की बिड़ छीसा पर ले जाकर खड़ा कर बैठ है । उसके नारीत्व के अनुस्रम नहीं हैं । बत बीर-नृ गार के उपमेय उपमानों के मध्य टास-मेस बिठाने के बम लकारबाविषा ने बादल की पत्नी के व्यक्तित्व एबम् स्वरूप को बे-मेस कर डाला है ।

### मानस की उपनायिकाएँ

पार्वती—मानस की चरित्र-भूमि में पार्वती का चरित्र-चित्रण यद्यपि प्रासंगिक है किन्तु मानस की कथावस्तु में उसका महत्वपूर्ण स्थान है । एक हरि से वह राम-कथा का माध्यम है और कथा के विकास की हरि से भी वह शिव द्वारा बंघित राम-कथा का 'हो' हुई है । पार्वती द्वारा उठाई गई 'संकाएँ' कथा की विविधता प्रबल करती हैं ।

४३. बायसी प्रयावली पृ० २८३ ।

४६. बही पृ० २८४ ।

४४. बही पृ० २८३ ।

४७. बही पृ० २८४ ।

४५. बही पृ० २८४ ।

अतः पार्वती के माध्यम द्वारा रामाय श्री कथा-वस्तु गतिधीन एवम् अनुप्रापित हुई है।

सही समझना पार्वती के रूप में उसका व्यक्तित्व प्रमाणित तीन रूपों में हमारे सामने आता है—सद्यःसीता नारी के रूप में परचायाप विदग्ध नारी के रूप में एवम् अदभ्य अनुपमिका पति-विरागव्य तपस्विनी के रूप में।

सद्यःसीता नारी के रूप में पार्वती सामान्य नारी-सुलभ आदिमय भावनाओं का ही प्रतिनिधित्व करती है। अतःसंक्षेप शब्दों द्वारा सुप्रसृत को, 'सद्यःसीता एवम् मोक्ष-नाम' कहकर प्रणाम करते देखकर तथा उन्हीं शान्तात्म्य शीतल को मन्त्र के समान नारी की ओर करते पाकर पार्वती के मन में अपने नारी-स्वभाव के कारण संशय उत्पन्न होता है। शिव के बार-बार समझाने पर भी जब पार्वती के संशय का समाधान नहीं होता तो वह स्वयं सीता का वेश धारण कर राम की परीक्षा लेती है, परीक्षण विधि को अनुचित मानकर शङ्कर से भी पुनः खटती है और शिव द्वारा सब कुछ जान लेने का अनुमान कर वह अपने कण्ठ व्यवहार को नारी की सहज जड़ क्षमता स्वीकार करती है।<sup>४८</sup> सही के रूप में पार्वती का यह व्यवहार उसकी संशय सीता नारी-व्यक्ति का ही चोटक है।

संशयजन्य कण्ठ व्यवहार के कारण पार्वती को शंकर के स्नेह से वंचित हो जाना पड़ता है। अतः वह परचायाप विदग्ध नारी के रूप में दृष्टिबोधर होती है। वह अवर्णनीय विन्दा एवम् खोच में डूब जाती है और 'अर्थात् समस्त हृदय अपने लपटा है।'<sup>४९</sup> राम का स्मरण कर वह मरण की कामना करते हुए बिना परिधम ही इस विपत्ति से छूट जाना चाहती है।<sup>५०</sup> पति-विरागव्य के दुःख को मन-ही-मन अपना अपराध मान कर, सहन करते हुए सखी पिता के घर मन्त्र की बात सुनकर जाने के लिए आकुल हो उठती है और शिव के साथ समझाने पर भी नहीं रखती। वहाँ पति की निन्दा और अपमान की बात सुनकर योगाग्नि द्वारा वह अपना शरीर भस्म कर चाहती है।<sup>५१</sup> उसके इस परिचाय एवम् मरण के मध्य परचायाप विदग्ध नारी-हृदय ही परिमलित होता है। साथ ही उसका यह उत्तर्य भाव उसकी पति-विरागव्यता को ही व्यक्त करता है।

धिर-गुह में अवतरित होने से समाकर संसृ के साथ विवाह सम्पन्न हो जाने तक पार्वती एक अदभ्य अनुपमिका पति-विरागव्य तपस्विनी के रूप में ही दृष्टिबोधर होती है। संसृ प्राप्ति के हेतु की जानेवाली उसकी गंभीर तपस्या वहाँ उसके अदभ्य

४८. मानस, वाक्यार्थ पृ० ६६ से ८०। ४९. वही पृ० ७६।

५०. वही पृ० ७४।

५१. वही पृ० ७० से ८१।

सिवानुराग की चोतक है, वहीं यह तपस्या उसके हृदय स्वभाव की भी परिचायक है। उसके मन की हड़ता पर्वत-कन्या के अनुबन्ध ही व्यक्त हुई है। वह बेह का परिचय कर सकती है अपनी हठ का नहीं।<sup>१२</sup> करोड़ों जन्म तक वह इसी टेक पर कामरू रहना चाहती है कि या तो वह जंगू को ही पड़ेगी या कुमारी ही रहेगी।<sup>१३</sup> इस प्रकार पार्वती की यह हड़ता उसकी बढोर साधना, पति-परायणता, एवम् शिवके प्रति उसके अटल अनुराग की परिचायक है।

मानसकार ने पार्वती के चरित्र की दृष्टि उसके जगन्माता स्वरूप के अनुरूप ही की है। यद्यपि मानसकार ने सती की हठ के अंतर्गत उसके नारी-स्वरूप की कुर्वणता को व्यक्त करने की कोशिश की है किन्तु उमा के हठ के रूप में वह सामान्य नारी की भाव भूमि से ऊपर उठ कर आदर्श प्रमाण हो उठा है। सती का हठ नारी सुसम है किन्तु उमा का हठ अपने आप में अद्वितीय है। पल-कन्या की सद्योजनित अपमगाहट, हिम-कन्या की तपस्याजनित हड़ता नम नहीं है और इस प्रकार पार्वती का व्यक्तित्व भी अपनी उपमा आप ही हो उठा है।

कैकेयी:—कैकेयी मानस की कथावस्तु का मोड़ है। कथा को वह एक नवीन सुभाव प्रदान करती है। अतः मानस की कथावस्तु में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी चरित्र-दृष्टि कथा में कल नायिका के रूप में हृदि-गोचर होती है क्योंकि कैकेयी की कुमति सभी कार्य और विपत्तियों की जनक ॥<sup>१४</sup>

कैकेयी का व्यक्तित्व सत-असत् का समिपण है। पत्नी के रूप में उसे राजा हस्तरव का सर्वाधिक प्रेम प्राप्त है। उसके कोपामार में जाने के समाचार सुनकर हस्तरव जैसे प्रतापी राजा का सूरज जाला<sup>१५</sup> इस बात का प्रतीक है कि पति पर उसका अत्यधिक प्रभाव था। स्वयं राजा हस्तरव के सन्नों में उनका मन कैकेयी के मुख बपी बन्धना का बकोर वा और वे उसके इशारे पर जमरों तक को मार सकते थे रंक को राजा बना सकते थे तथा राजा को निष्कासन दे सकते थे।<sup>१६</sup> अतः पत्नी के रूप में वह राजा की प्रिय-प्राप्ती एवम् प्रभाव-सम्पन्न नारी ही साबित होती है।

विनाता के रूप में भी कैकेयी पहले एक स्नेहमयी बत्तम हृदय नारी ही है। संभव की वर फोड़नेवासी बात सुनकर उसकी पीम खिचवा देने की बमकी<sup>१७</sup> एवम् राम को प्राणों से भी अधिक प्रिय मानकर कैकेयी की जगसे जग में भी राम से पुत्र

१२ मानस, बालकांड पृ० ६७।

१३ वहीं पृ० ६५।

१४ वहीं पृ० १७।

१५ मानस अयोध्याकांड पृ० ४२४।

१६ वहीं पृ० ४२५।

१७ वहीं पृ० ४२६।

एवम् सीता-सी बहू पाने की कामना करता<sup>१५</sup> उसके स्नेहमय स्वस्व के ही चोख है। किन्तु जब मंथरा द्वारा उसके मन में सौतिया बाहू को प्रवेश कर दिया जाता है और उसे 'बूब की मन्त्री'<sup>१६</sup> बताया जाता है तो उसका दुर्बल गारी-बुद्धि आतिगद् ईर्ष्या का सिकार होकर उसके संपूर्ण स्नेह पर पानी फेर देता है। कोपामार में कुनेब बनाकर उसका पड़ा रहना कपट-युक्त स्नेह बढ़ाकर रामा से वरदान प्राप्त करना रामा की वित्त की बातोंकी एवम् प्रपन्न बचाना तथा कौशल्या को फल बचाने की बात करना<sup>१७</sup> उसकी ईर्ष्यासु प्रवृत्ति के ही परिणाम है। उसकी कुटिलता कठोरता एवम् कुबुद्धि रघुवंशस्त्री बाँसों के बन के लिए बाग सिद्ध होती है<sup>१८</sup> और भरत के हृद्यों में वह कुल का नाश करनेवाली पापिन है। उसका परिचाप एवम् परचाठाप वहाँ गारी घुसम है, वही उसके पापों की मुस्ता को कुछ हल्का करनेवाला ही है। रामा जनक के आगमन के समय भ्रान्ति में बसते हुए उसके मन की जो स्थिति दृष्टिगोचर होती है और बन में राम से मिलते समय उसमें जो संकोच दिखाई देता है वह उसके द्वाविक परचाठाप का चोख है।

मनोमात्रों के अन्तर्गत कैकेयी के 'विद्या-चरित्र' एव उसकी बुद्धबहीनता का ही परिचय मिलता है। उसके कपट कुनेब एवं कुबाली स्वस्व की ध्वंजना वर्तनीय है। मंथरा की बातों में बाहर प्रकट होनेवाला उसका आवेश उसकी दुर्बल गारी-बुद्धि का चोख है। मानस की चरित्र-भूमि में कैकेयी की चरित्र-सृष्टि एवं मनोमात्रों के अन्तर्गत उसके स्वस्व की ध्वंजना उरी के अनुरूप है। संक्षेप में कुटिलता कठोरता एवं कुबुद्धि का नाम ही कैकेयी है।

कौशल्या —मानस की कलावस्तु में कौशल्या का स्वाग राम की माता होने के कारण आदर्श प्रधान एवं मातृत्व की परिभा के अनुरूप है। वात्सल्य के संयोग-यत्न के अन्तर्गत उसका व्यक्तित्व वहीं सामान्य गारीवत् है वहीं वियोगकाल एव उसके उपपन्न उसका व्यक्तित्व मातृत्व की परिभा से मंडित होकर उसके जिस आदर्श स्वस्व को व्यक्त करता है, वह सर्वथा राम-जननी के अनुरूप है। राम को मोह में लेकर हिसाने एवं पसने में झुलाकर झूठा देने जैसी क्रियाओं के अन्तर्गत कौशल्या साधारण मातावत् दृष्टिगोचर होती है। माता से बिदा माँगने आए राम के प्रति प्रकट होनेवाले उद्गारों से भी कौशल्या का सहज मातृत्व ही सततता है। राम के वरण छूटे ही कौशल्या द्वारा उन्हें आजीर्ण देकर छाती से लगा लेना बार-बार उनका मुख भूमना

१५. भागवत, अयोध्याकांड पृ० ४१४। १६. वही पृ० ४१४ से ४१३।

१७. वही पृ० ४१५। १८. वही पृ० ४१७।



आनन्दामूर्तों से नेत्रों का भर जाना और प्रेम के मारे स्तनों से दूध का बह निकलना,<sup>६१</sup> बास्तब में कौसल्या के मातृ-हृदय के बास्तब भाव को ही प्रकट करते हैं।

राम के मुख से कानन के राग्य की बात सुनकर कौसल्या के नेत्रों का स्रवण हो जाना एवं उन का धर-धर काँपना<sup>६२</sup> माता के हृदय के उस गहरी सुसन्न विषाद का प्रतीक है जो प्रायः ऐसी स्थिति में उत्पन्न हो जाया करता है। किन्तु सचिव-सुत द्वारा कारण के जानने पर कौसल्या का बूझी की तरह चुप हो जाना<sup>६३</sup> उसकी गंभीरता को ही व्यक्त करता है। सरस हृदया कौसल्या के उस समय के उद्गारों से भी उसके चरित्र की गंभीरता एवं हृदय की विद्यामता ही प्रकट होती है। कौसल्या के इस कथन के अन्तर्गत कि हे पुत्र यदि केवल पिता की ही आज्ञा हो तो माता को पिता से बड़ा मानकर वन मत्त जाओ किन्तु यदि माता-पिता दोनों की आज्ञा है तो तुम्हारे लिए वन ही अयोध्या के समान है।<sup>६४</sup> उसके हृदय की उस विद्यामता के वर्धन होते हैं जिसमें कैकेयी के प्रति जरा भी कटुबाह्य नहीं है बल्कि 'माता' के रूप में उसकी आज्ञा को वह राम के लिए विरोधार्थ करने योग्य समझती है।

कौसल्या द्वारा किसी को बोध न देते हुए अपने ही भुङ्गत फल के व्यतीत हो जाने की सोचना बिनाप करते हुए राम के चरणों से निपट जाना<sup>६५</sup> अपनी सुन्न न भूमने की याद दिलाता<sup>६६</sup> भरत को नसे से लगाते हुए वह सोचना कि मातों रामचन्द्र ही लौट आए हैं<sup>६७</sup> आदि प्रसंग कौसल्या के महत् मातृ-स्वरूप के ही प्रतीक हैं। निर्विशेष-माली के समझ भी राम सक्रमण एवं सीता के वनवास के प्रति धुम परिणाम की ही सोचकर केवल भरत के प्रति चिन्ता व्यक्त करना<sup>६८</sup> कौसल्या की महान्ता की चरम परिचय है। सुनयना के लक्ष्यों में ही कौसल्या की विनय-भावना छड़ी के अनुकूल है। क्योंकि वह बलरूप की रानी एवं राम की माता है।<sup>६९</sup>

मनोमार्जो के संतर्पण भी कौसल्या की विनय-भावना एवं उसके मातृ हृदय की बास्तब्यजन्य गरिमा की दृष्टिबोधर होती है। यद्यपि कौसल्या की भावामिप्यक्ति में मनोबलान्तिक भावना-क्रम का निर्वाह पूर्णरूपेण नहीं हो पाया है, फिर भी मानस की चरित्र-भूमि में उसका व्यक्तिगत माता की गरिमा से संवित है और उसका आदर्श स्वरूप राम वनगी के उपयुक्त ही है।

६१ मानस प्रयोग्यकाण्ड पृ० ४३९।

६२ वही पृ० ४३४।

६३ वही पृ० ४३३।

६४ वही पृ० ४३६।

६५ वही पृ० ४३५।

६७ वही पृ० ४३७।

६८ वही पृ० ४६४।

६९ वही पृ० ९०९।

७० वही पृ० ९८४।

**भूमिजा**—मानस की बजाबस्तु में भूमिजा का स्थान दशरथ की कनिष्ठा राणी एवम् भरमण की माता के रूप में उपस्थित हुआ है। भूमिजा का व्यक्तित्व स्नेहमय एवम् शान्ताकी सुप्त है। भरमण के विषय माँपने पूर्वक पर भूमिजा का सब समाचार जानकर कँकरी के बुरे बात की बात सोचकर उसे “पापिनी” समझना एवम् क्रुद्धकर जानकर धर्म धारण करना <sup>७१</sup> उसके समय स्वभाव का छोटक है। भरमण को सहर्ष राम एवम् सीता का अनुसरण करने की आज्ञा प्रमाण करते हुए भूमिजा द्वारा स्वर्ग को नयन सहित हमसिए भूरि भाव्य का दाव समझना कि उसका पुत्र मनुमें हमों का परिचय कर राम के चरणों में अनुरक्त है <sup>७२</sup> भूमिजा की सहृदयता एक महानगा की ही व्यक्त करता है। मानस की चरित्र भूमि में भूमिजा का चरित्र विषय नाम की हुआ है और वह एक रेखानुकृति-सी जान पड़ती है। फिर भी हमारी धार्मिक सतक उसे रघुकुल की गरिमा एवं सत्कर्म-माता के सर्वथा अनुकूल ही सिद्ध करती है।

**मन्दोदरी**—मानस की बजाबस्तु में मय-तनवा मन्दोदरी राजन की पत्नी के रूप में विवित हुई है। राक्षस-मत्सी होने पर भी वह रूप मीन-मुग्ध सम्पन्न नीति परायण नापी ही इष्टियोग्य होती है। चन्द्रहाम उठाकर सीता का बच करते राजन को तब राजनीति बचा कर समझाती है। <sup>७३</sup> बुद्धियों द्वारा मय-निवासियों की विचारबारा से बचपट होकर वह राजन को राम-विरोध-विमुख करना चाहती है एव सीता के आयमन को राजभक्त-विपिन के लिए जीत-निवासन हुआई बताकर वह राजन को सीता को लौटा देने की सलाह देती है। <sup>७४</sup> यह बात अपनी सत्यता एव दूरदर्शिता की परिचायक है। मापी की विमता का विचार कर राजन को बार-बार विवित करना हाथ पकड़ कर अपने भवन में भजाकर उसके चरणों में मन्दक रखते हुए माँपत रँका कर क्रोध का परिचय कर उनकी बात सुनने के लिए करना तथा पुर को राम्य देकर बीयेपन में नीति-अनुसार भजन करने की सलाह देना <sup>७५</sup> बाल्य में मन्दोदरी की मारी सुलभ सकाकुमरा के साथ साथ उसकी बुद्धिमता एवं नीति-निपुणता के भी परिचायक है।

अपने बहिर्बाध को बचस रखने की कामना से उसका राजन के चरण पकड़ कर सत्रय मैत्रों सहित कपिन गाव हो उठना <sup>७६</sup> जहाँ उनके आतिगठ मारी-मारों का प्रतीक है वही अब से रामबाण द्वारा उनके क्रान का कुण्डल शृङ्गी पर गिर जाता है

७१ मानस पायोप्याकांड पृ ४७३ ७४ वही पृ० ८८५ ८८ ।

७२ वही पृ० ४७४ ।

७३ मानस लंकाकांड पृ० ६२२, २३ ।

७४ मानस, कुण्डरकांड पृ० ८६१ ।

७५ वही पृ० ६२४ ।

तभी से उसके हृदय में विष्ठा का उदित हो जाना<sup>७७</sup> उसकी नारी सुलभ संकाकुलता का ही प्रतीक है। पति को नाश बचाते देखकर वह विभिन्न उक्तिओं द्वारा विभिन्न सम वचनों का उपयोग करते भी नहीं झुकती। नारीच भगुन-भङ्ग सुपनबा नार, वृषभ, विराज अपने दोनों पुत्रादि का हवासा लेकर, राजन को व्यर्थ ही मान और ममता के प्रसङ्ग में बहता बहाकर मनोबरी का यह कहना कि 'कास किसी को साठी लेकर नहीं मारता वह तो बर्म के वन बुद्धि तथा विचार को हरण कर लेता है और है स्वामी। कास जिसके निकट जाता है उसे तुम्हारी ही तरह भ्रम होता है'<sup>७८</sup> वास्तव में मनोबरी की शक्तिशाली, बुद्धिमत्ता कूर्यासता एवं नीति-निपुणता के ही परिचायक हैं। पुत्र की मृत्यु पर उसका छाती पीट-पीटकर रोना और राजन का सिर अपने सामने बेधकर मुक्ति होकर पृथ्वी पर विर पड़ना जहाँ उसकी नारी सुलभ सुलभता के परिचायक है वहीं वे उसके पुत्र-मेम एवं पति-मेम के भी प्रतीक हैं।

मनोबावों के अन्तर्गत मनोबरी का हिन्दी स्नेहसील, संकालु एवं बर्मभीरु स्वरूप प्रकट होता है। उसका व्यक्तित्व सर्वत्र पति की हिस-नामना से अनुप्राणित है। उसकी विचारधारा से उसकी चारित्रिक मनोवृत्ति का पता चलता है। उसकी नीति परामर्शता एवं बुद्धिमत्ता पुनस्त्य अपिकुल की पत्रोह के अनुरूप है। यद्यपि उसकी समयोचित सलाह राजन के समझ नरप्य रोदनकाल ही धारित होती है पर उसने पत्नी के कर्तव्य का पालन मौख मीचकर अत्यानुसरण करते हुए नहीं बुद्धि का समुचित उपयोग करते हुए किया है और इस दृष्टि से उसका व्यक्तित्व निःसन्देह महाद् ही सिद्ध होता है।

### रामचन्द्र चन्द्रिका की उप-नायिकाएं

कौसल्या:—चन्द्रिका की कथावस्तु में कौसल्या का 'उल्लेख' यद्यपि राजन की श्लेष्ठा पत्नी एवं राम की माता के रूप में हुआ है परन्तु सम्पूर्ण महाकाव्य में कौसल्या का व्यक्तित्व तथा मनोभावों के अन्तर्गत उसका स्वरूप अस्पष्ट-सा ही है। राम के मुख से बनवास की बात सुन कर उसका राम के साथ ही बन जाने की बात कहना और अकबपुरी पर गान गिरने की शायना करना<sup>७९</sup> वहीं एक ओर नारी सुलभ है वहीं दूसरी ओर वह उसके व्यक्तित्व को छोटा बनावेबाधा भी है। राम द्वारा अपनी ही माता को पति-परामर्शता का पाठ पढ़ाये जाना और वह कहना कि नारी स्वप्न में भी अपने अन्ते सुने संगड़े पति का परित्याग नहीं करती है इससे पुन ममता, काया कर्मका से हमारा नेह त्याग कर विपदा में पड़े राजा की सुख सो<sup>८०</sup>

७७. मानस, संकाकांश पु० २३१।

७८. वही पु० २३८, २६।

७९. केशव संकावसी पु० २७४।

८०. वही पु० २७४, ७२।

वास्तव में कौसल्या के व्यक्तित्व ने अनुरूप नहीं है। एक नारी को अपने ही पुत्र द्वारा पति-सेवा का पाठ पढ़ना पड़े। इससे अधिक दुर्भाग्य की बात और क्या हो सकती है ? चाहे चम्रिकाकार की इच्छा राम के मुख से 'नारी-वर्म' का विवेचन करवाने की रही हो पर कौसल्या के मिस यह अवतरणा कौसल्या के नारीत्व का उसके मातृत्व एवं पत्नीत्व का अपमान ही है। सब पुष्पा आए तो चम्रिका में कौसल्या का उल्लेख मान हुआ है, चरित्र-चित्रण नहीं। न तो उसके मातृ हृदय की व्यञ्जना ही हो पाई है और न उसके गौरव की रक्षा ही।

कैकेयी—कैकेयी की स्थिति भी चम्रिका की कथावस्तु में भरत की माता एवं दशरथ-पत्नी के रूप में उपस्थित की गई है। उसका उल्लेख केवल छः छन्दों<sup>२१</sup> में ही पाया जाता है। इन छः छन्दों के अनुसार जब भरत की माता राम को राज्य देने की बात सुनती है तो 'राम को वन भेजने की बात उसकी बुद्धि में उदित होती है। अपने दोनों बरों के लिए वह मन्दिर में नृप से विनती करती है। राजा इस 'सुमोचन' को बर मानने को कहते हैं और वह भरत को राज्य तथा राम को जीवहृ बर्ष का वनवास देने का बर मान लेती है। भरत के आगमन पर वह मन्दिर में अकेली हृष्टिभोचर होती है जैसे बिना वृक्ष की बेध हो। वह प्रणाम के पश्चात् सुत को कूट लगाती है समाचार कहती है और भरत के शब्दों में 'भरत-सुत-विष्टेपिनी तथा 'सबके लिए बुझराई' साधित होती है। अब यह स्पष्ट है कि चम्रिका की चरित्र-भूमि में न तो उसका व्यक्तित्व और न मनोभावों के अंतर्गत उसके स्वरूप की व्यञ्जना हुई है। कथा को प्रभाव देने के लिए एक हल्की-सी वस्तु-रेखा से अधिक उसका अस्तित्व ही नहीं है।

सुमित्रा—चम्रिका की कथावस्तु में सुमित्रा का स्थान दशरथ की कनिष्ठा रानी एवम् सक्ष्मण-माता के रूप में है किन्तु चम्रिका के बाईसवें प्रकाश के केवल एक छंद को छोड़कर, जहाँ वह राम से वनवास-काल में सक्ष्मण से हुई भूक के लिए समा-याचना<sup>२२</sup> करती हृष्टिभोचर होती है उसका नहीं उल्लेख नहीं है। इस प्रकार चम्रिका की चरित्र-भूमि में सुमित्रा के नामोल्लेख के अतिरिक्त उसका कोई चरित्र चित्रण नहीं हुआ है। वह चम्रिका की सर्वाधिक चित्रण-उपेक्षा उपे-मायिका है।

मंथोदरी—चम्रिका की कथावस्तु में मंथोदरी का स्थान रावण की पटरानी के रूप में उपस्थित हुआ है। चम्रिका की चरित्र भूमि में मंथोदरी का चरित्र मानस की भाँति ही एक नीति निपुणा बुद्धिमती एवम् दूरदर्शी नारी के रूप में प्रकट होता है। रावण को बुक्तिपूर्वक समझाते हुए मंथोदरी यह समाह देते हृष्टिभोचर होती है

कि सीता को बुराना संका में मृत्यु की बेस बने के समान है। जिनकी वनुरेख भी तुमसे उमारी नहीं गई, भला तुम उन्हें मुख में कैसे भीछोगे ? यदि सीता को ही प्राप्त करना था तो संकर का मनुष्य तोड़कर प्राप्त करते।<sup>५३</sup> यह रावण को सीता को मौटा देने की सलाह देती है। उसका यह कथन कि 'जाहे संभि करो या भुख करो किन्तु सीता को मौटा दो ! हे प्रिय ! पतिव्रता की देह को देह मत समझो' उसकी बुद्धिमत्ता का ही चोटक है। मंदोदरी में जोर का भी जमान नहीं है। यह कथन कि 'तब सब तुम्हें समझा-समझा कर बक गए, राम का दूत भी आया पर पुन और भाई को छोकर भी तुममें समझ न आई। अब तुम सुख से जीवित रहो मैं राम से मुक्त करती हूँ'<sup>५४</sup> उसके स्वाभिमान एवम् ओजस्विता का परिचायक है। अंतर्द्वारा परेशान किए जाने पर इस लज्ज रानी की शीन बाणी जब रावण के समक्ष प्रस्फुटित होती है तब भी वह यह कहते हुए कि सीता को कृपा कुत्त देने के कारण ही आज यह बात छप गई कि क्या राजा और क्या रंक जसा करते हैं बसा ही फल पाते हैं<sup>५५</sup> नीति का समर्पण ही करती है।

चन्द्रिका की चरित्र-सूचि के अन्तर्गत मंदोदरी का व्यक्तित्व यद्यपि पूर्ववर्णन स्पष्ट नहीं होने पाया है और न मनोभावों द्वारा ही उसके स्वस्व की व्यंजना हुई है, फिर भी उसकी नीति-परायणता एवम् बुद्धिमत्ता के माध्यम द्वारा उसके व्यक्तित्व का आभास अवश्य मिल जाता है। इस दृष्टि से मंदोदरी चन्द्रिका की अन्य उपनायिकाओं से कहीं अधिक भाव्यताशील सिद्ध हुई हैं। पर उसका नारीत्व चन्द्रिका में न तो अपने वांछित स्वरूप की व्यंजना कर पाया है और न उसके नारी-हृदय की सुकुमार भावनाएं ही दृष्टिगोचर होती हैं। संक्षेप में वह इहानी कम सत्ताहकार-सचिवा ही अधिक जान पड़ती है।

प्रियप्रवास की यशोदा — प्रियप्रवास की कथावस्तु में यशोदा की चरित्र-सूचि मन्द की रानी एवम् कृष्ण की स्नेहमयी माता के रूप में हुई है। कृष्ण के प्रति प्रदर्शित प्रेमका वात्सल्य भाव कथावस्तु की कथना की और भी अधिक कल्प बनाने में सहायक हुआ है और इस प्रकार राधा के पक्षवस्तु, माता के रूप में यशोदा ही 'प्रियप्रवास' की सबसे महत्वपूर्ण नारी-भाग है। अतः कथा में उसका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

यशोदा का व्यक्तित्व एक स्नेहमयी माता का व्यक्तित्व है। प्रियप्रवास में व्यंजित उसके मातृ हृदय का हाहाकार वही एक और अपने वांछित स्वरूप को प्रदर्शित करता है, वही दूसरी ओर वह यशोदा के मातृ हृदय की छरमछा भुविता कल्प भावना

और आत्यरिक स्नेह का परिचायक है। अक्रूरगमन के साथ ही प्रवास के पूर्व मुकुन्ध के निकट क्रमपत्नी इस वननी का अति अर्घ्ययत अधु-प्रवाह से प्लावित बबन-मंडप हृदय में उठती भयमयी अति कृतियुत मावना यशोदा की महीपति कंस के परम नाश से सम्पित बना जावती है।<sup>८१</sup> यशोदा का बार-बार पट हटा कर सुत के मुक्त-कंज को निहारना सुपायम नीति की भयंकरता को सोचकर कबच छप्पन के साथ भूमि पर मोल खाना हरि के जागने की चिन्ता से विसृक्तियों को बहाना<sup>८२</sup> उसके मातृ हृदय की मनोमेवता का परिचायक है। बुद्ध-वेग के कम होने पर यशोदा की कृप बेबता से श्री जानेवाली विनय और अनजान में किए जानेवाले अपराधों के लिए इस सफ़ट-काज में श्री जानेवाली क्षमा-प्रार्थना<sup>८३</sup> वहाँ एक ओर यशोदा की नारी मुत्तम धर्म नीष्टा की प्रतीक है वहीं दूसरी ओर इस विनय मनीषी एवम् क्षमा-प्रार्थना के मध्य यशोदा के मातृ-हृदय के आसुर्य-भाव की गरिमा प्रकटित होती है।

बिदा-वेला के समय यशोदा परम क्षिप्ता-वीना दृष्टियोचर होती है।<sup>८४</sup> अन्ध विदु गुणवासी प्राण से श्री प्यारी अनुपम पाठी को मन्द को छीपते समय<sup>८५</sup> यशोदा के मातृ हृदय के मनोद्गार फूट से पड़ते हैं। उसके बासकों को पय का बुझ न हो अतः वह मधुर फल खिलाने नाना द्रव्यों को दिखाने प्यास सगने पर विमल बल मबाकर पिसाने द्युवित होने पर व्यंजनों के खिलाने और विमलित बबरो को सूखने न देने के लिए सुतों का बबन बिलोक कर ही दिन बिताने की बात मन्द से कहती है।<sup>८६</sup> तब की कुबामाओं की बामता<sup>८७</sup> बब जनों का भय<sup>८८</sup> कंस की कुपित दृष्टि<sup>८९</sup> मादि के प्रति जाग्रत होनेवाली यशोदा की वारंकारें वहाँ नारी मुत्तम हैं, वहीं वे उसके मातृ हृदय की सरसता एवम् स्नेह की भी परिचायक हैं। इन उन्मार्पों के अंत गंत यशोदा के मातृ हृदय की आकुलता कबचा मावना संशय सजयता एवम् स्वामा विक स्नेह के दर्शन होते हैं।

मन्द की बापसी पर यशोदा का महा क्षिप्नमना होकर पति के पाँवों के सन्निकट छिन्नमूला कता के समान निपवित होना एवम् सजा के लौटने पर विकल होकर, रो-नोकर पति से बोलना<sup>९०</sup> यशोदा की मनोम्यता को प्रकट करता है। पुनः के स्मरण एवम् गुण-कबन के साथ-साथ यशोदा का सम्भारवत् विरह-विताप

८१ मित्र-प्रवात १। १८ से ३०।

८२ वही १। ३१ से ३५।

८३ वही १। ३७ से ४१।

८४ वही १। ४२।

८५ वही १। ४४।

८६ वही १। ४६ से ५२।

८७ वही १। ५३।

८८ वही १। ५४।

८९ वही १। ५५।

९० वही ७। १०।

प्रसाप की व्यवस्था तक पहुँच जाता है और उसके मातृ हृदय का वास्तव्य उसे स्वयं को पापीयसी<sup>१३</sup> महा शाय्यहीना<sup>१४</sup> मानने के लिए साधारण कर देता है। पुत्र की बातें कन्धों एवम् अम्बुधारा बहाते यशुमति का धीरे-धीरे चेतना-सूत्र हो जाना<sup>१५</sup> तथा गन्ध के मुख से पुत्र के दो दिन बाद सीटने के समाचार प्राप्त कर उसका स्वल्प आश्वासना-सी होना<sup>१६</sup> उसके मिराद्याप्रसन्न एवम् आद्या-आश्वासन मातृ-स्वरूप के व्यक्त हैं।

उद्वेग के आगमन पर यशोदा के मातृ हृदय की संपूर्ण मनोवेचना मूर्तिमान् होकर प्रवाहित हो उठती है। वह एक ही साँस में अपने प्यारे पुत्र की सकुचनता के समाचार आने के लिये प्रश्नों की झड़ी-सी लगा देती है। जब यशोदा उद्वेग से पूछने लगती है कि 'मेरे प्यारे सकुचन सुखी और शान्त तो हैं कोई चिन्ता उन्हें ममिन तो नहीं बताती है' बदन पर स्मानता तो नहीं छाती है, हृदय-तन में बेदनाएँ तो नहीं होती हैं,<sup>१७</sup> तो ऐसा मर्त्य होता है कि यशोदा के मातृ-हृदय में प्रश्नों का आर-सा उठ खड़ा हुआ हो। सीटने से मृदुम नयनीत माना पञ्चान कम्बरी के दूब<sup>१</sup> के साथ ही पुत्र के सरस सक्रोधी और स्वभाव का स्मरण कर सरणि सुत को जक में बिजाने की वर्षा<sup>१८</sup> यशोदा के मातृ हृदय के भावात्मक उद्वेग को प्रवर्धित करती है। अपने तनय को अन्ध का लाड़िला होते चाते देखकर उसका मृतप्राय हो जाना जहाँ नारी सुसम है, वही देखकी भी व्याधा का व्याग आते ही पाप के नाते एक बार मुख देखने पर सब की बात<sup>१९</sup> वास्तव में यशोदा के मातृ हृदय की सहिमा एवम् पीड़ाजनित सङ्गमसूति की परिचायक है क्योंकि यशोदा नहीं चाहती कि वृद्धावस्था में किसी का भी सकृद छीना जाने और कस-खस से कोई किसी का हास ले ले।<sup>२०</sup>

प्रिय-प्रवास की चरित-भूमि में यशोदा की चरित-सृष्टि एवम् मनोवाचों के अंतर्गत उसका जो स्वरूप तथा व्यक्तित्व इतिगोचर होता है, वह कवचा की एक पृष्ठत धारावत् भाग पकता है। अत्येक जड़ एवम् चेतन वस्तु जिसका स्थूलविक्रम से भी उसके लाड़िले के साथ सम्बन्ध रहा है, उसके मातृ हृदय की बेदना को उद्गीत करती है। अपनी चेष्टाओं, कानों एवम् मनोद्वारों के अंतर्गत यशोदा का पुत्र-चित्र में व्यक्त मातृ हृदय ही सबब इतिगोचर होता है और यह परम व्यथित, भुक्ति या

१३. प्रिय प्रवास ७। ४८।

१४. वही ७। ४९।

१५. वही ७। ५०।

१६. वही ७। ५१।

१७. वही १०। २३।

१८. वही १०। २४।

१९. वही १। २५।

२०. वही १। २५। २६।

२०. वही १०। २६।

विपत्ता पाठा<sup>१</sup> \* अपने जीवनभार पुनः की प्रतीक्षा करते हुए, त्रियम्बास की कथा भूमि में विपत्ता ही बनी रहती है। 'मूरसागर' की यशोधरा से अनुप्राणित होकर भी, त्रियम्बास की यशोधरा, माता की दृष्टि से हिन्दी-महाकाव्यों में अपना एक अति शीघ्र स्थान रखती है।

### साकेत की उपनायिकाएँ

सीता—साकेत की कथावस्तु यद्यपि राम-कथा से अनुप्राणित है, किन्तु इस कथा को उमिला के विच्छ-प्रकाशन की दृष्टि से, साकेत में ही घटित करने के कारण साकेत की कथावस्तु में सीता का स्थान उपनायिका के अन्तर्गत ही मानना पड़ता है। वैसे साकेत की कथावस्तु में सीता का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है और अपने उदात्त गुणों के कारण वह उमिला से भी अधिक महत्वपूर्ण हो उठी है।

सीता धुपमा-गुप्त की सीमा एवम् भाव-भुरगि का सरल है।<sup>१</sup> २ उसकी बायीं में बीधा-याचि का निवास है और वह कमला-सी कल्याणी है।<sup>३</sup> ३ देवार्चन में लगी हुई कीमत्ता का हाव उत्साहपूर्वक बंटाता और सास द्वारा बाही वस्तुओं को बुझाने में प्रवृत्त तत्परता उसकी नार्य-भुगमता की परिचामक है। जन-गमन का समाचार प्राप्त होने पर सीता द्वारा मन-ही-मन धर्म-चारिणी एवम् जन-विहारणी<sup>४</sup> ४ होने का निश्चय उसके हृदय की दृढ़ता का प्रतीक है। वह पति के सुख-दुख की सम भाविनी है और हसीमिए मीनक लेकर माननपायी होते स्वामी से वह अपने धर्म-भाव की मांग करती है।<sup>५</sup> ५ उसकी यह विचारवाच कि 'यदि अपना धार्मिक बल ही ही संयम में भी संयम है'<sup>६</sup> ६ उसके दृढ़ निश्चय एवम् भाव-बल की ही प्रवृत्ति करती है। पति ही पत्नी की गति है, यही सीता की महामति है।<sup>७</sup> ७ अथ वनमन के समय भी वीरही में पुनः बाव के दर्शन तथा रोम-रोम से मिल भुगानुभव दृष्टि-मोचर होता है।<sup>८</sup> ८

संयम एवम् दृढ़ता की प्रतिभूति बनी सीता, अपनी कोमलता में नारी ही है। बनी छाया देखकर राम और लक्ष्मण की टहलते पाकर उसका यह पूछना कि क्या तुम दोनों नहीं चके, मैं ही क्यों ? और भाये कुछ न कहने हुए, हँसते-हँसते उसका रो पड़ना तथा यह कहना कि मुझे अपने लिए कुछ सोच नहीं, तुम्हें अनुविण

१०४ विजयप्रसाद १७। ३६।

१०५ साकेत पु० २५।

१०६ वही पु० ६३।

१०७ वही पु० १०४।

१०८ वही पु० ११६।

१०९ वही पु० ११७।

११० वही पु० ११८।

१११ वही पु० १२६।



न ही इस बात का संकोच है, <sup>११०</sup> उसकी नारी सुलभ सुकुमारता, भावुकता एवम् मात्रा-गति में व्यवधान बमों के कारण उत्पन्न उसके हृदय-परित्याग का परिणामक है। मार्ग में ग्राम-नारियों से होनेवाले संवाद के मध्य भी सीता की नारी सुलभ सज्जा परिलक्षित हो जाती है और 'गारे देवर क्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं' <sup>१११</sup> कहते हुए सरल भाव के मध्य भी आधृत होनेवासी ठरस हँसी सीता के आठिगण संस्कारों की परिणामक है।

विचट्टन में सीता का व्यक्तित्व अपने मुक्त रूप में दृष्टिगोचर होता है। कटि में वज्रपट जौंस पर कछीटा गारे वह एक नई पत्र धारण करती है। <sup>११४</sup> अपने मनो राज्य में विचरण करते हुए वह उस कुटिया को ही राजमहल समझती है। विचट्टन में वह औरों के हाथों न पल कर अपने पैरों पर आप खड़ी चलती है। <sup>११५</sup> उसे अपना भाम्य ठ्ठा हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता। उसका सुगा हुआ भय दूर भ्रम जाटा है। कुछ करने में हाथ लगाकर जग में ही उसका पार्श्व व्यापता है और वह जानकी नामा दृष्टिगोचर होती है। <sup>११६</sup> सीता के लिए बोध-विनिमय में भ्रम-ही-साम विविध वृत्त-संघर्ष में उत्साह एवं अक्षेप समय में गान की सप के साथ काठने-बुनने की बुन रहती है। <sup>११७</sup> वह विचट्टन-काल में एक मुखर विनोदनी एवं सरस हृदय नारी ही दिखाई पड़ती है। भरत द्वारा अयोध्या गीत चलने की बात पर एवं राम द्वारा इस प्रस्ताव का समर्थन किए जाने के पश्चात् भी सीता की मध्य दृष्टियों का कुटिल हो जाना और "स्वार्थ देखने" के मिस टाक जाना <sup>११८</sup> वास्तव में उसकी पति-परामर्शता का ही परिणामक है क्योंकि सीता का मंडन तो उसका सिन्दूर-विष्णु है। <sup>११९</sup> हनुमान के समक्ष अशोक बाटिका में प्रकट होनेवाले सीता के सद्गारों से भी उसकी पति परामर्शता का ही परिणाम मिलता है। सीता का यह कथन कि 'राम-जानकी के सम्बन्ध इसी जन्म के लिए नहीं है' <sup>१२०</sup> उसकी अद्वैत पति शक्ति एवं प्रेम के परिणामक है।

साकेत की चरित्र-भूमि में सीता की चरित्र-सृष्टि एक नवीन कलेवर के साथ उपस्थित होती है। मनोभावों के अन्तर्गत उसका जो स्वरूप अभित होता है उसके अन्तर्गत भी सीता एक आदर्श रमणी के अतिरिक्त हाङ्ग-मांस की नारी भी है। 'पुरुषों की तो बस राजनीति की बातें' <sup>१२१</sup> जैसे वाक्य उसके नारी हृदय के सहज उद्गार से

११२ साकेत पृ० १४६।

११३ वही पृ० १४७।

११४ वही पृ० २९०।

११५ वही पृ० २२२।

११६ वही पृ० २९३।

११७ वही पृ० २९६।

११८ वही पृ० २९०।

११९ वही पृ० २९१।

१२० वही पृ० ४३३।

१२१ वही पृ० २९३।

जान पड़ते हैं और सीता की दाम्पत्य भावना के चोखे हैं। साकेत में प्रथम बार सीता एक प्राणवान् पत्नी भी इतिहास होती है और उसका संयोगी दाम्पत्य स्वभाव भी प्रकट होता है। वह जीवन के लिए अनुकरणीय होकर भी जीवन से अनुप्राणित मान पड़ती है।

**कैकेयी**—कैकेयी की परिचय-सृष्टि साकेत की कथावस्तु में भी अमंगल की शुरुआत की के रूप में ही उपस्थित होती है। कहा में उसका स्वभाव अत्यन्त ही है। परन्तु साकेत में उसके मनोभावों का उद्घाटन नवीन रूप में उपस्थित किया गया है, वह अधिक मानवीय एवं मनोवैज्ञानिक ज्ञान पड़ता है। अतः साकेत की कथावस्तु को एक नवीन इतिहास के साधन करने में कैकेयी का स्वभाव कथावस्तु में महत्वपूर्ण हो उठा है।

उत्तम प्रथम कैकेयी एक स्नेहशील माता के रूप में इतिहास होती है। जहाँ एवं राघव के मध्य उसमें नेत्र-दृष्टि का उदय नहीं होता है। संभवतः द्वारा राम तथा सीता के विच्छेद विध्वंसन करते देख कर कैकेयी का संक्षेप यह कहना कि 'हे इतिहास' रस में विध्वंसन भोग। तू पर मैं ही कीच उड़ाती है भला तू अनुसार हमारे आपसी व्यवहार को क्या जाने<sup>१२२</sup> उसके हृदय की सरसता एवं स्नेहशीलता के परिचायक हैं। किन्तु संभवतः द्वारा रस में बोझा गया विध्वंसन उसके तारी-हृदय पर अपना जो घावक असर दिखाने लगता है और उससे उसकी मनस्थिति में जो परिवर्तन उपस्थित होता है वह मारी सुख है। 'जन्तु से सुख पर सन्नेह' वाली बात सीधे सीधे कर उसमें जाह-परिवर्तन होने लगता है और कैकेयी चाहे कुछ भी क्यों न हो चाहे इस अन्धकार को कभी भी सहन न करे वह निरन्तर करती हुई इस सन्नेह के प्रति कार के लिए उत्सर्ग हो उठती है क्योंकि वह स्वयं को स्वर्गीय निर्वाण नहीं मानती कि जो पुत्र का प्रतिशोध प्राप्त जाने।<sup>१२३</sup> अतः अतीव होकर कैकेयी देवी से दुर्गा का रूप प्राप्त कर लेती है।<sup>१२४</sup> प्रतिशोध एवं सीतिया बाह की भावना ही उसे वरदानों के विना 'विषय' पड़ाने के लिए साधारण कर लेती है।

राजा की मृत्यु का समाचार सुनकर कैकेयी की बड़ी आँखों का पट-सा जाना एवं निवृत्त वैधव्य-विकास पर उसका अपने आप से डरना<sup>१२५</sup> वहाँ एक और तारी सुख है वहीं दुर्गा और वह उसके पश्चात्त का ही परिचायक है। अतः द्वारा विरहवृत्त एवं लाम्बित होने पर कैकेयी का मातृ हृदय यह कह कर पुनः उठता है कि 'निश्चये' तू भी कैकेयी का स्नेह न जान पाया। हे अतः यह वही स्नेह है जो तुममें

भ्यास है और जो तुझे प्राप्त राजपद की भी छोड़ने के लिए तत्पर कर रहा है।<sup>१२६</sup> इस प्रकार कैकेयी अपने मातृत्व के प्रति भरत के प्रभाव का वर्णन करती दृष्टिगोचर होती है और उसकी इस विचारधारा के अन्तर्गत उसके मातृ भाव की गरिमा का आहत अभिमान दृष्टिगोचर हो उठता है। पुत्र का विरसकार ही कैकेयी के मातृ-परि वर्तन का कारण उपस्थित करता है और विनम्र में वह सिन्धु भी सोमुषी गंगा एवं यमुना के तुषार से आगूत विजु-नेछा सी बिसाई पड़ती है।<sup>१२७</sup> पहाड़ से पाप का राई भर अनुताप करने से रोकी जानेवाली कैकेयी की यह स्पष्ट बोधना कि 'मन्वरा दासी क्या कर सकती थी मेरा अपना मन ही मेरा बिस्वासी नहीं रहा'<sup>१२८</sup> उसके हार्दिक पश्चात्ताप को व्यक्त करती-सी जान पड़ती है। उसे नैसर्गिक का स्वयं पर बूका जाना स्वीकार है परन्तु वह भरत का मातृ-पद छोने लिए तैयार नहीं है।<sup>१२९</sup>

राम के समस्त प्रकट होनेवाले कैकेयी के मनोद्वार उसकी भगव्यथा के परिचायक हैं। कैकेयी का अपने अपराधों का स्वीकार करना रघुकुल की इस अमाविन रानी के व्यक्तित्व को छोटा बनाने के बचाव कुछ ऊपर ही उठाता है और वह एक साम की माई से बार मन्य हो उठती है। साकेत की चरित भूमि में अपने मनाइवायें एवं मनोभावों के अन्तर्गत प्रकट होनेवाला कैकेयी का स्वस्म उसके व्यक्तित्व को एक स्नेहसीमा माता पुत्र-हित-कामना से प्रतिछोब की भूति बनी एक दुर्लभ हृदय नारी एवं पुत्र-स्नेह को पुनः प्राप्त करने की दृष्टि से एक परिवृत हृदय माता के रूप में उपस्थित करता है। उसकी कूल्हा निर्मलता में बर्ष मावना कोमलता में एवं ह्रैवृत्ति विनम्रता में परिचित हो जाती है और उसके मृगमृ बोल उसके मातृ-हृदय की महिमा से सारे कन्यु को सम्पूर्ण कपट-व्यमहार को जो डालते हैं। संक्षेप में रघुकुल की इस अमा-यिन रानी की कठोर कड़ागी साकेत की चरित भूमि में अपने गुण-गुणों के कठोर स्वस्म को छोड़कर, श्रावक बन जाती है और इस श्रावकता का एकमात्र कारण उसका संवेदनशील भावुक स्रजन-तरल मातृ-हृदय है।

कौशल्या—साकेत की कथावस्तु में कौशल्या की चरित-सृष्टि राम-जननी के अनुकूल ही है। अपने उदात्त मातृ-हृदय के कारण साकेत की कथावस्तु में उसका स्थान गौण नहीं रहने पाया है। कौशल्या के व्यक्तित्व की सर्व प्रथम शक्त वेदावन में लगी हुई पवित्रता से पूर्ण मूर्तिमयी भक्तता-माता के रूप में दृष्टिगोचर होती है।<sup>१३</sup>

१२६ साकेत पृ० १६६।

१२६ वही पृ० २४६।

१२७ वही पृ० २४६।

१२७ वही पृ० २२।

१२८ वही पृ० २४७।

भरमन के मुख से निकलनेवाली निरुत्साह की भी सुवास समझता <sup>१३१</sup> एवम् राम के मुख से बगबात और भरत के राज्य करने की बात को भी हँसी मानते हुए, अपने धैर्य-परीक्षा <sup>१३२</sup> का कारण समझता उसके सरल हृदय स्वरूप को व्यक्त करता है। कैकेयी की नई नीति समझ कर उस पर कुछ भी आह्वान करते हुए मझभी बहन के राज्य लेने की बात <sup>१३३</sup> कौशल्या के सरल हृदय चरित्र स्वभाव की परिचायक है। राम की वनप्रमन की आज्ञा प्रदान करते हुए उसका मातृ-हृदय मजबूत हो उठता है। फिर भी कौशल्या राम की गौरव सेकर जाने एवम् गौरव सेकर लौट जाने की सलाह देती है। उसे इस विषय का कारण अपने मुहूर्त की कमी ही जान पड़ता है। <sup>१३४</sup>

दशरथ को धैर्य बधाते हुए, कौशल्या के भीर-धैर्य स्वरूप के दर्शन होते हैं। जो कुछ अविचिन बटित हो चुका था उसे अनुप-चरित्र को धन्य करनेवाला बता कर कौशल्या राजा की गौरव-वश से इस शोक को सहने की सलाह देती है। <sup>१३५</sup> राजा द्वारा वर मांगने को कहने पर कौशल्या का यह भावना कि 'कैसे ही चाहे जैसी हो पर मुझ जैसी सुत-अविद्या न हो' <sup>१३६</sup> उसकी महाभूता एवम् निष्कलुषता का परिचायक है। भरत के मिलने पर भी कौशल्या उसे मानु-कुल के निष्कलुष मयक की तरह बहान करती है और यही बताती है कि नाम चाहे मिल हो पर मुझे अपना राम मिल गया है। <sup>१३७</sup> कौशल्या का यह सरल सहृदय निष्कलुष मानु-स्वरूप ही उसके व्यक्तित्व की महाभूता का परिचायक है। मनोमार्थों के संतर्पित भी उसका यही मातृ-स्वरूप परिमण्डित होता है। वह सर्वत्र एक स्नेहमयी माता ही दृष्टिगोचर होती है।

सुमित्रा—साकेत की नवावधु में सुमित्रा का स्वान भवमन की माता के रूप में उपस्थित होता है। सुमित्रा सिद्धी सहाय्य बताती है। <sup>१३८</sup> उसकी बायीं में एक लक्ष्मी का बोध एवम् गरिमा निवास करती है। वह सत्तों की निम्ना-याचना नहीं करना चाहती। वह न तो परमाण प्राप्त करने के पक्ष में है और न अपना भाग त्यागने के पक्ष में। वह बीरों की अपनी है बस उसके भिये भिला मृत्यु सम है। <sup>१३९</sup> वह नहीं चाहती कि राम अभ्यास सहन करें। इस विद्या में लक्ष्मण की गौरवता की उसे अजिदी नहीं लगती किन्तु राम द्वारा वस्तुस्थिति पर प्रभाव डालने पर वह राम और लक्ष्मण दोनों को धैर्यपूर्वक सहज करने के साथ ही सिंह सहाय्य रहने की

१३१ साकेत पृ० ६५।

१३२ वही पृ० ६६।

१३३ वही पृ० ६६।

१३४ वही पृ० ६७।

१३५ वही पृ० ६६।

१३६ वही पृ० ६६।

१३७ वही पृ० २०४।

१३८ वही पृ० १००।

१३९ वही पृ० १०१।

धिसा देती है।<sup>१४५</sup> लक्ष्मण को भी राम का अनुसरण करने का आदेश उसके मनु-  
हृदय की महादृढ़ता का चोटक है। लक्ष्मण को शक्ति लगने का समाचार प्राप्त होने पर  
मुड़ोमुख होते सन्मुख को कौबल्या के स्नेह-पात्र से छुड़ाते हुए, सुमित्रा का बसे भी  
'अमर-समर मे सौवर की मति पाने' को कहना,<sup>१४६</sup> वास्तव में सुमित्रा के बीर भाव  
का ही परिचायक है। साकेत की शरित भूमि में सुमित्रा का व्यक्तित्व सर्वत्र एक बीर  
दात्री का व्यक्तित्व है और उही विचारधारा से अनाभी सुमन बोझ उठता एवम्  
बीरत्व ही शमकटा है। कुल मिसा कर उसका व्यक्तित्व लक्ष्मण-माता के अनुक्रम  
ही है।

मांडवी—साकेत की कथावस्तु में मांडवी की शरित-सृष्टि भरत-पत्नी के रूप  
में हुई है। कथावस्तु में उसका स्वान एक कर्षव्यभिष्ट पत्नी के रूप में उपस्थित होता  
है। वह भरत के त्याग की सम नायिनी है और उसका आचरण-व्यवहार उसे भरत-  
पत्नी के अनुस्यू ही सिख करता है। हाथों में चार चूड़ियाँ माथे पर सिमरी बिन्दु,  
विपाद-वक्ष में पैठा तपस्तेज<sup>१४७</sup> मांडवी के कठोर साधना रत स्वल्प का परिचायक  
है। अपने प्रभु के लिये राज मग्न से फमाहार सबाकर आना एवम् पति के दर्शन कर  
सौट जाना ही उसका नियम का कर्म है। मांडवी का जीवन उसकी कष्ट सहिष्णुता भरत  
के साथ होते सबाध से स्पष्ट हो उठती है। वह व्यवसायी बाठों में भी सार<sup>१४८</sup> का  
अनुमन करती है और उसका यह कथन कि 'हे नाथ यदि भरती पट जाती हम-दुम  
उसमें समा जाते तो किसी भूत में रह कर हमें कितना रस प्राप्त होता न हम किसी  
को आर्त देखते न यह शोक आँसु भरता स्वयं परस्पर भी न देखकर हम बस अंग-  
स्पर्श करते तो भी मैं उसे निज दाम्पत्य भाव का आदर्श मानती,<sup>१४९</sup> वहाँ उसके  
गारी-हृदय की पद्मान-प्रभुति का चोटक है, वहीं दूसरी ओर उसका यह कहना कि  
'वहाँ तुम होते दासी वही मुसी होती। किन्तु यहाँ मातृ भावना निराश्रित होकर रोना  
करती' क्योंकि सुख तो सभी लोग लेते हैं कुछ बीर ही सहते हैं,<sup>१५०</sup> उसकी  
महादृढ़ता का बीरता का कष्ट सहिष्णुता का परिस्तिमिज्य सक्त को सहने की शक्ति  
का ही परिचायक है। स्वधर्म की गई प्रतिष्ठा द्वारा सबके साथ वह स्वयं को भी बन्ध  
मानती-है। बेकर से बात करते समय विपाद के बीच भी उसके विमोह भाव के दर्शन  
हो उठते हैं।<sup>१५१</sup> शत्रुपक्ष के मुख से शूर्पणखा के समाचार विहित कर मांडवी का  
हंसते हुए यह कहना कि 'प्रथम पादका फिर यह शूर्पणखा गारी और अब किसी

१४० साकेत पृ० १०६।

१४१ वही पृ० ४२७।

१४२ वही पृ० ३६०।

१४३ वही पृ० ३६६।

१४४ वही पृ० ३६३।

१४५ वही पृ० ३६७।

१४६ वही पृ० ४००।

शिकामाली की भारी आने वाली है<sup>१४०</sup> उसके गारी-मुलम विनोद का ही परिचय देता है।

मांडवी में क्षान्त-धर्म का ओज भी है। हनुमान द्वारा समस्त समाचार विहित होने पर, भरत को उसका यह कहना कि 'हे आर्यपुत्र तुम नामी नर होकर भी कातर होते हो'<sup>१४५</sup> वहाँ उसके उत्साह प्रदीप्त करनेवाले गारी भाव का परिचामक है वहीं स्वामी को निश्चित मन से निज कर्तव्य करने की समाह देता और यह व्यक्त करना कि मुझे दुर्बल कम भी अब न डर सकेगा अपनों के संय मरण भी मुझे जीवन सम है<sup>१४३</sup> उसकी दृढ़ता एवम् अनाधी सुलभ-वीरत्व का परिचय देता है।

साकेत की चरित्र-भूमि में मांडवी का व्यष्टित्व भरत-माली के अनुकूल ही अपने वीर, पंथीर स्वस्व को व्यक्त करता है। उसकी मनोवेचना उसके मनोद्धार, मनोमात्रों के अंतर्गत व्यक्त होनेवाला उसका स्वस्व सभी उसे एक आदर्श गारी ही घोषित करते हैं। उसका इस कथन का अंतर्गत कि 'मैं इस घर में इसमें ही सतोप बैसती हूँ कि जीतों को पुन अवश्य करके सारे शेष अपने ही चिर निचे जाँचें'<sup>१४४</sup> उसका जीवन-दर्शन परिलक्षित हो उठता है एवम् मांडवी की यह उदात्त विचारधारा उसके व्यक्तित्व को जिस परिमा से मंडित करती है, वह अपनी उपमा आप ही बन जाता है।

ध्रुव कीर्ति—साकेत की कथावस्तु में ध्रुवकीर्ति के चरित्र की अवतरणा ध्रुव की पत्नी के रूप में हुई है। यद्यपि साकेत की कथावस्तु में उसके चरित्र की एक सन्नत मात्र ही दृष्टिगोचर होती है किन्तु यह अलक्ष्य निश्चित कौचक है जिसके शक्ति प्रकाश में भी उसका अनाधी-मुलम स्वस्व उद्भावित हो उठता है। स्वामी को भरत का अनुसरण करने के लिये वह घर बीबी की पति में ही अपनी पति माननेवाली ससकी पति<sup>१४५</sup> उसके अनाधी-मुलम स्वस्व की परिचामक है। वह ध्रुव के शब्दों में आगामुल्ल अनाधिनी ही सिद्ध होती है। साकेत की चरित्र भूमि में ध्रुव कीर्ति के चरित्र का केवल एकमात्र पहलू उसका अनाधी-गारी-वैप प्रकट हुआ है तथा मनोमात्रों के अंतर्गत भी उसके स्वस्व की व्यक्तता यहाँ ही पाई है। फिर भी अपनी एकांगिता में भी वह धीन-गुण-सम्पन्ना है।

कामायनी की दृष्टि—कामायनी की कथावस्तु में दृष्टा की चरित्र-कृति एक बुद्धि वादिनी के रूप में उपस्थित होती है। जीवन-निरीप के अवधार में भटकते हुए

१४७ साकेत पृ० ४१२।

१४० यही पृ० ४०७।

१४८ यही पृ० ४२०।

१४१ यही पृ० ४२६।

१४९ यही पृ० ४२०।

मनु के लिये वह प्रेरणामयी बनकर आती है और उसका बुद्धिवादी स्वस्व कामायनी की कथा को एक नया मोड़, एक नवीन गति प्रदान करता है। अतः कामायनी की कथावस्तु इका द्वारा भी अनुप्राणित हुई है और इसीलिये कथा में इका का महत्वपूर्ण स्थान है।

कामायनी के 'रम्य पलक पर नवल चित्र-सी प्रकट होनेवासी यह सुन्दर नामा गयन महोत्सव की प्रति एवम् अम्भान नसिन की नव भासा-सी दृष्टिगोचर होती है।'<sup>१४२</sup> उसकी चर्कबाज-सी बिलारी असकों सबि-सह सहस्य स्पष्ट मास अनुपम विराग डालते पद्म-मसाध अपक के समान दृग विपुलात्मक विवली करमों की तासमयी गति एवम् बसस्वस पर एकत्र ससृति के सब विज्ञान-ज्ञान'<sup>१४३</sup> उसके बुद्धिवादी स्वस्व के परिचामक हैं। यह हेमवती छाया आलोक-मयी स्मित चेतनता बन कर आती है और अपने प्रतिमा प्रसन्न मुख से क्लेश सहते मनु का स्वागत करती है।'<sup>१४४</sup> वह निर्बाध गति की समर्पक है क्योंकि उसके मतानुसार जिसे बसने की शोक रहती है, उसको कम कोई रोक सकता है।'<sup>१४५</sup> वह प्रेरणामयी बन कर अस्मिन् ऐश्वर्यमयी परम रमणीय प्रकृति का पटल खोलने के लिये मनु को परिकर कसकर कर्मबीज होने की सप्ताह देती है।'<sup>१४६</sup> वह जड़ता को चेतन्य करने के लिये उपाय के नाम पर विज्ञान का सहज सामन बठाती है और इस प्रकार उसका बुद्धिवादी स्वस्व उसकी व्यक्तिगत विशिष्टता का परिचामक बन कर उसके व्यक्तित्व को एक बौद्धिक गरिमा प्रदान करता है।

इका उधार है, सरल हृदया है किन्तु बुद्धि द्वारा अनुसाधित है। प्रजा में खोम उत्पन्न होने पर वह सङ्कुचित जान पड़ती है। वह निरङ्कुशता की समर्पक नहीं है और नियामक के लिये भी नियमों का पासग आवश्यक समझती है।'<sup>१४७</sup> वसोबता में अपना प्राप्य बोलनेवाले मनु को सावधान करते हुए, वह स्वयं को 'भूमाकासिनी'<sup>१४८</sup> बठाती है। मनु द्वारा 'मायाविनी' एवम् 'भूतिमति अभिजाप' घोषित किये जाने पर उसका अपने उपकारों को गिनाता'<sup>१४९</sup> वहाँ एक ओर उसे 'ह्रीं में ह्रीं न मिसान वाली' स्पष्टवादिनी के रूप में प्रकट करता है, वहीं दूसरी ओर कृतघ्नता के प्रति मुकुरित होनेवाली उसकी स्वामाधिक उसबला भी दृष्टिगोचर होती है। मनु द्वारा

१४२ कामायनी पृ० १६८।

१४३ वही पृ० १६८।

१४४ वही पृ० १६९।

१४५ वही पृ० १७०।

१४६ वही पृ० १७१।

१४७. वही पृ० १८१।

१४८ वही पृ० १८२।

१४९ वही पृ० १८६, १७।

सुजायों से 'यह रोक सिये जान पर उसकी निस्सहाय बीन हृदि' <sup>१९१</sup> उसकी गारी मुक्तम बुर्बलदा की परिचायक है। भीषण जन-संहार होते देख कर उसका रज रोकने की बात कहना एवम् सबको जीने देकर मनु को सुख से जीने के लिये आर्तक प्रदर्शन से रोकना <sup>१९२</sup> भी उसकी उबार मनोवृत्ति का चोखक है। अपनी बहिली रानी के लिये प्रजा का उद्य हो उठना भी उसकी सोकप्रियता का परिचायक है। बुद्धिबादिनी होकर भी वह उद्य नहीं है। जनपद-कल्याणी एवम् सारस्वत प्रवेश की रानी होकर भी वह निरकुशता की समर्पक नहीं है। उसका गारी-हृदय उसे सर्वत्र अमानवीय अदृष्टिम्बु एवम् निर्मम होने से रोकता है।

सुवर्ष के परचात् इड़ा ग्नामि से भरकर बीटी बातों पर विचार करने लगती है। मनु का स्नेह उसके लिये अगम्य नहीं रह पाता है। <sup>१९३</sup> जो उपकारी ना नहीं अपराधी बन जाता है और इड़ा जिसे बड़ बेने बँठती है उसी की रखवामी करने लगती है। यह उत्तमनवासी विकट पहेली <sup>१९४</sup> उसके अनूत जीवन की परिचायक है। उसके गारी-हृदय में मुचा-सिम्बु सहरे से उठता है। बाहुय ज्यमन बस को कल्लन-सा रग देती है, उस तरलाम्नि में मनु-पियस छीतलता की सृष्टि करने लगता है और इस प्रकार क्षमा तथा प्रतिशोध दोनों की माया नाचने लगती है। <sup>१९५</sup> स्नेहूरित्त जीवन इड़ा को श्रुति कर देता है और अन्धा के समस्त इड़ा मसिन छवि की उस रेखा-सी हृदिनोहर होती है उसे यह-यस्त दमिलेला पर विपार की विप-रेखा हो। <sup>१९६</sup> अन्धा के लक्ष्यों में इड़ा 'जीवन की अंचानुरक्ति' एवम् 'उद्य बित्त अचला दक्ति' <sup>१९७</sup> है क्योंकि वह सिर नहीं रहती है उसने हृदय नहीं पाया है और इसीलिये वेदन का मुक्तमय अपनापन सोकर उसमें आसोक का उद्य नहीं हो पाता है। <sup>१९८</sup> इस ठर्ममयी के दृष्टि दुस्तार पर विस्वास कर जब अन्धा अपने पुत्र मानव को छीप देती है तो अन्धा का प्रबन स्नेह-भाष इड़ा को चरम-भूमि लेने के लिये अन्धा के चरमों में मग कर देता है। <sup>१९९</sup>

कामायनी की चरित्र-भूमि में एक प्रतीक पात्र की भूमिका में रहने के कारण इड़ा के गारी-स्वरूप एवम् व्यक्तित्व की व्याख्या पूरी तरह प्रकट नहीं होने पाई है। फिर भी बुद्धिबादिनी होते हुए भी इड़ा अपने गारी-रूप में कवच हृदय विनम्र तथा सामानवी दृष्टिगोचर होती है और वैरिष बसना संख्या-सा उसका गीरव स्वरूप जिस

१९० कामायनी पृ० १२७।

१९५ वही पृ० २३६।

१९१ वही पृ० २०१।

१९६ वही पृ० २३७।

१९२ वही पृ० २०५।

१९७ वही पृ० २४१।

१९३ वही पृ० २११।

१९८ वही पृ० २४४।

१९४ वही पृ० २०७।



पह का राही बनता है, वह निस्संदिग्ध गारी-मुमन है। उसका समिपित स्वरूप अपने आप में विसर्जन होते हुए भी व्यतिरिक्तहीन नहीं है।

### नूरजहाँ की उपनायिकाएँ

1. अनारकली—‘नूरजहाँ’ की कथावस्तु में अनारकली की भरिज-सृष्टि एक प्रासंगिक प्रेम-कथा के रूप में प्रदर्शित की गई है। मूल कथा के साथ उसका मिलेप सम्बन्ध नहीं है। महाकाव्यावर्तगत आलेखनी प्रासंगिक कथा के रूप में ही नूरजहाँ में अनारकली की भरिज-सृष्टि हुई है। अनारकली एक नरेंद्र-कलाकुसला मर्त्यही है। वह परिपों की रानी-सी सुन्दरी है। उसकी देह सोंभे में डली-सी जान पड़ती है। उसकी विगूठा-निमा समाप्त हो चुकी है तथा उसके जीवन का दिनकर लम आया है।<sup>१६६</sup> वह सलीम पर वासक्त है और अपनी कला-कुसलता से सलीम को आकर्षित कर, सलीम के गले का हार पहनते हुए, वह उसके गले का हार बन जाती है।<sup>१७</sup> अनारकली के प्रेमालाप के मध्य अकबर व्यवधान बनकर उपस्थित होता है अनारकली बन्दी-गृह में बान बी जाती है और ताही खयनाथरों में विलास करनेवासी इस रमणी का प्रेम बन्दी-गृह की बीचारों के मध्य भी उस बाँकी मूरत की छाँकी उसके मानस के आया-वट पर ध्वजित करता है जिसने उसका हाव पकड़ा है।<sup>१७१</sup>

2. अनारकली का प्रेम निस्वार्थ भावना से अनुप्राणित है। वह संकट या प्रसो-धनों के मध्य लक्ष्य मस्त्वक नहीं होता। उसका प्रेम पुत्रसी छिग्ने के पूर्व सलीम के अंतिम दर्शन का प्यासा रहता है। फिर निद्रा में सोने के पूर्व वह अपने बेचारे नयनों को प्रिय-दर्शन से वृत्त करने की आकांक्षा रखती है और इसीलिये वह अपने प्यारे-प्यारे भावों की सपन बिनाते हुए हरे-हरे धारों तथा निज प्रण के आन की दुहाई देकर सुखे में अटकी तरंगी को जल में डकेलने के लिये प्रिय से अंतिम दर्शन दे जाने की प्रार्थना करती है।<sup>१७२</sup> अकबर द्वारा ‘राजमुकुट की मणि’ बनाने का प्रसोन्नन दिये जाने और प्रणय-भाषना करने पर वह उसका विरस्कार करते हुए कहती है कि ‘तु गारी के हृदय की समझ नहीं पाया है। उस पर अल्पाधारी का धूल-बल बिजब नहीं प्राप्त कर सकता है। इस क्रोमल लज के भीतर हृदय-कोट का संभव है जिसमें विश्व मुटोरों का वल कभी घुस नहीं पाता है।’<sup>१७३</sup> अतया ही नहीं वह स्पष्ट शब्दों में कहती है कि ‘तू राती नहीं बनना चाहती मुझे मिथारिण ही रहने दो। मैं अपने प्रियलभ

१६६ नूरजहाँ पृ० २३।

१७० वही पृ० २५।

१७१ वही पृ० २७।

१७२ वही पृ० २०।

१७३ वही पृ० २२।

की निश्चित माला जपा करूंगी। उस मनमोहन के मन ही में अब मेरा घर है। यदि तुम प्राण-बंध भी देना चाहो तो मेरा सिर हाथिर है।<sup>१००</sup> अनारकली की इस बिचारभाष से उसके निस्वार्थ एवम् हृदय प्रेम का पता चलता है। नर्तकी होकर भी वह अपने प्रेम का सौदा सपना से नहीं सिर बेकर करना चाहती है। बख्शर का राज्य बँसब भी उसके प्रेम के समक्ष तुच्छ साबित होता है।

निष्कासन के पश्चात् अनारकली प्रेमवियोगिन होकर भटकती रहती है। अपने माय्य पर रोड़े हुए भी वह किसी को अपने सम रोम देना नहीं चाहती और स्वयं के बँसब माय्य-क्षेत्र में मोतिया के बीज बोती है।<sup>१०१</sup> उसका प्रेम अपने प्रियतम को धर्म-सफ़ट में डालकर निप का चूट नहीं पीना चाहता और इसीलिए वह सलीम से कहती है कि मेरी पूजा तुम्हारे अमिराम वसन पाकर पूरी हुई। अब तुम बाँकर राज्य करो, बाग़्याह को रख मत करो। इस बाँसी के छाव अपने जीवन को नष्ट मत करो। मैंने तुम्हारा जो प्यार पाया केवल वही जीवन का सार है। सेप सब क्षणमंदुर है, सच्चा प्यार ही अमर है।<sup>१०२</sup> इसी सच्चे प्यार पर वह प्राणोत्सर्ग कर देती है और सलीम उसकी समाधि पर, बाँसू से मीने फूल बड़ा कर बिलखता रह जाता है।<sup>१०३</sup>

मुरजहाँ की चरित्र भूमि में अनारकली का चरित्रांकन एक प्रेममयी उत्सर्गमयी नारी के रूप में हुआ है। नर्तकी होकर भी अपने प्रेम की पवित्रता से वह दुस्त-सतनाओं से आगे बढ़ जाती है। उसका निस्वार्थ प्रेम उसके व्यक्तित्व का निहार है। अपने प्रिय के 'सुखमय जीवन-वट में काटा नीर' न मिलाये हुए, अनार का जीवनोत्सर्ग कर देना प्रेमियों के इतिहास में अद्वितीय न होकर भी अनुपम अवश्य है और उसका यह स्वाभिमय स्नेह उसे हिन्दी-महाकाव्यों की प्रेमिकाओं की प्रथम श्रेणी में लाकर बढ़ा कर बठा है एवम् उसके प्रेममय व्यक्तित्व को कीर्ण स्थान प्रदान करता है।

जमीना—मुरजहाँ की कथावस्तु में जमीना की चरित्र-सृष्टि मुरजहाँ के दुर्भाग्य के रूप में उपस्थित होती है। कथावस्तु में उसका स्थान एक बलनायिका के रूप में इतिमोचर होता है। जमीना को अपने रूप कुछ एवम् कूट कोयल पर धर्म है। वह अपने सौत्रय एवम् साक्ष्य को किसी से कम नहीं समझती। वह अति उत्तम भुम में उत्पन्न बगीर की बटी है तथा वह अपने जमीना नाम की सार्पक्षता पानी में क्षाम भयाने से ही समझती है।<sup>१०४</sup> वह सलीम पर अनुरक्त है और मेहर को सलीम के साथ कुछ जों में छिप-छिप कर मने उड़ाते देख कर उसके हृदय की शह जाहूत हो उठती

१०४ मुरजहाँ पृ० ३३।

१०७ वही पृ० ४३।

१०५ वही पृ ४१।

१०८ वही पृ० ३२।

१०६ वही पृ ४१।

है। जमीना को इस बात का पुमान है कि उसने कितनी ही बरसातें देखी हैं, यह कभी नकदी नहीं होर है। यह मेहर तो क्या समीम को भी कुटियों में उड़ा सकती है। यह स्वयं को सीधों के संग सीधी एबम् टेढ़ों के संग महा कुटिल समझती है। यह वा कर संभ सपाती है फिर भी पकड़ी नहीं जाती।<sup>१५०</sup> अतः अपने चरित्र के अनुक्रम 'समसार जाल के जाट पर मेहर को उतारने के लिए' यह बावसाह के काम में तमक-मिर्ब लमाकर, छाहवासे एबम् मेहर के पुत प्रेम का हास व्यक्त कर देती है।<sup>१५१</sup> मेहर का कंटक दूर कर जमीना संतुष्ट होती है और एक सीर ही में बड़ा सिकार बिरा सेने पर,<sup>१५२</sup> अपनी सफलता पर फूसी नहीं समाती। उसका यह संतोष एबम् बाबुरी जहाँ स्वाभाविक है वहीं ये उसके ईर्ष्या स्वभाव के परिचायक भी हैं।

जमीना को इस बात का खेद है कि मेहर ने समीम पर ऐसा जादू किया है कि - उसके प्र-कमान के पंचबाण भी उस पर्यंत को बिधा नहीं पाते हैं और इसीलिए समीम को रंग पर लाने के लिए वह धरारने लगती है।<sup>१५३</sup> समीम के आसियन से अपने दिल की उपन बुझाने के लिए वह मसी बिधि सम्मोहन सीख कर उसे बस में लाने का निश्चय करती है।<sup>१५४</sup> समीम के समक्ष मेहर की हृष्यहीनता व्यक्त कर एबम् स्वयं को समीम के लिए दिल-ओ-आग से साब बार भरने को उत्पर बता कर जब जमीना अपने प्रेम का सिकका जमाना चाहती है तो समीम द्वारा समसार से जमीना का घिर उतारने का आदेश उसके भीर हृदय की पिड़गिराहट बन जाता है और वह जीवनभर प्रेम की बात न उठाने की बात कहती दृष्टिोत्तर होती है।<sup>१५५</sup> जमीना की कपट बाबुरी असफल हो जाती है और समीम उसकी अतृप्त वासना की पूर्ति के हेतु उसे कुतुबुरीन को सीप देता है। जमीना इसमें भी अपने माग्य का सिंघार चमकते देखती है।<sup>१५६</sup> वह कभी न समझि जाने जाति खाकर भी गुस्ते की पी जानेवाले सीहर को पाकर गुसखरें उड़ाने के लिये अपना उस्तु सीसा करने के लिये उसे बुलबुल बनाना चाहती है तथा अपने अनुभव की तुहाई देकर वह मुषदियों को डूकों से ब्याह करने की सलाह महज इसलिये देती है कि सकेद-स्याह करने पर भी कोई पूछने वाला न हो।<sup>१५७</sup> यह विचारवादा जमीना की तम मिर्स्जवता की परिचायक है।

मुरबई की चरित्र-भूमि में जमीना का व्यक्तित्व एक विकार-ग्रस्ता वाचना-अर्थ गारी का व्यक्तित्व है। उसका स्व-वर्ण उसकी दाह, उसकी मिर्स्जवता उसका

१५६ मुरबई पृ० ३६।

१५७ वही पृ० ३४।

१५८ वही पृ० ७७।

१५९ वही पृ० ७५।

१५३ वही पृ० ७८।

१५४ वही पृ० १०३।

१५५ वही पृ० १०६।

१५६ वही पृ० १७।

दूट कौशल-सभी उसकी कामाग्र प्रवृत्ति के विकार के रूप में प्रकट होते हैं और हिन्दी महाकाव्यों की चरित्रनायिकाओं में उसकी ओर का बुरा नारी-पात्र खोजने पर भी प्राप्त नहीं होता। इससे यथार्थ में यह कहा जा सकता है कि नारी की मुखरित निरन्तरता का ही बुरा नाम अभीसा है।

बेगम—‘नूरजहाँ की कथावस्तु में बेगम की चरित्र-सृष्टि नूरजहाँ की माता एवम् गयास की मनस्विनी पत्नी के रूप में उपस्थित होती है। उसकी प्रथम दृष्टक बुद्धि वृद्धा-सा दृष्टि लेकर मुसद्दी हुद्दी-सी<sup>१८८</sup> दृष्टिगोचर होती है। पति के मुख से रपरेलियों की बात सुनकर उसे आश्चर्य समझा है क्योंकि हाथ में कुछ भी होय न रहने से वह आँखों में राख काटा करती है और चिन्ता सदैव उसे बेदे रखती है।<sup>१८९</sup> वह माय्य-सिंघारों के बिपड़ जाने पर, पति को अपनी के बीच पानी में डोक की सलाह देते हुए, विदेश जमने को प्रेरित करती है। उसका स्वायत्तमायी हृदय कण मीन से कभी बाट सेना बन्धु समझता है।<sup>१९०</sup> पति द्वारा प्रेष एवम् उसके आनन्दोन्माद की बात सुनकर एवम् विदेश प्रस्थान के लिये उसे आना-जानी करते पाकर वह तड़क उठती है उसके मन का विस्कार बाधित हो उठता है। वह खरी मुनाना चाहती है पर ऊँचा-नीचा सोचकर उसके घने का घर आना एवम् बोल न छूटना<sup>१९१</sup> वहाँ एक ओर उसकी व्यापक परिचायक है, वहीं दूसरी ओर वह उसकी बुद्धिमत्ता एवम् सहिष्णुता का भी प्रतीक है।

बेगम को इस समार-समर प्रायण में मग्न होकर हाथ-पर-हाथ बरकर, निराश हो बैठे रहना उचित नहीं जान पड़ता। वह जय बेग में जाकर रीज के साथ माय्य परखने<sup>१९२</sup> की सोचती है। वेस छोड़ते समय उसकी आँखें सर-सर बरस पड़ती हैं मार्ग की कठिनाइयों के कारण बेगम का मुँह उजड़ जाता है प्रसव-पीड़ा का सामना करना पड़ता है और कष्टिने को धूलता बलक सुदूर कन्वा को भी रनाम कर अपने मातृ-हृदय पर परवर रख कर आने बड़ जाना पड़ता है। इस प्रकार नूरजहाँ की चरित्र-भूमि में बेगम एक प्रेरणाप्रदायी बुद्धिमत्ती कष्ट-अहिम्न नारी साबित होती है।<sup>१</sup> उसके मातृ-हृदय का आत्मस्थ-आव बिबित न होने का कारण वह एक मनस्विनी पत्नी के रूप में ही हमारे सामने आती है और गयास के समस्त व्यक्त लिये मन उसके प्रेरक दर्शक उसकी व्यक्तित्व को एक प्रेरणाप्रदायी नारी का व्यक्तित्व प्रदान करते हैं।

क्रिडाप की माया—मिर्जाप की कथावस्तु में मराठनी माया की चरित्र-भूमि

१८८. नूरजहाँ पृ० १।

१८९. वही पृ० ६।

१८९. वही पृ० ४।

१९०. वही पृ० ७।

१९१. वही पृ० १।

सिद्धार्थ की माता के रूप में उपस्थित होती है। कथा में उसका महत्व सिद्धार्थ के अतीतिक ब्रह्म की धारणा को सिद्ध करने के लिये ही प्रस्तुत किया गया है।

सर्वप्रथम वह राजा के समक्ष अपना अद्भुत स्वप्न कहते दृष्टिगोचर होती है। स्वप्न-कथन के समय महिषी का 'विपुल विस्मय संयुत भाव' <sup>१६२</sup> प्रकट होता है। सर्वप्रथमिका द्वारा 'दोहड़' कहने पर माया का वृत्तहीन सूखी रोटी की इच्छा प्रकट करना, <sup>१६३</sup> जहाँ मारी सुख है वहीं किसी बरछा को बुसा कर कबलाई होकर रोने बिजबने सिर मुनने की कामना करना संसार-सार-सिक्तागत वस-सा प्रतिमासित होना <sup>१६४</sup> सर्वस्व पुत्र की माँ की विचारधारा पर पड़नेवाले प्रभाव का पूर्ण भाव-सा देता दृष्टिगोचर होता है। माया की बूझरी मानसा रज्जु, बिन बनहीन दुखी को बुलाकर उनको उसके समक्ष ही पट-बल्ल देने की है ताकि उनका बासीप प्राप्त हो सके। <sup>१६५</sup> अनुते पुत्र को गर्भ में धारण करने के कारण माया के भ्रम में उद्यानवसन की अनुठी इच्छा अचानक उठती है। <sup>१६६</sup> वहीं वह सिद्धार्थ को भ्रम देती है।

सिद्धार्थ के बाल्यकाल-कथन के अंतर्गत माया के मातृत्व का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, उसके अनुसार कुमार का उज्ज्वलता फिर मोह में गिरता विह्वलता, किस कारियां करना एवम् कुमार-सहज-वचन जंग बननी-दृग-कंध को सुख लपटें हैं। <sup>१६७</sup> कहीं वह गीत पुनगुनाने हुए माँ की बिज बौचने में मग्न दृष्टिगोचर होती है। कभी कुमार के विपुल भ्रम भ्रमकारती हुई, कभी स्वपट हैं तन की रज पोंछते हुए उसका सर्व प्रयत्नवती बननी स्वरूप परिलक्षित होता है। <sup>१६८</sup>

सिद्धार्थ की चरित धूमि में माया का व्यक्तित्व एक माता के रूप में दृष्टिगोचर होता है किन्तु उसके मातृ-हृदय की सहज व्यंजना का विषय में अभाव-सा है। मातृ-स्त्रिया के कुछ कार्य-कलापों को गिना देने मात्र से उसका व्यक्तित्व प्राणवान् एवम् सहज नहीं हो पाया है और न मनोभावों के अंतर्गत ही उसके मातृ-स्वरूप की वास्तविक छाँदी प्रस्तुत की जा सकी है।

### साकेत-सन्त की उपनायिकाएँ

कैकई—साकेत-संत की कथावस्तु में कैकई की चरित्र-वृद्धि मरठ-माता के रूप में उपस्थित हुई है। अपने बरों द्वारा साकेत की छाँटी उज्ज्वल-भुवन का कारण

११२ सिद्धार्थ पृ० ८।

११३ वही पृ० १६।

११४ वही पृ० १६।

११५ वही पृ० १७।

११६ वही पृ० १८।

११७ वही पृ० ३५।

११८ वही पृ० ४१।

कैकई ही है। साकेत-संत की कथा को कैकई के माध्यम द्वारा ही गति प्राप्त हुई है। अतः कथा में उसका स्थान महत्वपूर्ण है। साकेत-संत की कथावस्तु में उसकी स्थिति उस श्यामल पृष्ठ-भूमि के समान है जिसके कारण गरम गरम ज्वालन स्वल्प साकेत के संत के रूप में प्रकाश में आया है।

कैकई के चरित्र की प्रथम झलक एक स्नेहमयी माता के रूप में ही मिलती है क्योंकि भरत के आगमन के समाचार प्राप्त कर कैकई रानी आरती उतारने एवम् अर्घ्य का पानी देने का पहुँचती है और पुत्र को हँस कर सिपटाते हुए प्रेम से बोझती है।<sup>११४</sup> पर अपने कुचक्र के प्रकाश में आते ही वह भरत के शत्रुओं में 'हाकिन' हो उठती है जिसने अन्ध पर दुर्धन मूठ मारी है।<sup>११५</sup> वह कठोर समावस्था की ओर राखती हो उठती है।<sup>११६</sup> जिस माता के लिए राम भरत से भी बढ़कर वे उस वास्तव्यमयी सी माता में भरत को पूर्ण कुटुम्बता की भावति<sup>११७</sup> बिकाई देती है और इस प्रकार कैकई एक कुटुम्ब के रूप में उपस्थित होती है। किन्तु कैकई का भरत से यह कहना कि 'तेरे हित ही मैंने अपने हृदय को कठोर बनाकर राम को बल भेजा है और तेरे हित के लिए ही मैंने कलकूती मारी एवम् महा हृत्पारी समझी गई है'<sup>११८</sup> उसकी पुनः-हित-कामना का ही परिचय देता है और उसका यह स्वार्थी स्वल्प लोकानुकम्प है क्योंकि कैकई के ही शब्दों में 'जग भ समी अपना स्वार्थ छोड़ते जाये है और मैंने भी उसी पथ पर चल कर बर पाये है।'<sup>११९</sup>

कैकई पुत्र को अपने काम से असंतुष्ट जानकर पीड़ा का अनुभव करती है और उसके नाम परिचित होने लगते हैं। पुत्र द्वारा 'मूर्खी मारी' की संज्ञा प्राप्त कर एवम् विषय भावना के समाव का कारण मंदरा जैसी मंजारी का होना जानकर,<sup>१२०</sup> कैकई मंदरा को कटी काई के समान त्याग कर बेकाब खड़ी हो जाती है।<sup>१२१</sup> मंत्र-वागार में भरत के हृदय निदम्य को सुनने के पश्चात् वह मूर्खिता-सी बेहोश हो जाती है।<sup>१२२</sup> अपने कुटुम्बों के परिहार की सोचकर वह सर्व प्रथम मुनिराज के महा ब्रह्मण्य को कुम्भीजित करवाने के लिये पहुँचती है। अकस्मिक के कारणों पर गिरते समय उसके नेत्रों से बहनेवाली अश्रु-बारण विचित्रियाँ एवम् स्पष्ट बाणी का सुन पर न आना,<sup>१२३</sup> उसके हार्दिक पश्चात्ताप की व्यक्त करता है। मुनि-आश्रम से निराश

१२३. साकेत-संत ३। ६।

२००. वही पृ० ३। २२।

२०१. वही पृ० ३। २८।

२०२. वही पृ० ३। २८।

२०३. वही पृ० ३। ३३।

२०४. वही पृ० ३। ३४।

२०५. वही पृ० ३। ३६।

२०६. वही पृ० ३। ४४।

२०७. वही पृ० ३। ४६।

२०८. वही पृ० ६। ८, १६।

सौटने पर वह दशरथ के शयन के सामने सती होने का प्रयत्न करती है। वह अपने व्यामस्य प्राणों को रक्षना नहीं चाहती।<sup>२०६</sup> भरत द्वारा रोके जाने पर और पुनः के मुख से यह सुनकर कि 'हूँ आज तुमसे अन्य माता'<sup>२०७</sup> कहेई सती होने का निश्चय त्याग देती है।

वन में राम से मिलने पर उसकी आँखों से बहती सर-सर बधुबारा अमरदल कच्छ सिंसकिमा एवम् अपनी ऊष्मा में उसका अपन आप जस जाना<sup>२०८</sup> भी उसके हार्दिक पश्चात्ताप का परिणाम है। राम के मुख से एक बात भी सुन कर बन्धु होने की उसकी कामना<sup>२०९</sup> भी उसके हृदय-परिवर्तन की परिचायक है। राम को बुझा कर सबुद्ध उसका आपस सौट बनने का आग्रह करना एवम् न बनने पर द्वार पर बरमा देने की बात कहेना<sup>२१०</sup> उसके माद-परिवर्तन का साक्षी है। राम को सौटने में असफल होने पर कहेई द्वारा पश्चिमी नाका साधने की बधाबकारी लेना<sup>२११</sup> इस बात का परिचायक है कि वह किसी भी प्रकार से अपने पाप का प्रायश्चित्त कर स्वयं को निर्मल बनाता चाहती है। भरत द्वारा नर के जिस परिताप को बड़ा तप माना गया है और जिससे नर का पाप पुण्य बनता है<sup>२१२</sup> उसी पुण्य को कहेई अपने हार्दिक परिताप द्वारा प्राप्त करते दृष्टिगोचर होती है। उसके प्रत्येक माद-परिवर्तन पर परिताप की झुहर है।

साकेत-संत की चरित-भूमि में कहेई का व्यक्तित्व एक स्नेहशील माता कुटुम्ब परिवर्ता नायी एवम् सुदृढव्रत साधिका का व्यक्तित्व है। उसने अपनी कसब-कसिमा को अपने बन्धुओं से होने का प्रयत्न किया है और उसकी भरत-वर्तना के पश्चात् की प्रत्येक चेष्टा मूर्च्छना सिंसकिमा एवम् पश्चिमी नाका साधने के धाम निश्चय तक की चेष्टा बलक का परिहार करती दृष्टिगोचर होती है। बोपी होकर भी दुष्ट न बने रहने में ही उसके चरित की महानता है।

कौशल्या—साकेत-संत की कथावस्तु में कौशल्या का चरित्रांकन 'बड़ी माता' के रूप में ही हुआ है पर कथावस्तु में उसका स्वान गीत वर्णान् अस्तित्व संकेत मात्र है। कौशल्या के चरित्र की दृष्टि साकेत-संत में भी परम्परागत रूप में ही उपस्थित होती है। भरत द्वारा पिता एवम् राम के बारे में पूछे जाने पर वह काम की कुटिम बातों को दुर्जय<sup>२१३</sup> बताती दृष्टिगोचर होती है। भरत के हार्दिक परिताप को सुनकर

२०८. साकेत-संत ६। ४४।

२१०. वही पृ० ६। ५०।

२११. वही पृ० ११। ४३।

२१२. वही पृ० ११। ४५।

२१३. वही पृ० १३। १७।

२१४. वही पृ० १३। ७५।

२१५. वही पृ० ६। ५०।

२१६. वही पृ० ३। ४१।

कौसल्या कस्याभी कस्याई हो उठती है।<sup>११०</sup> भरत को अपनी ओर खींच कर गोद में लेकर, हृदय से मिपटाते हुए कौसल्या का यह कथन कि तुम को पाकर मैंने पुनः राम को पाया है। तुम अश्व-निर्मल-सीमकोप एवम् निष्कर्मक हो तुम्हारी वय हो<sup>१११</sup> उसके निष्कपट उच्चार मातृ हृदय का चोटक है। मंचरा के पिटने के समाचार प्राप्त कर उसके भाव हेतु, भरत को दासी का कस्याप करने के सिमे मेवना<sup>११२</sup> कौसल्या के उच्चार स्वभाव का परिचायक है। कौसल्या के मातृ हृदय के स्नेह की एक और झलक राम का सिर सूंघते<sup>११३</sup> समय मिलती है। इस प्रकार साकेत-संत की चरित्र-भूमि में अपनी रेखानुवृत्ति में भी कौसल्या के मातृ-हृदय की सगलता एवम् निष्कपट स्नेहशीलता दृष्टिगोचर हो जाती है।

सीता—साकेत-संत की कथावस्तु में सीता की चरित्र-सृष्टि नाम मात्र को उपस्थित की गई है। सीता की सर्वप्रथम झलक भरत-मिसाप के समय कुटिया की प्रभा<sup>११४</sup> के रूप में दृष्टिगोचर होती है। माखीबांध प्राप्त कर एवम् उन्हें सानुकूल मल कर भरत की व्यवस्थाओं का भाग जाना<sup>११५</sup> इस बात का परिचायक है कि सीता का व्यक्तित्व उस गारी-सुलभ कपट व्यवहार से मुक्त है जो कपट व्यवहार गारी हृदय में अहित करनेवालों के प्रति स्वामाधिक रूप से बाधित हो उठता है। यह 'सानुकूलता' सीता के निर्विकार स्वस्व की चोटक है। बालीलाप आते 'जामा' की रोक कर सीता का स्वाधिक जलपान की बात उठाना<sup>११६</sup> गारी की उस जातिमय स्वामाधिक प्रवृत्ति का परिचायक है जो छिमाने-पिमाने के अपने अधिकार को त्यागना नहीं चाहती। इन दो स्वस्वों के साथ माताओं की दुखी बेलकर सीता का भी दुखी होने के अतिरिक्त अन्य स्वस्व साकेत-संत में दृष्टिगोचर नहीं होता है।

उर्मिला—साकेत-संत की कथावस्तु में उर्मिला की चरित्र-सृष्टि भी नाम मात्र को हुई है। 'जगो में जलबायाए एवम् सख्य सख्य में कहना कावट्या'<sup>११७</sup> लिए उसका व्यक्तित्व एक झलक दिखाकर निभुत हो जाता है। सब पूछा जाने से साकेत-संत की चरित्र भूमि में उर्मिला का चित्रण नहीं नामोस्तेज ही हुआ है।

### कृष्णायन की सपनायिकाएँ

रश्मिली—कृष्णायन की कथावस्तु में रश्मिली की चरित्र-सृष्टि कृष्ण प्रेमिका

११७. साकेत-संत पृ. ३। २०।	१२१ गद्दी पृ० ११। २७।
११८. गद्दी पृ० ३। २०।	१२२ गद्दी पृ० ११। २८।
११९. गद्दी पृ० ३। २३।	१२३ गद्दी पृ० ११। ३५।
१२०. गद्दी पृ० ११। ४२।	१२४ गद्दी पृ० १२१।



एवम् पत्नी के रूप में उपस्थित हुई है। कथा में उसका स्थान, नायक के शौर्य-दर्शन तथा राजनैतिक दृष्टि-साधना की दृष्टि से भी अपना महत्व रखता है क्योंकि हनुमत् के मतानुसार विवाह रंजन मनुनाथ एवम् मंगलपति के मान के रंजन के साथ ही बनेशकुमारी के रंजन से महान् सुख प्राप्त होता है।<sup>२२२</sup> जहाँ कथा में रुक्मिणी परिचय-प्रसंग नायक की प्रतिष्ठा का प्रबल बनने के कारण, कथावस्तु में रुक्मिणी के महत्व का भी प्रतिपादक है यद्यपि यह महत्व साम्प्रदायिक है।

सरोजबाहुक द्विज के कथनानुसार 'रुक्मिणी पुष्प-शामिनी-मणि' है और उसकी वेह भुक्त करपद बेनी ज्वर और हास क्रमशः क्षुब्ध पूर्वन्तु, उपा-विनाश बनि मधु एवम् सरद चन्द्रिका के समान हैं।<sup>२२३</sup> यवणवध अनुराग के कारण वह पुष्प-नुरागिका है क्योंकि अपने पितृ भवन में मारु के मुख से भीष्म के विमल मङ्गल को सुनकर मधु के चरणों में अपना तन-मन अर्पण कर, वह रात दिन उनका ध्यान किया करती है।<sup>२२४</sup> उसका हरि-वरण खूबसा प्राण-त्याग का निदधय<sup>२२५</sup> उसकी प्रेम-दृढ़ता का परिचायक है। विवाह-महोत्सव के प्रति उसकी विरक्ति भी उसके हरि प्रेम की प्रतीक है।<sup>२२६</sup> शिव-पार्वती की पुजा करते समय प्रकट होनेवासी उसकी वर-विनय एवम् सखल लयन<sup>२२७</sup> जहाँ उसके नारी-हृदय की आकुलता को व्यक्त करते हैं वहीं 'मनोवाञ्छित' वर की कामना उसके प्रेमी हृदय की भावना को भी व्यक्त करनेवासी है।

दृष्ट्य द्वारा रथ में बिठा लिए जाने के पश्चात् रुक्मिणी का मुखित होकर स्थान को देखना जहाँ उसके नारी-भुलस हृदयान्तर का परिचायक है, वहीं उसका मुरबानन एवम् भ्रुकुटि-विनाश<sup>२२८</sup> उसके आश्रित आन्तरिक स्नेह की व्यञ्जना करनेवाला है। रुक्मिणी में नारी सुलभ दुर्बलता के भी दर्शन होते हैं। अपने माई को आकुल हो आठा देखकर उसका शरीर काँपने लगता है और ज्यों-ज्यों वह रथ के निकट आता है तो कभी वह प्राण-भन की ओर देखती है और कभी अपने कपीन बन्धु की ओर। उसकी आँखाँ से जम्बू उमड़ पड़ते हैं।<sup>२२९</sup> किन्तु माँ की आँखाँ से भयभीत उसका यह स्वरूप भीदृष्ट्य को बाधित होते देखकर आने में परिमित हो जाता है। रुक्मिणी के जम्बू-मरे लयन सरोप जंगार हो उठते हैं। वह एक हाथ से हरि-रुधिर पोंछती जाती है और एक हाथ से अपने सोपनों की अल-बार।<sup>२३०</sup> प्रिय-वीड़ा से जहाँ उसका श्रेय

२२५. कुण्डलामन पृ० २४०।

२२६. वही पृ० २३७।

२२७. वही पृ० २३७।

२२८. वही पृ० २३७।

२२९. वही पृ० २४४।

२३०. वही पृ० २४४।

२३१. वही पृ० २४८।

२३२. वही पृ० २४८।

२३३. वही पृ० २४९।

जाग्रत हो उठता स्वाभाविक है, वही खरि का पोंछता उसकी कत व्य-निर्माण बुद्धि का परिचायक है। उसके व्यक्तित्व की त्रिविधता, जातिगत दुर्बलता एवम् व्यक्तिगत निशिष्ठता की चोटक है।

रविमयी के गार्ह-हृदय की दुर्बलता रविम-बच को तत्पर हरि के सामने एक बार पुनः प्रकट होती है। माई का बच होते बेस कर यह वीर कर हरि के चरण पकड़ लेती है और रविमयी का विनाश उसकी गहम-गिरा कंठबरोम हगमस उच्च स्वास एवम् अंक-प्रकंप अचम के प्राचवान मांगते<sup>२३४</sup> दृष्टिपोषर होते हैं। माई की प्राच रत्ना का प्रयत्न उसके प्रातृ स्नेही हृदय का परिचायक है। हारका-अवेश पर पुरवासियों को रविमयी त्रिभुवन-तिय मलि-सी दृष्टिपोषर होती है और वे उसे रम-गार्दिन को मज कर प्रात की हुई इन्धिरा ही समझते हैं।<sup>२३५</sup> अंत में धूम मड़ी बेवकर इस प्रभयिनी माया के छाव मायामास का विवाह हो जाता है।<sup>२३६</sup>

हृत्पावन की चरित्र-भूमि में रविमयी का व्यक्तित्व एक भावुक सहृदय दृढ़ निश्चया एवम् उदार प्रेमिक का व्यक्तित्व है। मनोमार्थों के अंतर्गत भी उसका प्रेममय स्वस्व ही व्यक्त होता है। पत्नी के उत्तरदायित्व के रूप में पति के विरुद्ध उठ खड़े होलेबामे ममि-अवाद के समय उसका 'अपवाद भीड़' स्वस्व<sup>२३७</sup> भी दृष्टिपोषर हो जाता है एवम् मित्रविदा को उसी तथा सहोत्तर भविनी के रूप में मान कर रविमयी द्वारा किया गया सम्मान भी<sup>२३८</sup> उसके उदार हृदय एवम् बाह-रहित व्यक्तित्व का परिचायक है। कुल निमा कर रविमयी का व्यक्तित्व हृत्प-पत्नी के अनुस्व ही सिद्ध होता है।

मित्रविदा—हृत्पावन की कथावस्तु में मित्रविदा की चरित्र-बुद्धि हरि-प्रिया के रूप में हुई है। वह पूर्णानुरागिका है और हृत्प के अवतिका-प्रवास के समय से ही उन पर अनुरक्त हो जाती है।<sup>२३९</sup> स्वर्णवर में इस कृषी द्वारा हरि को हुलस कर बचपाता पहनाता इस पर बस-मंडली का सुख हो उठता बल द्वारा गार्दिन को प्रात करने का प्रयत्न करना हरि द्वारा बिन्द-अनुविन्द का मद-मर्दन करते हुए सकल रिपु-भूतों को हरा कर मित्रविदा का बरण करना और हरि का उसे हाथपती में लाना<sup>२४०</sup> इस बात के चोटक है कि हृत्पावन के नायक के सौंदर्यपूर्ण व्यक्तित्व को ध्वस्त करने के लिए इस गारी-यात्र की व्यवस्था हुई है। उसकी हुलस से उसे हरि प्रेमिका समझा जा सकता है और उसका व्यक्तित्व 'हरि-पत्नी' के रूप में ही प्रहृष्ट किया जा सकता है।

२३४ हृत्पावन पृ० २४६।

२३५ वही पृ० २४१।

२३६ वही पृ० २४४।

२३७ वही पृ० २४२।

२३८ वही पृ० २४८।

२३९ वही पृ० २४८।

२४० वही पृ० २४८।

सत्यमामा — सत्यमामा की चरित्र-सूक्ति कृष्णायन की कथावस्तु में कृष्ण-पत्नी के रूप में उपस्थित हुई है। सन्नामिष्ठ समाधि एवम् कृतकृत्य होने की भावना से ही मणि-सहित अपनी इस 'कुशमामा' मुता का कृष्ण के हाथों सौंपता है एवम् सत्यमामा की कल्पवृक्ष प्राप्ति के 'हठ' के कारण ही कृष्ण एवम् सुरेश में मुग्न होता है। अतः कथावस्तु में सत्यमामा का स्वागत पत्नी के अतिरिक्त नायक के सौम्य प्रदर्शन का साधन भी बना है और यह भी कथावस्तु में इस शीघ्र-सीमा-वर्षा का माध्यम है। सन्नामिष्ठ-मुता की हठि से सत्यमामा गुन्ध्याम है,<sup>२४४</sup> हरि द्वारा बरण कर लेने के पश्चात् वह सर्वप्रथम भीमासुर-संहार को जाते पति के समक्ष साध बसने का हठ लेकर एक हठिनी नारी के रूप में हठिपोवर होती है। हरि रण प्रसङ्ग सुनाकर उसे डराना चाहते हैं पर वह अमया एवम् अपने विद्याल व्यक्त विमोचनों से मुग्धा ही दिखाई पड़ती है।<sup>२४५</sup> हरि को उसके अटल हठ के कारण उसे साध लेना पड़ता है। मार्ग में भी सत्यमामा निरंतर ही प्रतीत होती है एवम् युद्धकाल के समय भी श्रिया-वीर्य देखकर हरि मुस्कयते हैं।<sup>२४६</sup> अतः एक हठिनी के साथ-साथ सत्यमामा अमया एवम् शैव्यसीता भी परिमलित होती है। भीमासुर-बन्दीवृद्ध से मुक्त की गई कथाओं को अपनाने की प्रार्थना पर प्रविष्ट होकर जब यगुराई सत्यमामा की ओर हृदय में संकुचा कर देखते हैं तो नारी-बुद्ध से विशेष विकृत यह नारी हरि से उनके स्नेह-निवारण की विनती करती ही हठिपोवर होती है।<sup>२४७</sup> इस प्रकार सत्यमामा वहाँ एक ओर पति-संकुचाहट के कारण अर्थात् नारी-मुलन ईर्ष्या से मुक्त है वहीं दूसरी ओर स्नेह-निवारण की जाने वाली उसकी विनय उसके पर-मीठा-कातर उदार हृदय की भी परिचायक है।

सत्यमामा की नारी-मुलन बुद्धसा के वर्णन इन्द्रपुरी में होते हैं। सधि डाप अपना सत्कार न होते देखकर एवम् उसको अपने भावध्व का निरादर करते पाकर, उसका हृदय रोष से भर जाता है परन्तु हरि के भय से उसका सधि से कुपन कहना<sup>२४८</sup> उसकी नारी-मुलन बुद्धसा का ही द्योतक है। अपनी इच्छा-सिद्धि के हेतु वह नारी-मुलन 'हृदिधार' का उपयोग करने में भी प्रवीण है। सुरतव को अपने बापन में लमाने की इच्छा-पूर्ति के हेतु, उसका पति के श्वशुरों के प्रति किये गये उपकारों का प्रत्युपकार न मिलने की कष्टना और परीक्षा लेने के नाम पर सुरतव को से बसने की बात उठाना<sup>२४९</sup> उसके स्त्री-मुलन मीठे भाषा की स्वभाव का परिचायक है। इसी प्रकार सुरतव के पुराये जाने पर उठनेवाले असोमन व्यंग की वर्षा बसाते हुए, हरि

२४० कृष्णायन २८६।

२४३ वही पृ० ३३२।

२४१ वही पृ० ३२७।

२४४ वही पृ० ३३५।

२४२ वही पृ० ३३१।

२४५ वही पृ० ३४०।

जब उसके पित्रु वंश के लोग का हवाला दे उठते हैं तो सत्यभामा का प्रोषित हो उठना एवम् कंसह के लिए कमर कस कर वृष्णि-कुस पर व्याग-ग्रहार करना २४३ उसकी जातिगत दुर्बलता को व्यक्त करता है। निमित्त इंद्र के समक्ष शपि के यर्ष को पूर करने की बात कहते हुए सत्यभामा का यह कथन कि 'मिलते समय शपि ने तुम्हें सुरपति जानकर जो यम किया था यह उरी का प्रतिकार है। मुझे सुरतव की पाह नहीं है। स्वयं को कायर-पत्नी जानकर अब द्वाजी गर्व न कर सकेगी एवम् सबव ईर्ष्यामय में बसती रहेगी २४४ इस बात का प्रतीक है कि सत्यभामा में नारी मुमन मानावमान का अभाव नहीं है। सत्यभामा की घुरतस्वामना अपमान बिदग्धा नारी द्वारा बिछाया गया 'जास' ही है। साथ ही सत्यभामा में 'यर्ष' का भी अभाव नहीं है। पारजात पुष्पों द्वारा अपना केत-कषाप कर स्वयं को अन्य छानियों से अधिक बन्ध समझने की भावना २४५ उसके व्यक्तित्व में उदात्त गुणों के अभाव को ही व्यक्त करती है।

कृष्णायन की चरित्र भूमि में मनोहारों एवम् मनोभाषों के अंतमय व्यक्त होने वाला सत्यभामा का व्यक्तित्व उसे एक सुन्दरी निर्भया उदारमना हठिनी गवितानारी के रूप में ही उपस्थित करता है। उसने कुलोत्पन्न कन्या के अधिकार्य पुन-दोष विद्यमान हैं।

कालिन्दी — कृष्णायन की कथावस्तु में कालिन्दी की चरित्र-सृष्टि भी कृष्ण परती के रूप में उपस्थित होती है। उसकी तप-साधना भी परोक्ष रूप से नायक की बलि-बुध-सौर्य सम्पत्ता को व्यक्त करने के लिए ही प्रस्तुत की गई है। जठ-कथावस्तु में वह भी एक माध्यम मात्र है। कालिन्दी का तपस्विनी-रूप अनुपम है। यमुना के बहुत बग में तप-निमग्न यह सुकुमारी तपशी एक अत्यन्त तब-बुध नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती है। उसके मस्तक पर जटा-कषाप ऐसा प्रतीत होता है मानो रत्नेत्यन पर सुशोभित अग्नि हो एवम् तप भार से उसका शरीर ऐसा झुस हो उठा है मानो मानु की प्रभा बिपिन में छाकार होकर तप रही हो। २४६ बबुन द्वारा परिचय पूछे जाने पर उसका नत मस्तक एवम् महि-ईर्षमय मन २४७ उसके सीम स्वभाव का परिचय देते हैं। पिता के मुक्त से हरि-बुध-वर्षा सुन कर उन्ही के आदेश से हरि से ध्यान करने की बात कहना २४८ उसकी पितृ भक्ति-भावना का परिचायक है। अपनी तुलसी की माता को मणि-माता के रूप में परिचित हो

जाते देख कर हरि के निश्चित रूप से आश्रम में प्रवेश करने का विश्वास १५२ उसकी हड़ मात्सा को व्यक्त करता है। हरि-आगमन पर उसका लज्जा से कमपुष्पमयी हो जाना हृदय में कर्तव्य भाव के जागृत होने पर धर्मिणी में प्रसून भर कर हरि की ओर एक पय बढ़ा कर ही प्रकंपित हो उठता और फूलों का बिखर जाना १५३ उसकी प्रेम विमोह अवस्था को परिसंक्षिप्त करता है। त्याग उसका हाथ बाध लेते हैं और इस प्रकार इस सूर्य-मुक्ता का योग तप त्याग सफल हो जाता है। मोक्ष सन्नायुक्त अंग स्वतःपूर्व एवम् रोम-रोम अनुरागमय हो उठता है। १५४ छारावती में सर्वांग काशिकी का विवाह हरि से हो जाता है।

कृष्णायन की चरित्र भूमि में काशिकी का व्यक्तित्व एक प्रेम-विद्योपनिषद् साधना के रूप में उपस्थित होता है और प्रेममयी पत्नी के रूप में परिचित हो जाता है। मनोमार्थों के अंतर्गत भी उसका प्रेममय हड़ मात्सावान स्वल्प ही हड़ि मोचर होता है। संक्षेप में काशिकी प्रेम-साधिका कृष्णप्रिया है।

बाल्मवन्ती—कृष्णायन की कथावस्तु में बाल्मवन्ती-कन्या के परिचय-प्रथम के अंतर्गत बाल्मवन्त-कन्या की चरित्र-सृष्टि व्यक्तित्व से सूर्य है। अपने प्रभु को पहिं धान कर बाल्मवन्त अपनी कन्या को सम्राट् मारते हुए, विष्य स्वयंसेवक मयि के साथ प्रभु को दे देता है और इस प्रकार रत्नद्वय प्राप्त कर मुक्ति होते हुए यदुनाभ गुह्य तक देते हैं। १५५ अतः व्यक्तित्व-सूर्य यह 'रत्न' भी कृष्ण-पत्नी के रूप में कृष्णायन की चरित्र-भूमि में अपने मनोमार्थ-सूर्य स्वल्प में व्यक्त हुआ है। बाल्मवन्ती की अवतरणा भी नायक के शीर्ष प्रकाशन का माध्यम मात्र है।

द्रोपदी—कृष्णायन की कथावस्तु में द्रोपदी की चरित्र-सृष्टि पांडव-पत्नी के रूप में उपस्थित हुई है किन्तु कथावस्तु में उसका स्थान पांडव-कृष्ण-मित्रता एवम् नायक के 'निज जनशक्त' स्वहृद को व्यक्त करने का माध्यम भी बना है। अतः कथावस्तु में द्रोपदी का स्थान भी नायक के यत्न प्रकाशन का हेतु हुआ है एवम् कृष्णायन के अन्य नारी-पात्रों की तरह वह भी नायक-कीर्ति-विस्तार का एक साधन है।

द्रोपदी का प्रथम परिचय पांचाल-मुक्ता विभुवन-सुन्दरी नारी के रूप में मिलता है जिसकी यश-सुरभि से भारत-भूमि सुरमिष्ठ रहती है। १५६ स्वर्णर-क्षेत्र में प्रवेश करते समय इसका अनुपम सीमर्य लक्ष-लक्ष नवनों की अचल

१५२ कृष्णायन पृ० १५२।

१५३ वही पृ० १५४।

१५४ वही पृ० १५२।

१५५ वही पृ० १५५।

१५६ वही पृ० १२५।

का देता है।<sup>२२०</sup> कर्म द्वारा भक्त्य-भेदन के लिए सरासन बाण घट्टन करते समय श्रोत्रही के ये बचन कि 'मैं जनार्ण सुत सुत मुचन रजकार को नहीं बरूयी'<sup>२२१</sup> उसके कुमोत्पन्न गर्भ-मात्र एवम् उच्च बधीय पति-प्राप्ति की कामना का परिचायक है। मीम द्वारा 'मोहमिषा प्राप्ति' की बात सुनकर भवन के भीतर से ही पिता द्वारा 'बलु विधेय' को आपस में बांट लेने का आदेश<sup>२२२</sup> उसे पच-पाइज पत्नी बना देता है। कृष्ण-पाइज की पुरानी कथा को आस मुनि द्वारा सुन कर गुप भी अपनी इस कन्या का विवाह पाँचों पाइजों के साथ उत्साह सहित कर देते हैं<sup>२२३</sup> और कुन्ती भी अपनी इस स्नेह-हारिणी बधू का सम्मान करती है।<sup>२२४</sup>

श्रोत्रही के व्यक्तित्व का निश्चित स्वरूप उस समय उपस्थित होता है जब पाइजों द्वारा भूत में श्रोत्रही को भी राज पर सया दिया जाता है और उसे सभा-गृह में जाने का प्रयत्न प्रारम्भ होता है। समाचार विहित कर एक बदन बारन की हुई मुक्त कुत्ता भ्रान्त पाँचाली का व्याघ्र-बाध्य-प्राप्ति सति मानन<sup>२२५</sup> उसकी मार्मिक व्याघ्र का परिचायक है। बुष्ठासन द्वारा केत पकड़ कर सभा-गृह की ओर बसीट कर माई जाने वाली श्रोत्रही का पद-पथ पर झिलझना विषम विषाद-विवर्ण मुख एवम् हगों से बहती बुद्धि बल-भार,<sup>२२६</sup> जहाँ उसकी सहज चातिगत दुर्बलता की चोटक है, वहीं एक छाड़ी में रजस्वला अवस्था में युवकों के भागे जाने की उसकी साक्षरी<sup>२२७</sup> उसकी मनोव्यथा को व्यक्त करनेवाली है। सभा के मध्य कुत्तेबासे उसके उद्गार<sup>२२८</sup> जहाँ एक ओर दुरवनों की बर्म मावना पर चोट करते हैं वहीं दूसरी ओर प्रणाम न करने की अविनय के लिए की जानेवाली उसकी क्षमा प्रार्थना एवम् प्रथम हारे हुए व्यक्ति द्वारा किसी अग्न को हाग्ने के अधिकार को ही जानेवाली कुत्ती ठल्कातीन समाज के मुख पर मारा हुआ नारी का ऐसा ठमाचा है जिसके समस्त मीम्व विदुर, श्रोम जैसे धर्मनिर्माणिओं का शास्त्र-मुठिमान भी पानी भरता नजर आता है। इन मनोद्वारों के अंतर्गत श्रोत्रही का मन-स्थाप अथवा बाक-बाधुर्म ही नहीं ठल्कातीन नारी का, ठल्कातीन समाज की नीति एवम् बर्म-बारणा के प्रति क्रिया यमा प्रहार दृष्टिगोचर होता है। अपने इस स्वरूप के अंतर्गत श्रोत्रही का माह्व नारीत्व, उसके व्यक्तित्व की प्रसरता को व्यक्त करता है।

२२०. कृत्यात्म पु० २६६।

२२१. बही पु० ३०१।

२२२. बही पु० ३०७।

२२३. बही पु० ३१६।

२२४. बही पु० ३१७।

२२५. बही पु० ४२२।

२२६. बही पु० ४२२।

२२७. बही पु० ४२३।

२२८. बही पु० ४२३, २४।

कुण्ठासन द्वारा बुझूस पकड़ने ही शोपरी की 'पाहि' एवम् पुकार,<sup>१९८</sup> उसके बाह्य नारी-हृदय की मनोवेचना को व्यक्त करने के साथ ही भरत-कुस तथा गत जागन' पुस्वत्व को जुगौठी देती है। हरि द्वारा रखा हो जाने पर प्रपद कुमारी का केस छिन्काकर यह प्रतिज्ञा करना कि जस की भुजा के मंजग से प्राप्त रक्त के बिना मैं अपने से बास नहीं बाँधूंगी' उसके बाह्य नारी-हृदय के हृदय निश्चय का परिचायक है। बुझरात्रु द्वारा बर मांगने को कहने पर उसका पाँवों को बाधत्व से मुक्त करने का बर मांगना और बर-माप्ति के पश्चात् पुनः कुछ मांगने को कहने पर उसका यह कहना कि मुझे मांगने का अभ्यास नहीं है, जब स्वामी बास से सब मीने माँव सिमा। मेरे स्वामी स्वाधीन हैं वे मुझे जगत-बीध कर दे सकते हैं, जब शोपरी शीत नहीं है,<sup>१९९</sup> उसके आधुन्य-कौशल एवम् स्वाभिमान को प्रकट करता है।

हृत्प्रायन की चरित्र भूमि में मनोभावों एवम् मनोवृत्तियों के अंतर्गत व्यक्त होनेवाला शोपरी का स्वस्व्य उसका व्यक्तित्व अपने आप में विसंगत है। उसने नारी सुनम पुर्वलताएं भी हैं और व्यक्तित्व विविधताएं भी। वह एक आदर्श वधू है आदर्श पत्नी है, आदर्श एवम् सेवोद्गम नारी है।

मसोबा — कुण्ठासन की कथावस्तु में मसोबा की चरित्र-सृष्टि हृत्प्रायन की स्नेहमयी वात्सल्य हृदया माता के रूप में ही उपस्थित हुई है। कथावस्तु में उसका स्थान मातृ-हृदय के वात्सल्य भाव की व्यंजना करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मसोबा की सर्व प्रथम भक्तक रूप विविधित माता के रूप में दृष्टिगोचर होती है। कुण्ठा को निज समय जानकर वह झूली नहीं समाती।<sup>२००</sup> अपने मातृ रूप में कहीं वह कुण्ठा को बस मान आदि कह कर खिलौने देती है जबका पुसपटे हुए, झुलपटे हुए, कुण्ठा का बदन बिलोक कर पुनःपूर्ण स्वर में ओरी गाती दिखाई देती है।<sup>२०१</sup> मसोबा का कहीं इस नवीन खिलौने के प्रति आगुत बलराम की उत्कंठा का समाधान करना पड़ता है,<sup>२०२</sup> और कहीं वह राज-जनों को 'मबाइ' कहती हुई सुत को भुन कर भी बकसा न छोड़ने का निश्चय करते हुए बास कुण्ठा को छापी से लगाती है।<sup>२०३</sup> गम्ब द्वारा सत्रासे कुपयता के आरोप की ग्रहण करते हुए, कुण्ठा को माखन के कारण चोटी का मोट्टा होना न बढाना बंधा जाने को मांगने पर बहुलाना<sup>२०४</sup> नाम को दूर खेसने से जाने के लिए रोचना<sup>२०५</sup> माटी जाते कुण्ठा को छापी लेकर डाटना विष्णु-मुख में फोड़ि

२१६ कुण्ठासन पृ० ४२६, २७।

२१७. वही पं० ४३०।

२१८ वही पृ० २७।

२१९ वही पृ० २६।

२२० वही पृ० ३०।

२२१ वही पृ० ३४।

२२२ वही पृ० ३७।

२२३ वही पृ० ३८।

विश्व-प्रसार देसकर यवन मूर्खों के लिए कहता २०४ बोरी की घिसामर्तें मुन कर उसका वीरबा २०५ हाऊ का नम बसाकर नम जाने स रोकरा २०६ आदि यशोदा के मातृ-रूप के बसस भाव को व्यक्त करते हैं ।

यशोदा का मातृ-भवन अकूर-बागमन के साथ ही कृष्ण-विशेष के प्रहार को सहन नहीं कर पाता है । उसका विज्ञाप उसके कपोलों पर डरकटा बस-बस उसका भूमि पर गिरना कन्हाई कह कर उठना रोकरा एवम् पुन बरबी पर गिरना २०७ उसके मातृ-रूप की अपार वैभवा का परिचायक है । यशोदा का विज्ञाप कहा नापि भुवन है, वही इस विज्ञाप की पराकाष्ठा उसके समस्त पुत्र-जैम की परिचायक है । उदव के समस्त प्रकट यशोदा के मनोद्वार भी उसके मातृ-रूप की महाकृपा के ही चोटक है । यशोदा का नयनों में बस-कस कुरा कर यह बूझना कि 'मुझे कन्हाई ने और भी कुछ कहा है' २०८ वास्तव में उसके स्नेह-पूरित मन की आहुतिया का ही प्रतीक है । स्वाम के समाचार मुन-मुन कर यशोदा का हँसना, बिलपना स्वाम को सुखी जानकर स्वयं मुखी होना आशीष देना देवकी के नाम संदेस भेजते हुए एक बार मोहन की मूर्ति दिखाने की प्रार्थना करना २०९ वही उसके मातृ भाव के चोटक है वही स्वाम के नाम संदेस भेजते हुए उसका यह कहना कि 'बह बाहे जितनी मिट्टी काप में सब सारी नहीं कुँडनी बाहे जितने बरतन छोड़े बाहे जितनी बोरी करे, मैं उसे अन्न से नहीं बाँधूँगी और न पार्से चरावे को कूँदी' २१० वास्तव में उसके मातृ-रूप की सरलता को व्यक्त करनेवाले विचार हैं ।

कृष्णायन की चरित्र भूमि में यशोदा का मातृ-स्वरूप अपने मनोद्वारों एवम् मनोपाशों में अंतर्गत अपने परम्परायत व्यक्तित्व को ही प्रकट करता है । 'नूरसामर' की दमोण एवम् कृष्णायन की यशोदा में आद-साम्य है और कृष्णायन में उसका प्राचीन कलेवर एक नवीन संस्करण के रूप में ही उदभित होता है । कृष्ण-जमनी के रूप में यशोदा का मातृ-रूप सर्वत्र एक रूप में ही दृष्टिगोचर होता है फिर भी प्रबल शक्त की चरित्र-भूमि में जिस वीर्य के साथ उसके मातृ-रूप को व्यक्त किया गया है, वह अनुरम है । अतः कृष्णायन की यशोदा परम्पर से अनुप्राणित होकर आनंदान है बार अपने नवीन कलेवर में भी सरल रूप से महिमापदी पाता है ।

२०४ कृष्णायन पृ० ४१ ।

२०८ वही पृ० २१२ ।

२०५ वही पृ० ४२ ।

२०६ वही पृ० २२० ।

२०६ वही पृ० ४८ ।

२०७ वही पृ० २२० ।

२०८ वही पृ० २१६ ।



## रावण की उप-नायिकाएँ

शान्ममासिनी—रावण की कथावस्तु में शान्ममासिनी की चरित-सृष्टि रावण-पत्नी के रूप में उपस्थित होती है। रावण की कथावस्तु के पूर्वार्ध में जहाँ उसकी स्थिति पीन-सी है वहीं कथा के उत्तरार्ध में 'अरिमर्दन-माता' के रूप में उसका महत्त्व बढ़ जाता है। शान्ममासिनी का व्यक्तित्व विभीषण-विरोधिनी के रूप में दृष्टिगोचर होता है। वह राजस-कुल-हिण-विभित्ता है। उसकी सर्वप्रथम सत्क मंदोदरी-मुक्त का यह आशीर्वाद देते हुए बिसाई बेटी है कि 'सारे सुरासुर मुझ में सम्मिश्रित रूप में भी तुम्हें हानि नहीं पहुँचा सकें।' १८१ द्वितीय सत्क के अंतर्गत वह विजयानुता के समक्ष अपने अनुभवों को व्यक्त करती बिसाई पड़ती है। उसी के अर्थों में सामने लड़ी विपत्ति के कारण उसके मन में जरा भी शंका नहीं आने पाता है; वो भी किसी प्रकार साहस की समेट कर वह अपने मन को समझाती रहती है। १८२ अक्षयकुमार, सुलोचना रावण आदि की चर्चा करते-करते उसका मौन रह जाना एवम् अश्रु बरसाने लगना १८३ उसके हृदय की व्याधा को व्यक्त करता है। परिचायिका के मुँह से मंदोदरी के समाचार ज्ञात कर उसका बेतना-मून्य-सा हो जाना एवम् बेतना मौनने पर अपनी विवश विधवा भगिनी पर दया रोप हुंसी और रत्नाई का जाना १८४ उसके समिधित स्वभाव का परिचायक है। कटार लेकर उसका मंदोदरी भवन में जाना एवम् विभीषण की चालों पर पानी फेरते हुए उसका उसे बुरी तरह फटकारना १८५ उसकी ठेकस्विता की व्यक्त करण है। मंदोदरी को स्वयं से ज्येष्ठ समझ कर कहने में संकोच का अनुभव करते हुए भी उसका 'मंदोदरी को ऐसा बर्ताव करने के लिए कहना कि जिससे कुल का पानी न आने पावे और मंदोदरी को अबलाओं की रसक कटार सोंपते हुए चुनबसर पाकर मराधम का हृदय विवरीय कर देने की सलाह देना १८६ उसकी विनय भावना ठेकस्विता एवम् समयोचित बुद्धिमत्ता का परिचायक है।

शान्ममासिनी दश-काम और अजसर के अनुसार आचरण करनेवासी है। मर को विभीषण के प्रति क्रोधित होते देख कर जहाँ एक ओर वह राजस-बंध में किसी अश्व को भीवित न पाकर, बल-रक्षा के विचार से विभीषण के लिए दया-दृष्टि रखने की बात कहती है, १८७ वहीं विभीषण को झूठी सफाई देते देख कर उसका यह कहना

२८१ रावण महाकाव्य ६। १४।

२८२ वही १४। २३।

२८३ वही १४। ३३।

२८४ वही १४। ३४। ३३।

२८५ वही १४। ३३ से ४६।

२८६ वही १४। ४४ से ४८।

२८७ वही १३। ३४।

कि 'अब क्यों दूध के बोये बड़े जानी घासु बनते हो, गुम्हारी काशी करतूतों की कहुमी तो बसत बिरित है' १५५ उसकी स्पष्टवाचिता का चोटक है। अरिमर्दन की माता के कम में उसका बिभीषण-विरोध तीव्र हो उठता है और अपने पूष को सारी बचा सुनाने के पक्षपात उसका उसे युद्ध के लिए तैयार करना और काशी लाकर तिसक करना १५६ उसके पातृ-हृदय की हल्ला एवम् खीर दावता का परिचायक है।

रावण की चरित्र-भूमि में बाण्यमायिनी का व्यक्तित्व, प्रतिशोध की ज्वाला में प्रज्वलित एकज्ज्वरी का व्यक्तित्व है जो अपने पति के प्रति किए गए बिनासवाद की कभी क्षमा नहीं कर पाती और उसके मनोद्वार उसे एक कटु-सख मायिणी के रूप में ही उपस्थित करते हैं। शत्रुपक्ष में बाण्यमायिनी का व्यक्तित्व सर्वथा रावण-पत्नी के अनुरूप है।

सुसोचना — रावण की कथावस्तु में सुसोचना की चरित्र-सृष्टि एक प्राच्यिक प्रेम-कथा के रूप में उपस्थित होती है। मातामही के घर से जीटते समय मेघनाद सुनवा के लिए भटकता हुआ एक मंदिर के पास सरोवर के निकट विधाम करने लगता है। अपने हाथ से सरोवर-सरोज लाकर पार्वती-पूजा करने की चाहना से प्रेरित होकर संपूरक छलियां अपने हाथ एक नावक्या को जो अपने बंक लोचनों के कारण सुसोचना कहलाती है, सरोवर की ओर बढ़ती है। १५७ दूर लगे एक सरोज को माने के निमित्त थोड़े ही सुसोचना ठीकने उठखी है, जैसे ही उसकी बाहिनी जुबा एवम् जोर चढ़कने समती है और सरोवर में बग-सी दूर जाने पर ही एक नय-नाम दिखाई देता है। १५८ काम के समान नक को आते देखकर सुसोचना का पहराना धीरे से 'हाथ बर्से' चढ़कर सहभोगा विरता एवम् मुख से बोल न बाना १५९ उसकी मारी-सुमन दुर्बलता को व्यक्त करता है। छलियां मेघनाद से सहामठा-याचना करती हैं और मेघ-नाद नक को मारकर मज्जाघार में बहती सुसोचना को सर-सेतु बनाकर बहने से रोकता है और छलियों के आग्रह पर सुसोचना को बंक में लेकर किनारे आता है। १६० भैरवा मंदिर में छलियों के यह पूछने पर कि 'जिम्हने तुम्हें प्राण-दान दिया है तुमने उनके हित का क्या बिचार किया' १६१ सुसोचना मंत्रु आंध जला कर यह कहती है कि 'मैं इस मुषक को अपना तन-मन दे चुकी हूँ इस बात की काशी सीमबा है।

१५८	रावण महाकाव्य १५। ४१।	१६२	यही ६। ४०।
१५९	यही १६। १५ से १८।	१६३	यही ६। ४०।
१६०	यही ६। १८।	१६४	यही ६। ४८।
१६१	यही ६। १९।		

हे माता, जब साज तुम्हारे ही हाथों है, हमारी अभिलाषा पूरी करो।<sup>१९१</sup> सुलोचना के इन मंजुल भेषों को सुनकर मेघनाथ उसकी भांग में गौरी सिद्धर सया देता है और अपनी मणि-मंडित बंगूटी पहनाकर उसके साथ गर्ववश विबाह कर, सकल लौट जाता है।

रावण की चरित-भूमि में सुलोचना की चरित-सृष्टि वर्णनात्मक ही है और प्रिय-विशेष के पश्चात् उसके विरह-व्यथित हृदय की कहीं भी व्यंजना नहीं हो पाई है। पातालपुरी से लौटने पर मेघनाथ ही उसके विरह में व्याकुल रहता है जब द्वारा ध्वंस भेजता है और मेघनाथ की मृत्यु के पश्चात् सुलोचना के सती होने के उत्सव<sup>१९२</sup> तथा धाम्यमासिनी द्वारा भीषण क्वासा में इस बर-बधू के बसने की चर्चा<sup>१९३</sup> के अतिरिक्त सुलोचना का व्यक्तित्व कहीं भी चित्रित नहीं होने पाया है। मनोभावों के अंतर्गत न तो उसके स्वल्प की ही व्यंजना हुई है और न उसके चरित पर ही विशेष प्रकाश पड़ता है। वह एक प्रेममयी सती गामक्या के रूप में मेघनाथ प्रिया एवम् बर-बधू परिलक्षित होती है एवम् प्रासंगिक पात्र की तरह विस्तृत हो जाती है।

केकसी — रावण की वयावस्तु में केकसी की चरित-सृष्टि रावण की उपस्थिती माता एवम् कुल-हित-कांक्षिणी के रूप में उपस्थित होती है। उसकी सर्व प्रथम सप्तक एक अनुरागिनी किन्तु युस्वनों की मर्यादा रखनेवासी लज्जाशीला वृद्धी के रूप में दृष्टिगोचर होती है। पिता के मुख से कुबेर को विषया मुनि का पुत्र जानकर उसके मुख पर आनेवासी अनूप छटा, युस्वनों की मर्यादा के कारण उसका अपनी अभिलाषा को झिझाना<sup>१९४</sup> उसके अनुरागी किन्तु मर्यादाशील स्वभाव का परिचायक है। वह आज्ञाकारिणी संतान है। माता के आदेशानुसार वह विषया मुनि को अपना पति मान-कर सुत-कामता के निमित्त जब उनके आश्रम की ओर प्रस्थान करती है तो उसका अनुपम रूप दृष्टिगोचर होता है। उसके बसते ही गुमान गुस्ताला आवि की सुपना का संकीर्ण होना इंदीवर, अरविन्द चम्पक आवि की प्रभा का सङ्कुचाना बाहिन श्रीफलावि का उसके छाँचने के सामने पानी भरना चंद्रमा का सुपना बंजनों का सङ्कना, मीन का जल में झुल हो जाना<sup>१९५</sup> आवि इस अंश के द्योतक हैं कि वह अनुपम सुन्दरी है। देवपि मारु के मोहक अलाप पर उसका तन-मन स्वीकृतिवर करना अर्थात् उसके संगीत-मेम का परिचायक है वहीं मीन उठाकर केकसी का पंखु पाल गायन उसके संकीर्त कला नैपुण्य का भी द्योतक है।<sup>१९६</sup>

१९१. रावण महाकाव्य १। ४२।

१९२. वही १३। ११।

१९३. वही १४। ११।

१९४. वही १। ११।

१९५. वही १। १३। १५।

१९६. वही १। ४७, ४८।

भारत द्वारा केकयी से समस्त वार्त्त ज्ञात कर लेने के पश्चात् उसे सुरेस एवम् हरि बीधे वर का सोच बनाना तथा केकयी का यह कहना कि 'हरि पिता के बंधी हैं और सुरेस पिता से मुक्त में हार चुके हैं। अतः हे मुनि मैं आपके पाँव पड़ती हूँ इस प्रसंग को स्थाय होजिए क्योंकि माता-पिता के अनुरोधमय वचन कंठे भी टांसे नहीं जा सकते' १ १ जहाँ उसके कृपाभिषाम यातृ-पितृ-वर्त्ति को व्यक्त करनेवाला है, वहीं यह उसके दृढ़ मिश्रण का भी चोकर है। मुनि को तपसीन जाकर बांतिरक श्रेयानव केकयी का भी तप की लैयारी के लिए बंध से बामुपचारि उतार कर कुन्ती-सी मृदुल दृष्टि पर बम्बल वारण करना और तापसी का दृष्ट बनाना २ २ उसकी प्रेय-नेम-दृष्टता का परिचायक है। अपनी अभिमाया-पूर्ति के पश्चात् उसका अपने पुत्रों को समर्थ हो जाने के बाद तर के लिए प्रेरित करना एवम् नागा के उपदेशानुसार स्व में मन समाकर निज पुराणों के समान ललित-कविता-कीर्ति का विस्तार करने की बात पर जोर देना ३ ३ उसकी पुरस्कर्त्ता के साथ ही उसने कुल-हित-कांक्षी स्वस्व का भी परिचायक है। कुछ मिलाकर केकयी का व्यक्तित्व एवम् तापसी स्वस्व अपने सम्-पुत्र तथा निरक्षय में किसी देवी या मानवी से कम नहीं है। बादव-कुल की माता होकर भी यह कहीं घानवी नहीं है।

सूर्यनका :—राज्य की कथावस्तु में सूर्यनका की चरित्र-सुद्धि राज्य की राज नीतिपटु बहिन के रूप में उपस्थित होती है। कहा में यह राज-राज्य-युद्ध का कारण है। अतः कथावस्तु के घटना-क्रम को यह एक मया मोड़ प्रदान करती है। राजनीति में निपुण होकर सूर्यनका का जलिन प्रारंभ में निज सम्पत्ति देना ४ ४ उसने नीति नीपुण्य का परिचायक है। राज्य के राग्यारोहण के पश्चात् उसे नृप-नृत्य का पद प्राप्त होता है और यह राजनीति के अनेक अद्भुत कार्य करने लगती है। ५ ५ मुनिपणों के यहाँ पर रोक लगाने के हेतु पंचवटी में स्थापित गई राजधानी की सम्पत्ति का वह ६ ६ भी उसे ही प्राप्त होता है। सूर्यनका का प्रमुखित होकर कामन-विचारण करना और सुरमायक तक का उस विधा में दृष्टि उठा कर न देख सकना ७ ७ उसकी अपरिमित शक्ति का परिचायक है। लक्ष्मण द्वारा उसे मार डालने की चमकी देने पर भी सूर्यनका का, जिसकी धुन-धारा द्वारा बीरह सहन राघव-सेना का संवाहन होता था, धमकी की रज मात्र भी बिस्ता न करना ८ ८ उसकी निर्मपता एवम् जलिन-मह का

१०१ राजल महाकाव्य १। २१ ।

१०२ वही १। ३३ ।

१०३ वही ३। ४२ ।

१०४ वही ३। ३२ ।

१०५ वही १। ३ ।

१०६ वही १०। ४० ।

१०७ वही ११। ८ ।

१०८ वही ११। २८ ।

परिचायक है। लक्ष्मण द्वारा माक-काग काट दिए जाने पर लक्ष्मण के समस्त उसका रोगा-  
बिषयता, <sup>३०</sup> जहाँ उसकी नारी सुसम दुर्बलता का चोतक है, वहीं अपनी कुसमता  
को दर्पण में देखकर रावण के पास समस्त समाचार भेजने के पश्चात्, उसका भवन में  
माम लगाकर बल जाना <sup>३१</sup> उसकी आत्मघाती प्रवृत्ति के साथ-साथ उसके स्वाभि-  
मान का भी परिचायक है।

रावण की चरित भूमि में सूर्यनक्षत्र का व्यक्तित्व एक महीन रूप में परम्परा के  
प्रतिबिम्ब उपस्थित किया गया है। उसकी कुसमता का कारण विषयावृत्ता न बता कर  
उसे राजनैतिक रूप प्रदान किया गया है और इस प्रकार सूर्यनक्षत्र को एक कर्मात्मनिष्ठ,  
नीति-मनु शासन संचालिका के रूप में उपस्थित किया गया है।

सीता — रावण की कथावस्तु में सीता की चरित-सृष्टि प्रतिनायक-पत्नी के रूप  
में उपस्थित होती है। रावण अपनी बहिन के अपमान का बदला लेने की इच्छा से  
एवम् तिथि-अपहरण की बात से राम की अपकीर्ति फैलाने की कामना से ही 'राम की  
प्रियशार' का हरण करने को उत्तर होता है। <sup>३१</sup> अतः कथा में सीता का स्वान,  
नायक-प्रतिनायक के मान-सम्मान का हेतु बनता है। सीता की प्रथम शलक एक नीति  
परायण दूरदर्शी नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती है जब वह सूर्यनक्षत्र-वच को उत्तर  
लक्ष्मण को रूपवती अवस्था पर ऐसी अनीति करते देख कर रोकती है और नारी पर  
हाथ चढ़ाने के आत्म-निषेध का हुवाजा देते हुए, सीमे सिद्ध को बगाने एवम् वनवासियों  
पर इस क्रिया से आपत्ति डुलाने का निर्देश करती है। <sup>३२</sup> सीता की द्वितीय शलक  
रावण-अन्विनी के रूप में हनुमान-आगमन पर मिलती है। हनुमान के मुख से पति की  
कुसम-लेख जागरण जानकी के मुखचन्द्र का विकसित होना एवम् उस पर चीपुनी  
आत्म-श्रमा का बढ़ता <sup>३३</sup> उसके पति प्रेम का चोतक है। सीता का प्रभु को  
बिलम्ब न करने का निवेदन और एक माह के समय में लक्ष्मण न आने पर प्राय-त्याग  
का निश्चय <sup>३४</sup> उसके आकुल हृदय का परिचायक है। सीता का अन्तिम उत्सव रावण-  
पराजय के पश्चात् सभी विधिकों में लक्ष्मण के साथ भेजते समय हुआ है और उसके  
पश्चात् राम-लक्ष्मण कपि-कटक सहित सीता याग में हविष दीठी हुई, अवल-अवाग करती  
दृष्टिगोचर होती है। <sup>३५</sup> इस प्रकार रावण की चरित-भूमि में सीता का चरित-चित्रण  
माम माण को हुआ है। मनोमानों के अन्तर्गत न तो उसका स्वरूप और न उसका  
व्यक्तित्व ही स्पष्ट हो पाया है।

३०८	रावण महाकाव्य ११। ३७।	३१२घ	वही पृ १२। २६।
३१०	वही पृ० ११। ३८।	३१३	वही पृ० १२। २७।
३११	वही पृ० १२। ३९।	३१४	वही पृ० १३। ३२।
३१२	वही पृ० ११। ३८, ३९।		

## अन्य मारी-यात्रों का व्यक्तिगत-विश्लेषण

### रासो के अथ छी-चरित्र

पृथ्वीराज रासो में मुझों और शौर्य प्रदर्शन के प्रसंगों के साथ ही विवाह प्रसंगों का भी जमाव नहीं है। अतः स्त्री-चरित्रों की भी कमी नहीं है। परन्तु चित्रण की दृष्टि से ये पात्र यौन से साक्षित होते हैं। उल्लेखनीय पात्रों में इन्द्रावती <sup>१</sup> ईशानवती <sup>२</sup> पुष्पीरानी <sup>३</sup> पूषाकुमारी <sup>४</sup> आदि के नाम लिए जा सकते हैं। प्रथम तीन पात्रों की सृष्टि तो कथा में पृथ्वीराज के शौर्य प्रदर्शन या विसास-अर्पण की दृष्टि से हुई है और पूषाकुमारी को पृथ्वीराज की बहिन भी का विवाह-वर्णन पृथ्वीराज के वैभव प्रदर्शनार्थ तथा चित्तौर के समर्थसह के साथ उसके सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए ही किया गया है। कुछ पात्रों की सृष्टि कौमुद्वल अथवा विद्रास-साधि के लिए ही कर ली गई है जैसे होनी के समय पासी-गसौज के कारणों पर प्रकाश डालने के लिए चौहान-बन्दी हुआ राखस की बहिन इडिकी <sup>५</sup> की सृष्टि। अतः इन पात्रों में चरित्र-चित्रण का अभाव-सा है। रासो में इन पात्रों की सख्या-वृद्धि का हेतु या तो पृथ्वीराज का शौर्य-प्रदर्शन अथवा कवि का श्रुगार वर्णन है।

### पद्मावती के अन्य छी-चरित्र

पद्मावत के अन्य उल्लेखनीय मारी-यात्रों में रत्नसेन तथा बादल की माता एवम् देवपाल तथा बालाहा की सुती हैं। कथानक में प्रथम दो का चित्रण बड़ा सामान्य माताओं के रूप में उपस्थित होता है, वहीं अन्तिम दो का चित्रण भी द्वैतियों के परम्परागत लक्षणों को ध्यान में रख कर ही किया गया है। संक्षेप में उनका चरित्र-निरूपण इस प्रकार है—

रत्नसेन की माता — इसका चरित्र सामान्य माता के रूप में ही व्यक्त हुआ है। कथानक में उसका स्थान प्रभाव धूम्य है। उसने भानुत्व में दानाभी सुभक्त भोजन का अभाव है। विवाह मांगने आए रत्नसेन से उसका यह वृत्त कि 'तुम सर्वत्र भोजन-रत रहे हो भला तुम से योग कैसे साधा जायेगा बिना ब्रीह के कैसे धून सहन करोगे कैसे गुदड़ी ओडोगे कैसे पैरल जमोगे कैसे बच्चा मोटा कुटा भग्न जाओगे ?' यहाँ उसके मातृ-हृदय के वात्सल्यमय स्वरूप का परिचयायक है, वहीं उसमें उस

१ पृथ्वीराज रासो, समय ३३।

२ वही समय ३६।

३ वही समय ३६।

४ वही समय २१।

५ वही समय २२।

६ आपसी प्रवासी पृ० ३५।

शेरक उद्बोधन का अभाव है जो प्रायः सभीय माताएँ ऐसे अवसरों पर व्यक्त किया करती हैं। वह पुत्र को प्रोत्साहित नहीं हवोत्साह करती ही दृष्टिभोर होती है। उसमें साधारण माताओं की ही दुर्बलता है। मनोभावों के अतर्गत व्यक्त होने वाली मातृ-हृदय की बेचता का भी चित्रण में अभाव है। उसका व्यक्तित्व एक सामान्य माता से अधिक कुछ न होकर व्यक्तिगत विशेषतारूप्य है।

बादल की माता—यह भी सामान्य माता के रूप में ही व्यक्त हुई है। कबालतु में उसका स्थान नाम मात्र को ही है। बादल को बालक समझ कर वह उसके समझ बुझ की मयकरता का जो चित्र कीचती है<sup>७</sup> वह उसकी नारी-मुलम दुर्बलता का ही प्रतीक है, उसके क्षात्री-मुलम शोक का नहीं। रण में जाते हुए पुत्र को रोکنे का उसका प्रयत्न न तो गौरव जैसे बीर की पत्नी के लिए सोमनीय ही है और न उत्कामीन क्षत्रीय नारी के अनुरूप ही। संक्षेप में उसका व्यक्तित्व एक पुत्र-वत्सला माता का व्यक्तित्व है।

कुमुदिनी—कुमुदिनी का चित्रण भी जो कि बेचपाम की दूती के रूप में उपरिष्ठ होती है, सामान्य दूतियों के लक्षणानुसार ही हुआ है। कथानक में बेचपाम दूती की अवतरणा पद्मावती की पति-मरण्यता को व्यक्त करने के लिए ही हुई है। अतः कथानक में उसका स्थान नायिका के शील-गुण की व्यञ्जना के लिए ही दृष्टि से महत्वपूर्ण है। स्वयं को पद्मावती का नैहर की बताकर एवम् सिन्धु-द्वीप में उसे वास्यावस्था में गोद में बिठा तीप से कुछ पिमाने की बात कह कर,<sup>८</sup> वह जिस बाइबर नाम की रचना करती है और रसोई, रस फूस आदि की चर्चा लेकर पद्मावती के समुद्र की हिसोर के समान जीवन को बेक-बेककर हृदय बैठनकी बात बनाते<sup>९</sup> वह जिस नाटकीयता द्वारा अपना कार्य सिद्ध करना चाहती है वह सामान्य दूतियों के अनुरूप ही है। उसका बाइबर उसकी शूरता उसका वाकचालुय एवम् प्रदर्शना सभी दूतीवत् है। यद्यपि वह एक असफल दूती सिद्ध होती है, फिर भी उसका व्यक्तित्व अपने आप में एक लक्षणा है।

बाइसाह की दूती—अमावसीय की रणस्थाना की यह पातुरी<sup>१०</sup> जो योनिनी बेध में बाइसाह की दूती भनकर पद्मावती को फुसला-बाइसाकर निकाल जाने के लिए जाती है सामान्य दूतीवत् ही है। अपने बाइबर-बात को पीभाते हुए रणसेन की बुद्ध-व्यथावस्था की चर्चा कर वह योनिनी होकर साव पामने के लिए उत्तर

७. जायसी प्रभाषनी पृ० २८९।

८. वही पृ० २७२, ७३।

९. वही पृ० २९३।

१०. वही पृ० २७५।

कर लती है।<sup>११</sup> किन्तु पचावती की सखियों के कारण उसके बूट-कौसल पर पानी फिर जाता है। उसका व्यक्तित्व एक सफल योद्धा का व्यक्तित्व है और अपनी बूढ़ता में वह कुमुदिनी से कहीं अधिक लफ्फ बूढ़ी है।

मानस के अन्य नारी पात्र

मानस की कथा-भूमि में अन्य नारी-पात्रों की भी विपुलता है। सतक्या रवि विश्वमोहिनी, सरस्वती, अग्नि-पत्नी अनुसूया महिष्या दम्बरी बिजटा लंकिनी आदि की भरिप कृष्टि कथावस्तु में प्रासंगिक रूप से ही उपस्थित हुई है। सतक्या का उल्लेख रामायणार के एक कारण रूप में उपस्थित हुआ है। कामदेव के भस्म हो जाने पर रांकर से पति प्राप्ति का बरहल प्राप्त करने के निमित्त रवि-विनाय विनाय की चर्चा हुई है। नारद-मोह प्रथम में विश्वमोहिनी का नाम आता है। राम-राम्याभियेक में देवताओं के अनुरोध पर अवरोध दातने की दृष्टि से एवं संघर्ष प्रति भ्रम उत्पन्न करने के लिए सरस्वती की चर्चा है। रवी-वर्म उपदेशनाम अनुसूया का उल्लेख पाया जाता है। राम के भक्तवाचक स्वयं की लंकी व्यक्त करने के हेतु महिष्या एवं दम्बरी का नाम आता है। लंकिनी का नाम राक्षस-वर्म के नाम की सूचना के निमित्त ही उपस्थित होता है और बिजटा 'राम चरित रवि निपुण विवेका' के रूप में उपस्थित होकर, अपने स्वप्न द्वारा राक्षसियों के मन में सीता के प्रति सम्मानना जागृत करती है। अतः उनका भरिप-विषय नाम मात्र की ही हो पाया है। येय उल्लेखनीय नारी-पात्र प्रभावशाली निम्नलिखित हैं —

मैना—मानस की कथावास्तु में प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत मैना की भरिप कृष्टि, उमा-माता के रूप में उपस्थित होती है। मैना एक सहृदय जननी है। नारद के मुख से विभिन्न वर की बात सुन कर उसका पति को यह कहना कि 'यदि वर, वर और पुनः उत्तम हो तो पुता का विवाह करो अन्यथा कम्पा कृपाही ही रहे'<sup>१२</sup> वही उसके पुता प्रेम का परिचायक है, वहीं पार्वती को तप के लिए बड़े जाने पर उसका माँओं में बाँझ भर कर पुत्री को सोप में बिठाना उसे बार-बार बसे लपाना एवं पदार्थ कठ के कारण कुछ बह म पाया,<sup>१३</sup> उसके स्नेहाविवेक के साथ-ही-साथ उसकी नारी सुलभ दुर्बलता का भी स्रोतक है जो सन्तान-श्रेय के कारण प्रायः मानु-मन में जागृत हो उठती है। जिस के 'चिह्न केप' की देख कर मैना का दुःखित होना पावती की मुता कर सोप में बिठाते हुए अम्बु बहाते विवाहा को 'बाहर वर' के लिए सोप देना और नारद के उपदेश के लिए उन्हें कोसना,<sup>१४</sup> भी उसकी जातिधन् कमजोरी के साथ मानु प्रेम का व्यंग्यक है। संक्षेप में मैना का व्यक्तित्व एक मुता-हितकांक्षिणी, सरल हृदय,

११. आपसी रूपावली पु० २७७ पृष्ठ ।

१२. भावस, वात्सल्य पु० ४४ ।

१३. वही पु० ४६ ।

१४. वही पु० २१६ ।



रत्नेश्वरी माता का व्यक्तित्व है जिसमें मातृ-सुलभ विशेषताएं एवं नारी-सुलभ पुर्वलताएं विद्यमान हैं।

**सुनयना**—मानस की कथावस्तु में सुनयना की चरित्र-वृद्धि जनक की विधुयी पत्नी एवं सीता-माता के रूप में उपस्थित हुई है। राम को वन्युप छोड़ने उठते देसकर सखि के समक्ष व्यक्त उसकी विकसता एवं आधका<sup>१४</sup> जहाँ उसने नारी-वृद्धय की बादिगद् संवाकुसठा को व्यक्त करती है, वहीं परशुराम के आगमन पर विवाता द्वारा बनी बनाई बात बिभाड़ देने के लिए उसका पछताना<sup>१५</sup> उसके मातृ-वृद्धय की नारी-सुलभ भावना का चोतक है। राम जैसे योग्य आमाता पाकर उसका आनन्दित होना और पुत्री की विवाह के समय अन्य रानियों सहित उसका बार-बार पुत्री से भेटना वहीं नारी-सुलभ है वहीं वह उसके पुत्री प्रेम का भी परिचायक है। वन में कौशल्या एवं सुनयना के मध्य होनेवाला वार्त्तालाप<sup>१६</sup> जहाँ सुनयना के विनयी स्वभाव का परिचायक है वहीं उसके विचार उसे एक विधुयी नारी के रूप में व्यक्त करते हैं। कुस मिलाकर सुनयना का व्यक्तित्व जनक-पत्नी एवं सीता-माता के अनुरूप ही है।

**मंजरा**—मानस की कथावस्तु में मंजरा की चरित्र-वृद्धि एक संबन्धी अवस्य पिटाही पर कोहू बेरी के रूप में उपस्थित होती है। उसकी कपट कुचाल कैकेयी की कुबुद्धि को बाधित करने में सहायक सिद्ध हुई है। अतः वह कथावस्तु के मोड़ का माध्यम है। कैकेयी की यह संबन्धी बेरी गिरा द्वारा गति डेर देने के कारण अपमस की पिटाही बन कर, अपनी छोटी बुद्धि एवम् नीच जाति के स्वभावानुसार रात-ही-रात में अकाश करने की भावना से व्यमुपात करते हुए 'नारी चरित्र', का प्रसार करती दृष्टिगोचर होती है।<sup>१७</sup> अपने प्रथम प्रयास में असफल होने पर उसे वहीं 'बर-फोटी' की उपाधि से विभूषित होकर 'काने लंगड़े कुबर्को' की कुटिलता एवम् कुचालीपन का स्त्री उपा दाली से संयुक्त करके के नीम बढ़ने जैसा प्रमाण-पत्र प्राप्त होता है।<sup>१८</sup> वहीं 'कोठ नुप होठ इमहि का हाति' का माया-बाल विद्या कर लगीर जींचते हुए विस्वासमय स्वर में रानी का दूध की मक्खी होना बताकर कद्दु तथा बनिता के उवाहरण द्वारा अपने बूट कौशल में सफलता प्राप्त कर वह कैकेयी की 'अप पुतरि हो उठती है। इस प्रकार कैकेयी की कुबुद्धि कपी भूमि में विपत्ति के बीज को विकसित करनेवाली मंजरा बर्ण्य अनुभव सिद्ध होती है। उसका व्यक्तित्व 'तिव माया' के अस-सिद्ध का आकार है और उसकी कपट कुचाल उसे एक मायावी छमना के रूप

१४. मानस बालकांड पृ० २५२।

१५. वही पृ० ४१२।

१६. वही पृ० २६६।

१७. वही पृ० ४१३ १४।

१८. मानस, समोप्यकांड पृ० ६५१ से ६५४।

में उपस्थित करती है। मनोमाधों एवं मनोभारों के अन्तर्गत भी उसका यही अस्तित्व स्वरूप व्यक्त होता है। संक्षेप में संभरा मनु में माधुर मोहनेवासी मायाविनी है।

सूर्यलक्षा—मानस की कथावस्तु में सूर्यलक्षा की परिच-सृष्टि रावण-भगिनी के रूप में उपस्थित होती है। वह कुछ हद परा एवम् सांनिनी की तरह कठोर है। पञ्चमटी में युधम राजकुमारों को देख कर वह कामातुर हो उठती है एवम् उसकी निर्मम्वता 'तुम सम पुरप न मो सम नारी' के रूप में फूट पड़ती है। विसोक भ भी अपने अनुस्य पुरुष न पाने के कारण नु बारी रहने की चर्चा से सगाकर नाक-कान हीन होने तक<sup>१</sup> उसके क्रिया-कलाप उसे एक उच्च धन पॉवता एवम् सीम-संकोचहीन कामातुरा ही व्यक्त करते हैं। उसके प्रथम निवेदन एवम् उसकी क्षिमाहाट के अंतमव मागवी संकोच का अभाव है और उसका व्यक्तित्व एक दानवी नारी के रूप में ही व्यक्त हुआ है।

### चन्द्रिका के अन्य नारी पात्र

रामचन्द्र चन्द्रिका की कथावस्तु में अन्य नारी-पात्रों के अन्तर्गत अनुसूया सूर्य लक्षा का ही उल्लेख पाया जाता है। अनुसूया का उल्लेख<sup>२१</sup> 'परि व्रतन की देवता' के रूप में हुआ है और उसके लप-अभ की कीर्ति की तरह सुयोमित स्वेष केत तथा कपटी घीरा एवम् छिन्नित अंग को संसार की भवभरता का उपदेश देनेवासे बता कर सीता के पॉव पड़ने एवम् अनुसूया द्वारा छिर सूत्र कर उसे गोद में बिठा कर उपदेश देने के साथ ही उसका उल्लेख समाप्त हो जाता है। अतः अनुसूया की परिच-सृष्टि नाम मात्र की ही हुई है।

सूर्यलक्षा—सूर्यलक्षा का परिच-संकेत चन्द्रिका की कथावस्तु में भी एक कामातुरा के रूप में ही उपस्थित होता है। चन्द्रिका की परिच भूमि में सूर्यलक्षा का प्रवेश विमान-विदिष्टाओं को अवगाहन करवाती गरीर की सहज सुगम के साथ होता है जो उसे दूरी के समान लेकर जाती है।<sup>२२</sup> राम की छवि देखते ही उसका धन और तन भवभ-भविष्य<sup>२३</sup> हो उठता है वह स्वयं राम से पत्नी बनाने का आग्रह करती है<sup>२४</sup> और राम द्वारा सम्मन की ओर उन्मुख कर देने पर वह राजकुमार को संपूर्ण सुक-सम्पत्ति का निदधय दिला कर, अपने साथ रमय<sup>२५</sup> करने का आग्रह करती है। फिर हाथ

२० मानस अरण्यकांड पु० ७६१

से ७६१।

२१ रामचन्द्र चन्द्रिका ११। ४ से ६।

२२ वही ११। ११।

२३ वही ११। १२।

२४ वही ११। १३।

२५ वही ११। १७।

विकास को समझ कर उसका भक्षण की कामना करना और नासिका बिहीन होकर खरूपण के पास जाना, खरूपण का संहार करना कर उसका राखण के पास पहुँचना, उसके प्रतिशोध-विदग्ध हृदय के ही परिचामक हैं। प्रणय-निराशा के पश्चात् व्यक्त उसकी भक्षण-कामना जहाँ उसके दानवी स्वभाव की परिचामक हैं वहीं प्रतिशोध की कामना उसके उस नारी-गुणम स्वभाव की छोटक है जो प्रणय-निराशा के पश्चात् प्रतिशोधान्व हो उठता है। उसके चरित्रांकन में भावात्मकता का समावेश वर्धनात्मकता का प्रामाण्य है। अठ मनोमार्थों के अंतर्गत उसका स्वल्प व्यक्त नहीं हो पाया है। उसका व्यक्तित्व एक प्रणय-पिपासु कामातुरा नारी का व्यक्तित्व है जो अपने शानवी स्वभाव के कारण प्रतिशोध की क्वासा से प्रज्वलित हो उठता है।

### प्रिय प्रवास के अग्र स्त्री-पात्र

गोपिकाएँ—नामोस्तेषा की दृष्टि से प्रिय प्रवास की कथावस्तु में समिता<sup>१४</sup> को छोड़कर अन्य स्त्री पात्रों का अभाव है किन्तु स्त्रियों का अभाव नहीं है। वे स्त्रियाँ राज की गोपिकाएँ हैं जिनका स्वान प्रिय-प्रवास की कथावस्तु में कृष्ण-मेमिकाओं एवम् वियम-वियोगिनियों के रूप में व्यक्त होता है। चोड़ों की टापों से उड़ी पथ रण को अमित एवम् विप्र-पाकर वे उस भूम में भी क्याम से भिन्न होने की विचित्रतावस्था<sup>१५</sup> की ही कल्पना करती हैं। वे प्रिय के निकट से जानेवाली इस भूम को वसन्ति मिटाने वाली समझती हैं और उसे हृदय से जपाते हुए, लोचनों में समा सेवा चाहती हैं।<sup>१६</sup> भूम को भी स्वयं के समान भाग्यहीना मनीना समझना क्योंकि वह जाना जाने कलम पग से सग नहीं पाई<sup>१७</sup> वास्तव में गोपिकाओं की मनोव्यथा का ही छोटक है। उद्यम द्वारा अमित मन को योग द्वारा सम्हालने को कहने पर,<sup>१८</sup> गोपिकाओं द्वारा उन मूढ़ प्यारी बातों को जो हृदय-तप्त-वेचिनी थीं सविमय किन्तु खिन्ना हो-हो कर सुनना<sup>१९</sup> जहाँ उनके धीम स्वभाव का छोटक है वहीं उनकी खिन्नता उनके क्याम प्रेम की परिचामक है।

गोपिकाओं के लिए योग चर्चा प्रेम चर्चा से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। 'जिनके लोचनों में प्यारा नीला असव रमा हो भला वे भूप के पुत्र में कैसे बनुराज हो सकती हैं ? जो स्व प्रियभर में वस्तुतः भासता हो चुकी है, वे हृदय-तप्त में क्या

१४. प्रिय प्रवास ४ : १२।

१५. वही ४ : ७३।

१६. वही २ : ७१।

१७. वही १४ : ३८।

१८. वही २ : ७३।

१९. वही १४ : ४०।

को कैसे स्थान दे सकती हैं ?<sup>११</sup> अब चरित्र-किरचों अपना साथ त्याग सकती हैं । पन्द्र-किरचों निज माधुरी को छोड़ सकती हैं किन्तु प्रजपरा-जन के उरों से मनमोहन की मूर्ति नहीं कड़ सकती ।<sup>१२</sup> अतः उदय द्वारा सहायित गोपिकावों का बसोकिक पावन प्रेम<sup>१३</sup> उनके व्यक्तित्व को प्रेममय ही प्रकट करता है । मनोमावों के अन्तर्गत व्यक्त जनकी बेवना भी उनके स्नेही स्वरूप की ही परिचायक है । प्रिय प्रवास की गोपिकाएँ परम्परा से अनुप्राणित होकर भी अपना निराला रखती हैं और यह निराला उनका अन्तर्गत प्रेम-मय व्यक्तित्व ही है ।

### साकेत के अग्रणी पात्र

साकेत की कथावस्तु में अग्र्य भारी-पार्श्वों के अन्तर्गत मंथरा एवम् उर्मिला सखी सुलक्षणा का नाम आता है । सुलक्षणा के नाम का उल्लेख<sup>१४</sup> केवल एक स्थल को छोड़कर कहीं नहीं हुआ है । यदि सुलक्षणा को ही उर्मिला की एकमात्र सखी समझा जाये तो उसका चरित्रोक्त साकेत में सामान्य सखिबन्ध ही उपस्थित होता है । सयोग के क्षणों में वह हास-परिहास में योग बैठाती है, वियोग के क्षणों में वियोग चङ्गारों की छापी बनती है और विवि के नाम न रखने का आश्वासन देकर धैर्य धारण करने की सलाह देती रहिगोचर होती है । किन्तु सुलक्षणा ही उर्मिला की एकमात्र सखि नहीं है । 'सखियाँ अनेक समझाती थीं'<sup>१५</sup> जैसी पंक्ति सुलक्षणा के एकमात्र सखित्व में वाचक है । अतः साकेत के अग्र्य भारी पार्श्वों के नाम पर, चरित्र विषय की दृष्टि से मंथरा ही बच जाती है । मंथरा की चरित्र-सूचि संक्षेप में इस प्रकार है—

मंथरा—साकेत की कथावस्तु में मंथरा की चरित्र-सूचि अपने परम्परागत कुटुम्बा स्वरूप में ही उपस्थित होती है । साकेत के भुमन-सौत्र को कीट बने मंथरा के नेत्र पझने नहीं देते हैं ।<sup>१६</sup> उसके नाम बचन एवम् छूर कपाल को ठोक कर भाल फूटने की बात ब्रताना<sup>१७</sup> उसके कुटिल छलिया स्वरूप की ही व्यवस्था करते हैं । कौक्यी के समग्र वह वर में कीच उड़ानेवासी नीच एवम् रस में विष बोतनेवालों नापिन ही साबित होती है ।<sup>१८</sup> स्वयं को नित्य अपराधी सुलु नहू कर क्षमायाचना

११-अ प्रिय प्रवास १४ । १५ ।

१२ वही १४ । १४१ ।

१३ वही १४ । १४७ ।

१४ साकेत पृ० १६० ।

१५ वही पृ० १६० ।

१६ वही पृ० ४३ ।

१७ वही पृ० ४४ ।

१८ वही पृ० ४६ ।

विभास को समझ कर उसका भक्षण की कामना करना और नासिका बिहीन होकर धरतूपथ के पास जाना धरतूपथ का सहार करना कर उसका राज्य के पास पहुँचना, उसके प्रतिशोध विवर्ण हृदय के ही परिचायक हैं। प्रणय-निराशा के परभाव व्यक्त उसकी भक्षण-कामना जहाँ उसके हागबी स्वभाव की परिचायक है, वहीं प्रतिशोध की कामना उसके उस मारी-मुमन स्वभाव की द्योतक है जो प्रणय-निराशा के परभाव प्रतिशोधान्ध हो उठता है। उसके चरित्रांगन में मायात्मकता का अभाव दर्शनात्मकता का प्राबाल्य है। मरु मनोभावों के अंतर्गत उसका स्वरूप व्यक्त नहीं हो पाया है। उसका व्यक्तित्व एक प्रणय-पिपासु कामातुर मारी का व्यक्तित्व है जो अपने हागबी स्वभाव के कारण प्रतिशोध की प्यासा से अग्रगणित हो उठता है।

### प्रिय प्रवास के अग्र्य स्त्री-पात्र

गोपिकाएँ—नामोस्तेषा की दृष्टि से प्रिय प्रवास की कथावस्तु में सतिता<sup>२६</sup> को छोड़कर अन्य स्त्री पात्रों का अभाव है किन्तु स्त्रियों का अभाव नहीं है। ये स्त्रियाँ भज की गोपिकाएँ हैं जिसका स्थान प्रिय प्रवास की कथावस्तु में कृष्ण-मेधिकाओं एवम् श्याम-वियोगिनियों के रूप में व्यक्त होता है। जोड़ों की टापों से उड़ी पवन-रज की भ्रमि एवम् छिप्र-याकर ने उस घूम में भी श्याम से निश्च होने की विचिन्तितारत्ना<sup>२७</sup> की ही कल्पना करती है। वे प्रिय के निकट से जानेवाली इस घूम को वसान्ति मिटाने वाली समझती हैं और उसे हृदय से लगाते हुए, सोचनों में समा लेना चाहती हैं।<sup>२८</sup> घूम को भी स्वयं के समान भाग्यहीना, मलीना समझना क्योंकि वह बाधा वाले कसम पग से लग नहीं पाई<sup>२९</sup> वास्तव में गोपिकाओं की मनोव्यथा का ही द्योतक है। उद्वेग द्वारा भ्रमि मन को मोय द्वारा सम्हालने को कहने पर,<sup>३०</sup> गोपिकाओं द्वारा घन मूक प्यारी बातों को जो हृदय-तल-वेचिनी की सविनय मिल्तु खिल्ला हो-हो कर सुनता<sup>३१</sup> जहाँ उनके सीस स्वभाव का द्योतक है, वहीं उनकी खिलता उनके स्मय-मेघ की परिचायक है।

गोपिकाओं के लिए मोय बर्षा प्रेम बर्षा से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। बिनके सोचनों में प्यारा नीमा जसब रसा हो भसा ने भूप के पुष में कंठे बनुरछ हो सकती हैं ? जो स्व प्रियवर में नस्तुत नासक्य हो चुकी है वे हृदय-तल में जम्

२६. प्रिय प्रवास ४।२२।

२६. यही २।७३।

२७. यही २।७१।

२७. यही १४।३२।

२८. यही २।७३।

२८. यही १४।४०।

को कैसे स्नान हो सकती है ?<sup>३१</sup> वह रवि किरणों अपना ताप त्याग सकती है चन्द्र-किरणों मित्र माधुरी को छोड़ सकती है किन्तु ब्रजधरा-जन के उरों से मनमोहन की मूर्ति नहीं हट सकती।<sup>३२</sup> अतः उद्यम द्वारा संपादित पोषिकाओं का असौक्य पावन प्रेम<sup>३३</sup> उनके व्यक्तित्व को प्रेममय ही प्रकट करता है। मनोमार्जों के अंतर्गत व्यक्त उनकी सेवा भी उनके स्नेही स्वल्प की ही परिचायक है। प्रिय प्रवास की गोपिकाएँ परम्परा से अनुप्राणित होकर भी अपना भिन्नत्व रक्षती हैं और यह भिन्नत्व उनका अनन्य प्रेम-मय व्यक्तित्व ही है।

### साकेत के अथ छी पात्र

साकेत की कथावस्तु में अन्य नारी-पार्श्वों के अन्तर्गत मधरा एवम् उमिता सखी सुसज्जा का नाम आया है। सुसज्जा के नाम का उल्लेख<sup>३४</sup> केवल एक स्थल को छोड़कर कहीं नहीं हुआ है। यदि सुसज्जा को ही उमिता की एकमात्र सखी समझा जावे तो उसका चरित्रांकन साकेत में सामान्य सखिबत् ही उपस्थित होता है। संयोग के क्षणों में वह हास-परिहास में योग्य बँटती है वियोग के क्षणों में वियोग उद्गारों की साक्षी बनती है और बिबि के नाम न रहने का आश्वासन देकर चैत्र बारन करने की समझ देती इक्षिमोचर होती है। किन्तु सुसज्जा ही उमिता की एकमात्र सखि नहीं है। 'सदियाँ अनेक समझाती थी'<sup>३५</sup> जैसी परिक्रिा सुसज्जा के एकमात्र सखित्व में बाधक है। अतः साकेत के अन्य नारी पार्श्वों के नाम पर, चरित्र चित्रण की दृष्टि से संभरा ही बच जाती है। संभरा की चरित्र-सृष्टि संक्षेप में इस प्रकार है—

संभरा —साकेत की कथावस्तु में संभरा की चरित्र-सृष्टि अपने परम्परागत कुटिला स्वरूप में ही उपस्थित होती है। साकेत के सुमन-लोच को कीट बने संभरा के नेत्र, फलने नहीं देते हैं।<sup>३६</sup> उसके वाम वक्ष एवम् कटुर कपाल को ठोक कर भाग फूटने की बात अटाना<sup>३७</sup> उसके कुटिल चक्रिया स्वरूप की ही ध्वनना करते हैं। कैंकरी के समान वह चर से कीच छड़ानेवासी गीच एवम् रस में विष बोलनेवासी नागिन ही साबित होती है।<sup>३८</sup> स्वयं को मित्य अपराधी भुल्य कह कर क्षमायाचना

३१-३२ प्रिय प्रवास १४। ५५।

३५ वही पृ० १६०।

३२ वही १४। १४१।

३६ वही पृ० ५६।

३३ वही १४। १४७।

३७ वही पृ० ५४।

३४ साकेत पृ० १६०।

३८ वही पृ० ५६।

विनाश को समझ कर उठठा भवान की कामना करना और नाशिका बिहीन होकर  
 खरपूषण के पास जाना, खरपूषण का संहार करना कर उसका राजन के पास पहुँचना,  
 उसके प्रतिशोध-विषम हृदय के ही परिचायक है। प्रणय-निराशा के पश्चात् व्यक्त  
 उसकी भयान-कामना वही उसके शान्ति स्वभाव की परिचायक है, वहीं प्रतिशोध की  
 कामना उसके उस मारी-मुसम स्वभाव की चोटक है जो प्रणय-निराशा के पश्चात्  
 प्रतिशोधान्व हो उठता है। उसके चरित्रांकन में भावात्मकता का अभाव वर्णनात्मकता  
 का प्राबल्य है। अतः मनोमात्रों के अंतर्गत उसका स्वरूप व्यक्त नहीं हो पाया है।  
 उसका व्यक्तित्व एक प्रणय-पिपासु कामातुरा मारी का व्यक्तित्व है जो अपने शान्ति  
 स्वभाव के कारण प्रतिशोध की व्यासा से प्रवृत्तित हो उठता है।

### प्रिय प्रवास के अर्थ स्त्री-यात्रा

गोपिकाएँ — नामोस्मैय की दृष्टि से प्रिय प्रवास की कथावस्तु में सज्जिता<sup>१३</sup>  
 को छोड़कर, अन्य स्त्री पात्रों का अभाव है किन्तु स्त्रियों का अभाव नहीं है। वे स्त्रियाँ  
 सब की गोपिकाएँ हैं जिनका स्थान प्रिय-प्रवास की कथावस्तु में कृष्ण-मेनिकाओं एवम्  
 स्वाम बिदोगिनियों के रूप में व्यक्त होता है। जोड़ों की टापों से चड़ी पल-रज की  
 अमित एवम् सिद्ध-नाकर वे उस भूम में भी स्वाम से निज होने की विभिन्नतावस्था<sup>१४</sup>  
 की ही कल्पना करती हैं। वे प्रिय के निकट से जानेवाली इस भूम को स्मरान्ति मिटावे  
 वाली समझती हैं और उसे हृदय से लगाते हुए, सोचनों में समा लेना चाहती हैं।<sup>१५</sup>  
 भूम को भी स्वयं के समान भाव्यहीना, मनीना समझना क्योंकि वह आभा वाले वसन  
 पय से लय नहीं पाई<sup>१६</sup> वास्तव में गोपिकाओं की मनोव्यथा का ही चोटक है। उदय  
 द्वारा अमित मन को योग द्वारा सम्हालने को कहने पर,<sup>१७</sup> गोपिकाओं द्वारा उन मूर्ख  
 प्यारी बातों को जो हृदय-रज-वैषिणी की सविनय किन्तु चिन्ता हो-हो कर सुनना<sup>१८</sup>  
 वही उनके हीन स्वभाव का चोटक है वही उनकी बिग्नता उनके स्वाम-प्रेम की  
 परिचायक है।

गोपिकाओं के लिए योग वर्णा प्रेम वर्णा से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।  
 जिनके सोचनों में प्यारा गीता अथवा रमा हो भसा वे भूप के पुत्र में कसे अनुरक्त  
 हो सकती हैं? जो स्व प्रियवर में वस्तुतः आसक्त हो चुकी हैं वे हृदय-रज में अन्य

१६ प्रिय प्रवास ४। ५२।

१९ वही ३। ७३।

१७ वही ३। ७१।

२० वही १४। ३६।

१८ वही ५। ७३।

२१ वही १४। ४०।

को कैसे स्वान दे सकती है ?<sup>१३</sup> अरवि-किरणें अपना ताप त्याग सकती हैं, चन्द्र-किरणें नित्र माधुरी को छोड़ सकती हैं किन्तु बजबरा-जन के उरों से मनमोहन की मूर्ति नहीं कड़ सकती।<sup>१४</sup> अठ उदय द्वारा सराहित गोपिकाओं का वसौकिक पावन प्रेम<sup>१५</sup> उनके व्यक्तित्व को प्रमत्त ही प्रकट करता है। मनोभावों के अंतर्गत व्यक्त उनकी वैरना भी उनके स्नेही स्वरूप की ही परिचायक है। प्रिय प्रवास की गोपिकाएँ परम्परा से अनुप्राणित होकर भी अपना निबलन रक्षती हैं और यह निबलन उनका अनन्य प्रेम-मय व्यक्तित्व ही है।

### साकेत के अन्य स्त्री पात्र

साकेत की कथावस्तु में अन्य नारी-पात्रों के अन्तर्गत मंथरा एवम् उर्मिला सभी सुलसभा का नाम धाता है। सुलसभा के नाम का उल्लेख<sup>१६</sup> केवल एक स्थल को छोड़कर कहीं नहीं हुआ है। यदि सुलसभा को ही उर्मिला की एकमात्र सखी समझा जाये तो उसका चरित्राकृत साकेत में सामान्य सचित्र ही उपस्थित होता है। संयोग के लक्षों में वह हास-परिहास में योग देती है वियोग के क्षणों में वियोग उद्गारों की साक्षी बनती है और विधि के नाम में रहने का आराधन लेकर धैर्य धारण करने की सलाह देती इष्टियोधर होती है। किन्तु सुलसभा ही उर्मिला की एकमात्र सखि नहीं है। 'सखियाँ अनेक समझाती थी'<sup>१७</sup> जैसी पंक्ति सुलसभा के एकमात्र सचित्र में वाचक है। अठ साकेत के अन्य नारी पात्रों के नाम पर, चरित्र विषय की दृष्टि से मंथरा ही बच जाती है। मंथरा की चरित्र-सृष्टि संक्षेप में इस प्रकार है—

मंथरा—साकेत की कथावस्तु में मंथरा की चरित्र-सृष्टि अपने परम्परागत कुटुम्बा स्वप्न में ही उपस्थित होती है। साकेत के सुमन-सेन को कीट बने मंथरा के नेत्र धमने नहीं देते हैं।<sup>१८</sup> उसके नाम बचन एवम् छूर कपाल को ठोक कर भास फूटने की बात जताना<sup>१९</sup> उसके कुटिल सखिया स्ववचन की ही व्यवसाय करते हैं। कैकेयी के समक्ष वह घर में कीच उड़ानेवाली नीच एवम् रस में विष बोलेनेवाली नागिन ही साबित होती है।<sup>२०</sup> स्वयं को नित्य अपराधी मनुष्य बह कर क्षमायाचना

११ अ प्रिय प्रवास १४। ११।

१२ वही १४। १४१।

१३ वही १४। १४०।

१४ साकेत पु० १६०।

१५ वही पु० १६०।

१६ वही पु० ४३।

१७ वही पु० ४४।

१८ वही पु० ४६।



करते हुए भी, समस्त में जानेबाले मर्म को कहना, अपना धर्म बता कर<sup>४१</sup> वह जिस बूट कौशल से अपने उगले पहार की ओर झुल्लुट कर जाती है वह उसे मूढ़ि माया विगी ही सिद्ध करता है। मंचरा का यह ठाढ़ जाना कि ककेयी का जातगेह आत्म-मुक्ती पहाड़ बना हुआ है<sup>४२</sup> उसकी विघ्न-सतोषी कुटिला बुद्धि का परिचायक है। उसकी उदासी उसकी क्षमायाचना और उसका कपाम पीटना—सभी उसे बहुर की बुझी ही सिद्ध करते हैं। उसका व्यक्तित्व उस कुटिला नारी का व्यक्तित्व है जो नारी सुमम बुबलता का उपयोग कर अपना उम्भू सीधा करने में परम पटु होती है।

### नूरजहाँ के अग्र्य स्त्री-पात्र

सर्व सुन्दरी—नूरजहाँ की बचपनस्तु में सब सुन्दरी की चरित्र-सृष्टि मेहर सभी के रूप में उपस्थित होती है। वह बाका क जमीनार मरहर की पुत्रबद्ध एवम् विमल राय की पति-मरायण पत्नी है। सर्व सुन्दरी नूरजहाँ के विमलते हृदय पर बंक्रुत का काम करती है। मर्यादा छोड़कर किसी के लज्जे न चाटने की बात कहते हुए जब मेहर उत झिठ हो उठती है तो सर्व सुन्दरी उसे जान्त करत हुए, बर्मपूर्वक जीवन की कठिनाइयों का सामना करने की सलाह देते हुए, सारे समुद्र-सा पति पाकर भी उसे सुरसरी के समान बहने की सलाह देती दृष्टिपोषण होती है।<sup>४३</sup> वह विषाह को व्यापार नहीं समझती और उसका आदर्श मेहर को लभिक देह-सुख के स्वप्न देखना छुड़वाकर देवी बनाने का रखता है।<sup>४४</sup> वह मेहर को चार दिन के इस जीवन में पच भ्रष्ट न होने की राय देते हुए, मास की जनमोस मणि के रूप में बेचना चाहती है।<sup>४५</sup> पति का सिर डेरजफ़्तन द्वारा उड़ा दिये जाने पर वह सिन्नूर-बिहीन माँग में रजमरे योविनी के रूप में उपस्थित होती है और एक मिहारी के समान बीवी को पेश करने जानेबाले डेरजफ़्तन एवम् मेहर दोनों को उसका धीम्र ही वह दिन बेसने का खत्रि पाप देना जिसमें प्रिय-बिछोह की लड़फ़न होती है<sup>४६</sup> उसके नारी-मन के आक्रोश एवम् नारी सुमम बुबलता को व्यक्त करता है। डेरजफ़्तन की मूरपु के पक्षपात वह मेहर के समस्त स्वयं के बर्म का उदाहरण रखते हुए, उसे भी बर्म-भारण की सलाह देती है।<sup>४७</sup> मेहर के समस्त व्यक्त जीवन-मरण विषयक उसके चक्षुष्य<sup>४८</sup> उसे एक विदुषी नारी के रूप में ही उपस्थित करते हैं। वह मेहर को जीवन की बची बेटी की

४१ सल्लेख पु० ४७।

४० वही पु० १६।

४१ नूरजहाँ पु० ७८।

४२ वही पु० ८६।

४३ वही पु० ६०।

४४ वही पु० ११३।

४५ वही पु० १२०।

४६ वही पु० १२० से १२२।

बनचर्यों से राजासी करम की चेतावनी देत हुए, उसे जीवन के आपसय क्षणों में मंद सहरी होकर, भूतम-हृदय-राशि पर सहरी की छाप छोड़ जाने की सलाह देती है।<sup>४७</sup> इस प्रकार सर्व सुन्दरी का व्यक्तिस्व आदर्श भावना और विवेक से अनुप्राणित होकर अपनी लज्जा में ही महान साधारणता में भी असाधारण एवम् सकटावस्था में भी सहजबीन है।

महर्षिह की पत्नी—मुरखहाँ की कथावस्तु में महर्षिह की पत्नी की चरित्र-वृद्धि प्राथमिक माप है किन्तु प्रभावसूय्य नहीं है। वह एक बीर रमणी के रूप में उपस्थित होती है। पति हाथ बगाल प्रस्थान की अनुपति चाहने पर विक्रम होकर भी वह पति की विजय-कामना करते हुए, बीर-वर्म का पासन कर जीवन समर बनाने की बात कहती रहिबोकर होती है।<sup>४८</sup> किन्तु वह जानकर कि वह युद्ध में नहीं हल्ला करने जा रहा है तो वह ऐसे पवित्र कार्य के लिए उसकी आर्चना करती है। ऐसी नीच दासता को त्यागने की सलाह देती है जिसमें विवेक नहीं है। और स्वार्थ के लिए किसी देश-बोही के समुहों के बाटने के बजाय नीक माँपने या राजा के समान दाने-दाने को छरसते हुए वन में बटकने को अच्छा समझती है।<sup>४९</sup> ऐसे नीच कर्म करनेवाले का वह मुँह तक बेचना पसन्द नहीं करती और हठ के नाम पर यदि पति जाना ही चाहे तो पहले फटार से अपना अठ करने की याचना करती है।<sup>५०</sup> इस प्रकार अपने बोधपूर्ण उद्बोधन हाथ वह पति के हृदय-परिवर्तन का कारण बनती है और उसका व्यक्तिस्व क्षात्र-वर्म की आभा से आलोकित एक बीर नायि का व्यक्तिस्व सिद्ध होता है।

सिद्धार्थ की मुजस्ता—सिद्धार्थ की कथावस्तु में मुजस्ता की चरित्र-वृद्धि एक सरल हृदय गृहस्थ नायि के रूप में उपस्थित होती है। कथावस्तु में उसका स्वल्प प्राथमिक माप है। मुजस्ता एक महावती उत्तम भूमिहार की सुनोचना कथनकी बना मनी सुशीला पतिप्रोदयामिनी मुनेहिनी है।<sup>५१</sup> ग्राम में जाकर पीरबान्धिका होकर भी पुन-पुन्य जीवन के कारण उसका कुद्विषत रहता है<sup>५२</sup> उसकी नायि सुवन मन्द-कमना का परिचायक है। वन-वेष्टता की आर्चना के परचाय उसकी नायका के पूर-हृद ही क्षीरोदन लेकर उसका वन में पहुँचना एवम् पीठय की ही 'अन्देखा' मानकर, क्षीरोदन में डेरते हुए विनय करना<sup>५३</sup> उसके स्वभाव की सुगन्ध एवम् प्रसिद्धि

४७ मुरखहाँ पृ० १२१।

४८ वही पृ० १००।

४९ वही पृ० १०१।

५० वही पृ० १०२।

५१ सिद्धार्थ पृ० २०८।

५२ वही पृ० २१०।

५३ वही पृ० २१२।

आवना का दोस्त है। भीतम के पात्रों में वह 'कुसांगना उदारता की प्रति-मूर्ति एवम् स्वयम् के अतिरिक्त अन्य किसी वर्ग को न जानने वाली'<sup>१४</sup> है। कुल मिला कर मुवाठा का व्यक्तित्व एक स्वयम्-परायणा गृहस्थ नारी का व्यक्तित्व है।

### साकेत-संत के अन्य स्त्री पात्र

साकेत-संत की कथावस्तु में अन्य स्त्री-पात्रों के रूप में मंजरा एवम् अक बति का उल्लेख हुआ है, चरित-विषय नहीं। मंजरा के नाम का सर्व प्रथम उल्लेख मुवाठि द्वारा हुआ है। एक दृश्य में ही सब कुछ समझने वाली इस दासों की दाय को वे अन्य समझत हैं।<sup>१५</sup> भरत द्वारा उसका उल्लेख 'कैकेयी की मन्त्रापी'<sup>१६</sup> के रूप में हुआ है एवम् खट्वाण्ड इसे अविषय छोटी समझ कर पीटते हृदिगोचर होते हैं।<sup>१७</sup> अतः साकेत-संत में मंजरा का व्यक्तित्व विषयनों द्वारा ही व्यक्त हुआ है, उसके काम-कलापों द्वारा नहीं। इसी प्रकार कैकेयी के भुनिपय के घर जाने के प्रसंग में अक बति का उल्लेख तपस्वी की स्वयं तप-सिद्धि-सी<sup>१८</sup> के रूप में हुआ है। रानी के बाँधुनों की तीव्र चारा बहूत देख कर वे ककुमाद हो उठती हैं और सस्नेह रानी को छत्रकर निज घर से सगाकर उसका ताप बटाती<sup>१९</sup> हृदिगोचर होती हैं। साकेत-संत की चरित भूमि में उक्त दोनों ही स्त्री-पात्रों का न तो मनोभावों के परंपरित स्वयं व्यक्त होने वाला है और न उनके चरित का विषय ही। फिर भी अन्य पात्रों के कथन एवम् वर्णनात्मकता द्वारा उन्हें एक भूमि-सा व्यक्तित्व प्रदान किया गया है।

### कुष्माण्ठ के अन्य स्त्री पात्र

कुष्माण्ठ की कथावस्तु में कुष्मन्-चरित से सम्बन्धित अनेक स्त्री पात्रों की चर्चा हुई है। अशिकांश पात्रों की अवतरणा नायक के सौम्य-प्रवृत्तार्थ कथा कथा को विविधता प्रदान करने की दृष्टि से, महाभारत की विभिन्न प्रासंगिक उपकथाओं के अनुरूप ही पात्रों के माध्यम द्वारा व्यक्त हुई हैं। अतः तर्पणत् उल्लेखाने अशिकांश स्त्री पात्र अपने साकेतिक स्वरूप के अतिरिक्त विशेष व्यक्तित्व प्रह्व नहीं कर पाये हैं। उदा<sup>२</sup> लक्ष्मणा<sup>२०</sup> परिणय प्रसंग उदाहरणार्थ सामने रखे जा सकते हैं। कंस-चेरी कुबजा अवस्थि रानी, देवमाता अवस्थि ईश्वर-पत्नी दधि उद्विपन मुनि-पत्नी अशिमय्यु-पत्नी उत्तरा जोषारी आदि का भी कुष्माण्ठ की

- १४ सिद्धार्थ पृ० २१३।  
 १५ साकेत संत पृ० २।७२।  
 १६ यही पृ० ३।३६।  
 १७ यही पृ० ३।३९।

- १८ यही पृ० ६।४।  
 १९ यही पृ० ६।१०।  
 २० कुष्माण्ठ पृ० ३५२।  
 २१ यही पृ० ३५४।

कृष्णवस्तु में केवल प्रायः निराश्रित ही हुआ है, चरित्र-चित्रण नहीं। अथवा मारी पार्श्वों में उसे केवल पात्र कुटी एवम् सुमरा है जिसका व्यक्तित्व निरूपण संक्षेप में इस प्रकार है:—

कुटी — कृष्णवस्तु की कृष्णवस्तु में कुटी की चरित्र-सृष्टि पाण्डव-माता के रूप में उपस्थित होती है। अक्षर के कौरवपुरी प्रवेश के समय कुटी अपने श्वेत वैभव वस्त्रों में यत् छवि विवश-उदित छवि-नेलावत्<sup>६१</sup> इतिगोचर होती है। पाण्डवों को शोक जानकर अपने मातुल के उत्तरवाचित्य का पासन करने की बात करते-करते अक्षर हो पाती है। सुतो छलित निज महीन बात सहन करने की बात करते-करते अक्षर के समस्त उदका व्यथा-विज्ञाप<sup>६२</sup> जहाँ उसकी मारी सुमरा दुर्बलता का घोटक है वहीं उत्पन्न-विद्या प्रदर्शन के समय कर्ण को अपमान भय से अपना पुत्र न कह पाया अक्षर कर मूर्छित होना एवम् केतना प्राप्त करने पर शर-माहव भीत पुत्री के समान दृष्टिगोचर होना<sup>६३</sup> उसके मातृ हृदय के नैसर्गिक प्रेम का परिचायक है। इसी प्रकार मर में स्वयंवर-शाय की बात छोड़कर पुत्रों के देर तक न जाने पर उसके मन में उठनेवाले तर्क-वितर्क ऐसे ही अन्धों में नीम का 'मल्ल मिला' जाने का स्वर एवम् कुटी का घर के भीतर से ही प्रमुचित मन से प्रकट होनेवाला आदेश<sup>६४</sup> उसके मातृ हृदय के नैसर्गिक प्रेम का परिचायक होते हैं। हरि के दर्शनों में कुटी क्षमाली माता धर्म की शान एवम् विना अवसम्भ ही माता-पिता के कर्तव्य का पालन करने वाली वह पुष्प स्वस्वता मारी है जिसके पुष्प के कारण ही पाण्डव 'विभुवन उजियारे' होते हैं।<sup>६५</sup> अति मनु-मन के समाचार प्राप्त कर भी कुटी माता सत्य बोधिता<sup>६६</sup> ही दृष्टिगोचर होती है। पुत्रों से लगाकर पौत्र तक प्रसारित उसका स्नेह भाव उसके मातृ स्वस्व का ही व्यञ्जक है। उसकी कष्ट सहिष्णुता उसका धर्म उसकी वात्सल्यजनित मादुरता निरूपण सभी उसके गरिमाय मातुल की परिचायक हैं। संक्षेप में, कुटी का व्यक्तित्व कृष्णवस्तु में एक पुष्प स्वस्वता स्नेहशीला माता के व्यक्तित्व के रूप में ही व्यक्त हुआ है।

सुमरा:—कृष्णवस्तु की चरित्र श्रुति में सुमरा की चरित्र-सृष्टि कृष्ण मयिनी अर्जुन-पत्नी एवम् अतिमन्त्र-माता के रूप में उपस्थित होती है। इस सावधमयी मनुमायिनी के मन में अर्जुन के प्रति प्रथम दर्शनमय अमुष्मन् का प्रथम होता है<sup>६७</sup> और 'मृग-विषु सहस्र अपन मोली पति की माता-पिता मनुमन गुणित एवम् सुरजन

६१ कृष्णवस्तु पु० २३४।

६२ वही पु० २३५।

६३ वही पु० २३५।

६४ वही पु० ३०७।

६५ वही पु० ३०८।

६६ वही पु० ३०९।

६७ वही पु० ३१७।

प्राण-पियारी<sup>१२</sup> इस कुमारी का हरि-अनुमति से वन-विहार के समय अर्जुन द्वारा हरण होता है।<sup>१३</sup> हरि-कीर्ण एवम् नीति के कारण युद्ध प्रसंग टल जाता है और सुमित्रा अर्जुन-पत्नी बन जाती है। कुन्ती के लिए यह 'यदुर्वंश प्रजाया नभू' पुत्रक का कारण होती है, पांचाली उसकी सुवास स्वरूप एवम् सुनीलता देखकर उसे भगिनी के समान मानती है और अर्जुन के लिए सुमित्रा 'देह-नारी हरि-श्रीति' सिद्ध होती है।<sup>१४</sup> अभिमन्यु-वध के उपरान्त उसकी अयु-विहीन गंभीर पीड़ा एवम् हरि को देखकर उसके वदन से सावर-भार की तरह बहुजवाल उद्गार,<sup>१५</sup> उसके जननी सुमम विपाद तथा विपादजन्य उत्ताप के परिणामक है। उसकी अन्तर-वाप्य उसके मोह विपाद की श्रोतक है। हरि क संघर्षों में वह 'वीरजा वीर पति इक्ष्वा भीर जननी वीर ह्य भगिनी'<sup>१६</sup> साबित होती है। संक्षेप में सुमित्रा का व्यक्तित्व हरि-भगिनी के अनुरूप ही है।

रावण की केतुमती — रावण की कथावस्तु में केतुमती की चरित्र-सृष्टिमय की माता एवं रावण की मातामही के रूप में उपस्थित होती है। सर्व प्रथम केतुमती कन्या के लिए योग्य वर की धिता से चिन्तित इक्ष्वापोचर होती है और उसके मन में यह भाव जागृत होता है कि अगर कन्या के अनुकूल वर प्राप्त न हो सके तो वह साध वन-बीमब युवा है।<sup>१७</sup> इसी प्रकार कुबेर को देख कर मनुहारपुत्रक पति से उसका कुबेर के सम्बन्ध में पूछना और अन्य भाव का संकेत करना<sup>१८</sup> उसकी वही उद्दिष्टता का परिणामक है जो कन्या-वर प्राप्ति-कामना के रूप में उसके हृदय में जागृत होती है। पुत्री को समझा-बुझा कर विषया मुनि के यहाँ भवते समय 'गव शीरव' को प्राप्त करने की उसकी भावना जहाँ स्वाभाविक है वहीं पुत्री के नाम मोचन को फड़कते देख कर मनोकामना पूर्ण होने का अनुमान कर हृदय में आनन्द का न समाना घी<sup>१९</sup> नारी सुलभ है। वसमुक्ष के जति पाठ को देख कर उसके आनन्द अम्बुधि का बढ़ना<sup>२०</sup> उसके मातामही स्नेह भाव का परिणामक है। क्रुश मित्रा कर केतुमती का व्यक्तित्व एक कुस-हित-कांक्षिनी नारी का व्यक्तित्व है जो उद्भूत एवम् आनन्द-भाव से अनुप्राणित रहता है।

६९ कृष्णायन पृ० ३५८।

७० वही पृ० ३६१।

७१ वही पृ० ३६१।

७२ वही पृ० ७०५।

७३ वही पृ० ७०६।

७४ रावण महाकाव्य १। २१।

७५ वही पृ० १। २८।

७६ वही पृ० १। ३५।

७७ वही पृ० ४। ६।

## विहंगमशैलीकन

हिन्दी-महाकाव्यों की चरित-भूमि पर हमी ने राखन महाराज्य तक एक विहंगम दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी-महाकाव्यों की चरित भूमि अपनी चरित्राकन-साधना में विविधतापूर्ण एकता लेकर चली है। चरित्राकन पार्श्व में बड़ा कामानुसार्य की अद्भुत समता परिलक्षित होती है, वही महीनता की ओर में तुरीय साधना-सम्य दृष्टि को भी नहीं भुलाया गया है। नारी-जीवन के सांख्यिक सावसी एकम् रात्रम-स्वरूप की व्यञ्जना के साथ-साथ अद्-असद् के विवेचन में मनोर्न शानिक सुत-बुल का भी आघय ग्रहण किया गया है। हिन्दी-महाकाव्यों की नारी जहाँ आदर्श से अनुप्राणित है उषम् पातिव्रत्य का स्वर जहाँ अग्य स्वरों से कुछ अधिक ऊँचा है वहीं नारी की कर्तक-कामिना को बोलने में भी सहृदयता से काम लिया गया है। कौटिली तथा मृपेता की चरित्र-मण्डि उषम् उनका परिचरन होता स्वरूप हमरा प्रमाण है। काम की उपेक्षाएँ भी अधिक काम तक उपेक्षित नहीं रह पाई हैं। पूणा का वह स्वर जो आरम्भ में नारी के प्रति प्रयुक्त हुआ है धीरे-धीरे विमुक्त होता गया है। आश्रित्य दुर्बलताओं एवम् विरोधनाओं के प्रदर्शन में भी पक्षपात से काम लेने की प्रवृत्ति हृदयोपर हावी है। प्राचीन पात्र की आधुनिकता से अनुप्राणित ज्ञान पड़े हैं। दूसरे मध्यों में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की चरित भूमि को सन्त जो बौद्धिक साह प्रदान किया जाना रहा है उसने केवल उसकी उन्नत-मक्ति को ही सम्पन्न नहीं, उसने अद्भुत बीजों को भी परिपुष्ट एवम् उन्नत किया है।



## चतुर्थ अध्याय हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि

- भावों के अंतर्गत नारी-जीवन और उसके विविध स्वरूप ।
- विमात्रों के अंतर्गत नारी के विविध आश्रय स्वरूप  
एवम् उसकी उद्दीपनमयी घटनाओं का निरूपण ।
- अनुभावों के अन्तर्गत नारी के कायिक मानसिक  
एवम् सात्त्विक कार्य-कलाप और उनका स्वरूप ।
- संचारी भावों के अंतर्गत नारी-जीवन की  
विविध तरंगवलियाँ ।
- भावभूमि की विशेषताएँ ।





**हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि के अंतर्गत नारी-जीवन पर विचार करते**

समय हमारा ध्यान काव्य की उन रमणीय भावना की ओर आकर्षित होगा है जहाँ स्थाई भाव विभाव अनुभाव एवम् संचारी भावों से संपृक्त होकर हृदय में अतीतिक एवम् विमलानन्द की मूर्ति करते हैं। पुस्तकी के मशानुसार काव्य का सङ्गभाषों के उपपुस्त विषयों को सामने रख कर मूर्ति के भावा कर्षों के काम मानव हृदय का सामञ्जस्य स्थापित करता है।<sup>१</sup> प० रामरहित मिय के कथनानुसार रसों की व्याख्या भावों का मनोचिन्तन है।<sup>२</sup> साथ ही भाव ही रस के मूल प्रवृत्तिक एवम् जीम के उद्घाटक है।<sup>३</sup> अतः हिन्दी-महाकाव्यों की भावभूमि पर विचार करते समय नारी-जीवन के विवेचन का आधार रस मातृवीय विवेचन द्वारा ही उपायेन हो सदा है क्योंकि रस के मूल में भावों का निवास है।

**भावों के अन्तर्गत नारी-जीवन और उसके विविध स्वरूप**

भाव मन के विचार माने जाते हैं। प्रत्यय-बोध अनुभूति और वेदपुस्तक प्रवृत्ति—इन तीनों के ब्रह्म सदन का नाम भाव है।<sup>४</sup> विषयी रस में सदा स्थिति होती है जबका रसानुबन्ध हृदय में जो विचार उत्पन्न होता है, उसे स्थायी-भाव कहते हैं।<sup>५</sup> रति हास भोक्, ओक् उल्लाह भय ग्लानि आरचन और निर्वेद स्यायी भाव माने गए हैं। इन्हीं भावों के अंतर्गत हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में नारी-जीवन और उसके विविध स्वरूप की व्याख्या संक्षेप में इस प्रकार है —

१ रस-मीमांसा पृ० १५१।

४ वही पृ० १५५।

२ काव्य-दर्पण पृ० १११।

५ रस-कतत पृ० १।

३ रस-मीमांसा पृ० १५१।

रति-भाव के अंतर्गत नारी-जीवन की प्रेममय ध्वनना हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में अत्यन्त विविध रूप में दृष्टिगोचर होती है। सब प्रथम हमारा ध्यान सदा एकरस रहनेवाली उस अनन्य प्रीति की ओर जाता है, जिसे उत्तम-रति की संज्ञा प्रदान की जाती है। इस अनन्य प्रेम-साधना में आत्म-ज्ञान भी पीछे छूट जाता है—

झल पहर बौलब झरो स्वामी का ही ध्यान,  
छुड़ गया पीछे स्वयं उससे धारम ज्ञान ॥<sup>१</sup>

धौन धा भय भी इस प्रेम को पराभूत नहीं कर पाता क्योंकि—

इत कोमल तन के भीतर है, हृदय कोर का मंडल ।  
बिसमें न कभी घुस पाये हैं बिहव छुड़ेरों के दल ॥<sup>२</sup>

असम्भव के सम्भव हो जाने के पश्चात् भी इस प्रेम-वृद्धता के विचलित होने की कोई आशंका नहीं है—

हो के विभिन्न, रवि का कर, तप त्यागे ।  
देवें मयंक कर की तब माधुरी भी ॥  
तो भी नहीं बल-बरा-जग के चरों से ।  
जलुन धूर्ति मनमोहन की कड़ीनी ॥<sup>३</sup>

बड़ी-से-बड़ी पारम्यिक शक्ति को भी यह प्रेम चुनौती देता दृष्टिगोचर होता है—

हयाम सरोज बाम सन सुम्बर । प्रभु भुज करि कर सम बलकंबर ।  
सो भुज कंठ कि तब घडि घोर । सुनु सठ बल प्रमाण पल घोर ॥<sup>४</sup>

इस अनन्य प्रेम-साधना के समझ भूख-प्यास भी वृथा सिद्ध होती है। न वेह की मुछ रहती है और न काम का ज्ञान । क्योंकि—

वित नव करन उपन घगुरागा । बिसरी बेह तपहि मन नाया ॥<sup>५</sup>

इस अनन्य प्रेम की पूजा और पुजापा भी अनन्य ही है—

और मैं ? तुम्हें हृदय में बाप,  
बधु भी धर्म धारणी भाव ।  
बिहव की सारी कामित समेट  
कक भी एक तुम्हारी खेट ॥<sup>६</sup>

१ लाकेत पृ० २६८ ।

७ मुरखर्हा पृ० ३२ ।

८ प्रिय-प्रदात १३ । १४१ ।

२ भावत, सुम्बरकाण्ड पृ० ८०७ ।

३ भावत, बालकाण्ड पृ० ८१ ।

४ लाकेत संत १ । ४४ ।

मध्यम-रति के अंतर्गत पाई जानेवाली परस्पर प्रीति एवम् मैत्री भावना के भी वर्णन होते हैं। यथा—

हृदय लक्ष्मण ने दुरजित बड़ा दिये,  
धीर बोलै 'एक परिचर'ल दिये।  
सिमर ली सहसा गई प्रिय की प्रिया,  
एक तीक्ष्ण धपांग ही चलने दिया।  
किन्तु पाते में उसे प्रिय ने किया,  
धाय ही फिर प्राप्य धपना ने लिया।<sup>११</sup>

स्वार्थ से परिपूर्ण अन्धम रति-भावना का भी हिन्दी-महाकाव्यों की गायी में अभाव नहीं है। जोकों में बस कर अपना उल्लू छोड़ा करने की प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है—

जगकी छाँकों में बस कर पुनछरें बूब जड़ाऊँ।  
धपना उल्लू छोड़ा करने की पुनपुन उल्लू बनऊँगी।<sup>१२</sup>

प्रेम के उत्तम मध्यम एवम् अन्धम स्वरूपों के अतिरिक्त रति-भाव के अंतर्गत माटी-जीवन के संबोधात्मक एवम् शिष्योपात्मक स्वरूप के भी वर्णन होते हैं। मंपोष के क्षण परस्पर दर्शन के समय उपस्थित होते हैं। ऐसे क्षणों में हिन्दी-महाकाव्यों की माटी या तो अपने मुकुरा स्वरूप में या पुरिज्य-विज्ञासु रूप में अथवा स्नेह-प्रस्फुरण के कारण झुकती उतरती अवस्था में दृष्टिगोचर होती है—

ललित छोड़ा जैव दिखनाकर धरा।  
जजिला ने लल कर प्रिय को कहा—  
धीर भी सुमने किया कुछ है कभी,  
या कि जुगने ही पड़ाये हूँ धरती ?<sup>१४</sup>

या

कौन जुग ? संसृति जल निधि तीर,  
तारों से फँसी भलि एक  
कर रहे निर्जन का पुपचाप  
प्रभा की धारा से धमिलेक ?<sup>१५</sup>

११ साकेत पृ० ४०।

१४ साकेत पृ० ३३।

१३ दूरबहा पृ० १०७।

१५ रामायणी पृ० ४३।

इस भावुकता का परिणाम यह होता है कि व्याधा भी व्यक्त नहीं की जा सकती क्योंकि—

हाड़ भए सब किमरी नसे भई सब ताँति ।

✓ रोंब रोंब तें धुनि पड़े, कहों बिना केहि माँति ?<sup>१०</sup>

उसका यों विकल विमना एवम् व्यस्त हो उठना कोई विविधतापूर्ण बात नहीं है। वह स्वयं इसका अनुभव करती है और स्वयं इसके कारण पर प्रकाश डालते हुए कहती है—

मैं नारी हूँ तरल घर हूँ प्यार से बँधिता हूँ ।

जो होती हूँ विकल, विमना व्यस्त बँधिब्य बसा है ॥<sup>११</sup>

और इसीलिए प्रिय-विशेष में उसकी अवस्था कुछ ऐसी हो जाती है—

जरे एक बेनी मिली मनसारी ।

भुलासी मनो पंक तें काहि डारी ।<sup>१२</sup>

इस प्रकार हिन्दी-महाकाव्यों की यह सती नारी मानस-मंदिर में पति की प्रतिमा बाप कर बिरह में जलती-सी स्वयं जारती बन जाती है।<sup>१३</sup>

पूज विषयक रति के अंतर्गत नारी के वात्सल्य भाव की व्यंजना उसके मातृ स्वरूप की ओरक है। हिन्दी-महाकाव्यों की मातृ-भूमि में नारी-जीवन के इस महत्वपूर्ण अंग—उसके मातृत्व—की जो सशक्त दृष्टिवोहर होती है वात्सल्य के संयोग एवम् विमोच दोनों ही पक्षों के अंतर्गत मातृ हृदय का जो स्वरूप सामने आता है वह अपने आप में महाद् है। संयोग-मल के अन्तर्गत वात्सल्य-भाव अपने स्वाभाविक स्वरूप में व्यक्त हुआ है। हस्तपला-धुसपला घुमना-पुचकारना डाटना-फटकारना समझाना धिक्कारते जाने पर लीज कर मारना-मीटना बालक को ध्वस्त या उदास देखकर अपने किय पर पश्चात्ताप करना इस मनोवेचना के क्षणों में निकामत करनेवालों को कोसना आदि ऐसी क्रियाएँ हैं जिनके अन्तर्गत नारी-जीवन का मातृ स्वरूप अपने स्वाभाविक रूप में हिन्दी-महाकाव्यों की मातृ भूमि में उपलब्ध हो आता है। हस्तपादन के 'अमरक कांड' के प्रारम्भिक पृष्ठ उदाहरणार्थ सामने रख जा सकते हैं। मानस के 'बालकांड' के अन्तर्गत भी मातृ स्वरूप की वात्सल्यमयी आंकी आधिक रूप में दृष्टिवोहर हो जाती है। चिद्वार्ध के तृतीयसर्ग 'उन्मेष' में भी आधिक रूप में मातृ स्वरूप के वात्सल्य-भाव की व्यंजना हुई है।

यह मातृ स्वरूप केवल वास्तव्यकाय तक ही सीमित नहीं रहता है। पुत्र के मृत्वा हो जाने पर भी मारी का वास्तव्य भाव अपने मातृ स्वरूप का परिणाम नहीं कर पाता। मृत्वा राम को खोज पाकर नीलम्बा का वास्तव्य भाव जिस रूप में प्रकट हुआ है वह मारी ने सहज मातृत्व का ही चोटक है। यथा—

बार बार पुत्र कुर्वति यत्ना । अयन मेह बसु पुनर्विज यत्ना ।  
गोद राखि पुनि हृदय अयाये । जगत प्रेम रस पयस सुभाये ।<sup>३१</sup>

कुसुम में 'कान्हू' नाम मात्र सुन कर यमोश का विकल हो उठना नयनों में अश्रु क्षयमान होने के कारण कुछ चिराई में पड़ना और 'पुरातन परश' से ही पुत्र को पहचानना वास्तव में मातृत्व के उस वास्तव्य भाव का ही परिचायक है जो 'बमस्क यदुराई को भी पक में भर कर हिय-बीतस आनन्द अश्रु बहावा हुआ इस प्रकार दृष्टिगोचर होता है—

विधुक्त हस्त विधु बदन विसोकसि,  
तिल कपोल सस्निग्ध पुन मोचति ।  
धेरति मस्तक कर महुतारी,  
विह्वल भी हरि विस्व विचारी ।<sup>३२</sup>

अपनी कुटिलता से कर्मविज होकर भी यह मातृत्व अपने सहज स्नेह का परिणाम नहीं कर पाता। वह अपबाध को सहन कर सकता है चिरकाय तक 'नरक मोय' छूटा है किन्तु उसके मन का प्यार केवल पुत्र का प्यार पाने की आकांक्षा रहता है—

कँकेयी चिन्ता उठी सोम्बा—  
सब करें मेरा महा अपबाध,  
किन्तु उठ भी भरत मेरा प्यार,  
चाहता है एक तेरा प्यार ।<sup>३३</sup>

विद्योपायस्वा में यह आत्मस्थ भाव और भी अधिक निखर उठता है। ऐसे अर्थों में मारी के मातृ हृदय की आकृष्यता-विकष्यता उनके जिस विद्योह-विदग्ध स्वरूप को स्वतः कही है, वह स्वरूप मातृत्व की महात्वा का ही व्यञ्जक है। मारी के अन्तर से उठनेवाला वास्तव्यवर्णित यह हाहाकार, अथ उताव ग्लानि चिन्ता विनय प्रसाप उग्रमाद आदि से परिपूर्ण हो उठता है और उसका मातृत्व भूतिमान होकर अपनी उपमा भाव ही हो जाता है।

३१ मानस प्रयोध्याकांड पृ० ४२२ । ३२ सार्वत पृ० १६५ ।

३३ कृष्णायन पृ० २१६ ।

पुनः-प्रयाण का प्रसंग गिफ्ट उपस्थित होता ही मारी का मातृ हृदय व्याकुल हो उठता है। बार-बार पट हटाकर मुल का मुख गिहारते हुए, बिछोह की कल्पना से अधुम्बार सा उठना स्वाभाविक है किन्तु पुनः की निद्रा भग का भय वात्सल्यवर्धित पुनः-प्रयाण को वात्सल्यवर्धित समय द्वारा रोकने का प्रयत्न करता है और—

हरि न जाय उठे इत सोच से।  
मिलकसी तक भी नहूँ भी नहीं।  
इसतिहूँ उनका दुख वैष से।  
हृदय का जलना धन हो रहा ॥<sup>३४</sup>

किन्तु यह समय पुनः-प्रयाण के साथ ही प्रयाण कर बैठता है और पट हटा कर पुनः का बारम्बार मुख गिहारनेवाली माता उठ-उठ कर बरसी पर गिरने लगती है—

बधा यमोमति बरनि न जायो पिरति धूमि, उठि कहति कम्हाई।  
बौरति बहुरि, पिरति पुनि बरखी, डेरति सुत कलपति नय बरनी ॥<sup>३५</sup>

इसके पश्चात् बिछोह-काम प्रारम्भ हो जाता है और प्रत्येक क्षण प्रत्येक वस्तु जगती-हृदय को 'सांसने' लगती है। बात-बात पर मातृ मन खींच उठता है और—

यदि बनि मयने को बैठती बसियाँ थीं।  
मयन रज उन्हीं का जन लेने न देता।  
यह कह कह के ही रोक देती उन्हीं से।  
तुन सब मिलके क्या काम को फोड़ बीपी ॥<sup>३६</sup>

मुत-बिछोह के इन क्षणों में ही सबियों के संस्कार भी बाधित हो उठते हैं और भारतीय मारी का अन्ध-मृगालु स्वरूप भी दृष्टिगोचर हो उठता है—

प्रतिदिन कितने ही देवता भी मगलती।  
बहु ध्यान कराती कम्ह के मुख से थीं।  
मिल घर पर कोई क्योतिवी थीं कुलसी।  
मिल प्रिय सुत भागा मुखने को यमोरा ॥<sup>३७</sup>

इसके बाव यह मातृ मन कहाँ है कहाँ है? की रट लगाने लगता है। पीड़ा सहते सहते निती को भी पीड़ा न पहुँचाने की भावना माता के अशुभ हृदय में भर कर लेती है और एक दिन यही उदात्त भावना विस्मय के स्वर में यों व्यक्त हो उठती है—

३४ प्रिय प्रवास ३। ३३।

३५ प्रिय प्रवास ५। १५।

३६ दुष्प्रयाण पृ० ११५।

३७ बही ५। १०।

छोना जाने लकुट न बुझता मैं किसी का ।  
 छोटी कोई न कर दूँ से लस ले-ले किसी का ।  
 पूरबी कोई जनमनर की बाँह ले जो न बेने ।  
 सोने का भी लहन न बिना दीप के हो किसी का ।<sup>३५</sup>

इसके अतिरिक्त मातृ हृदय के वात्सल्य भाव की आँखों शनैः पुत्री के लिए सुयोग्य घर की चिन्ता करते समय या अयोग्य घर मिसले पर परबाराप करते समय अपवा विवाहोपरान्त पुत्री को विवा करके समय भी रहिमोचर होती है । यद्यपि पुत्री परदाय बन है और उसकी विवा या विधोह अनिवार्य-सा हो जाता है फिर भी पार्वती को विवा करते समय मीना के निम्न उच्चार, मातृ हृदय की वात्सल्य भावना के ही शोभक है—

कत विधि लुनीं गारि अप यहाँ । पराधीन छपनेहुं मुक्त यहाँ ।  
 भै छति प्रेम विकल महतारी । नीरजु कीन्ह कुलमय विचारी ।<sup>३६</sup>

इस प्रकार हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में वात्सल्य-भावना की दृष्टि से माटी-जीवन का सबसे पद, उसका मातृ स्वरूप भी अपनी संपूर्ण परिचा के साथ अभिव्यक्त हुआ है ।

हास के संभव माटी-जीवन के उत्कृष्ट स्वरूप का भी हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में अभाव नहीं है । शास्त्रीय दृष्टिकोण से हास हास्य रस का स्थायी भाव माना गया है और विकृत आकार, भागी वेप तथा चेहा आदि को देखने से इस भाव का उदय होता है । वह कारमस्य एवम् परस्य दोनों रूपों में उत्पन्न होता है ।<sup>३७</sup>

भंगवत के विविध स्वरूप को देखकर कैंकेपी का हंसना कारमस्य हास्य का प्रतीक है । एक माटी हास दूसरी माटी के 'चिया करिब' को देख कर हास भाव का उदय होता है—

हँसि रह रावि पासु बड़ तोरे । दीन्ह लयन शिख सस मन मोरे ।<sup>३८</sup>

सामने जाने की विद्वति के प्रति मन में विचित्रतापूर्ण उक्ति के सुझ जाने पर भी यह भाव माटी के हास का कारण हो उठता है—

जाने छोरे कुहरे कुटिल कुबाली जानि ।

शिय विसेखि पुनि कैरि कहि भरत जानु मुसकानि ।<sup>३९</sup>

३८ प्रियप्रवत १० । १६ ।

३९ भागवत अष्टाध्यायी ५० । ५१२ ।

३९ भागवत, कालकांड ५० । १२४ ।

४० यही ५० । ५१४ ।

४० कस्य-कस्य ५० । १६६ ।



अपने मधुमय व्यर्थों से पुलकित होकर भी नारी का प्रमुखित स्वरूप रहिबोहर हो जाता है। यथा—

हंसी भांडवी प्रथम ताड़का,  
फिर यह धूर्पलका नारी  
किसी बिड़ासाही की जो बख  
झाले बालो है नारी ।<sup>४३</sup>

अथवा

ससिता स्वर तल्ली समय, प्रविशेउ युति समिराम  
मये सुप अय ती तजहु, ठन बिछा यमवधाम ।<sup>४४</sup>

बहुल क रूप म बुटकी भरत हुए भी नारी का विनोवी स्वरूप सामने अस्ता है—

पाकर गहा ! उमंग ऊनिला अंग मरे थे  
झाली मे हंस कहा 'कहाँ थे रंग मरे थे ?'<sup>४५</sup>

नारी के प्रमुखित स्वरूप की समक उस समय भी परिस्थित हो जाती है जब वह किसी रहस्यमय बात को हल्के-फुल्के बम से टाल देती है किन्तु रहस्य की मित्रस मन-ही-मन चुस कर उसके मुख पर हास्य अथवा मुस्कान क रूप में प्रकट हो जाती है। बसराम द्राघ बाल-बिड़ासा क रूप में कृष्ण के बारे में यह पूछने पर कि यह 'कहाँ से आया है, प्रसन्न के उत्तर के रूप में यद्योवा का 'कहाँ' का समाधान मधुमय रहस्यजन्य हास का ही कारण हो उठता है—

'तुम्हरेहि खेलन ~~है~~ मवावा'

हंसी महुरी हनवर मुख पावा ।<sup>४६</sup>

'विधेय वर्ग' से प्रमुख विधेयकों एवम् इन विधेयकों का जाल बिछानेवाले पुरुष की उद्विग्नता देखकर भी कभी-कभी नारी एक रहस्यमय हास्य से प्रमुखित हो उठती है—

कहा हंस कर 'अतिथि हैं मैं और परिचय व्यर्थ  
तुम कभी उद्विग्न इतने थे न इसके वर्ग' ।<sup>४७</sup>

छवियों से जब आये सज्जापूर्ण सत्कारवश नारी नारी के मध्य बसनेवासी सरस अर्थात् भी सरस हंसी का कारण बन जाती है और यह 'परिहास विधेय' नारी के सज्जा संयुक्त प्रमुखित स्वरूप को व्यक्त कर देता है—

४३ साकेत पृ० ४१२ ।

४६ कृष्णायन पृ० ३० ।

४४ कृष्णायन पृ० ५२० ।

४७ कामायनी पृ० ८७ ।

४५ साकेत पृ० ४६५ ।

‘तुमारे कौन समय ये खोड हूँ ?  
‘गोरे बैबर, स्याम जहूँ के खोड हूँ ।

बैबरी यह सरल भाव से कह गई  
तब भी मे कुछ सरल हुंसी हंस रह गई । ५०

इसी प्रकार अपनी किसी भी भी भूम पर अपने मित्रजन को हंसते या मुस्कराते रूप कर  
नारी स्वयं हंस या मुस्करा देती है और यह परस्पर हास्य नारी के लज्जा मिथित  
मानवित्व स्वरूप को प्रकट करता है । विमुक्त रचना की उत्पत्ति में बुरा बाने पर और  
लज्जा द्वारा हंस पड़ने पर जमिना के मुख से केवल ‘जरे’ ही नहीं निकलता बल्कि  
वह भी लजा कर हंस पड़ती है—

हंस पड़े सोमिज भावों से बदे,  
जमिना का बावय या केवल जरे’ ।  
‘रथ यह में ही गया, बैसा, रथो  
तुम विमुक्त करने जरी यों क्यों न हो ?’  
जमिना भी कुछ लजा कर हंस पड़े  
यह हंसो भी मोतियों की सी लड़ी । ५१

इसके विपरीत नारी अपने सामान्य जीवन के अंतर्गत भी अपने हास-परिहासमय स्वस्व  
में हसिखोबर हो जाती है । कहीं वह पुरुषों की मधुर-वृत्ति पर जोर करती<sup>४८</sup> दिखाई  
देती है और कहीं उनके जय-वागुर्व पर व्यंग-विनोद<sup>४९</sup> बत हिन्दी-महाकाव्यों की  
भाव-भूमि में नारी का वह उत्कृष्ट स्वरूप भी हास-परिहास एवम् व्यंग-विनोद से  
प्राप्तवान् हो उठता है ।

जोह के अंतर्गत हिन्दी-महाकाव्यों की नारी अपने कथ स्वस्व में दिखाई  
पड़ती है । नारी-मुलम मानुसता के कारण उलका हृदय लोक-संतत हो उठता है और  
यह संततावस्था नारी की ‘कवनामयी’ संज्ञा को प्राप्त करती हसिखोबर होती है ।  
बैबरी नारी-जीवन का सर्वाधिक कारविक स्वरूप है । इस लोक-वेश में वह कवना की  
मुक्तिमान प्रतिवृत्ति जान पड़ती है । यथा—

असमय मत बह बह अनु नारी भीति परति नहिं दूर कुमारी ।  
घागन म्नाग लता तनु लीला, लीला शिरोधु तुमन बिहीना ।

४८. साकेत पृ० १४७ ।

४९. बहरी पृ० १६ ।

५०. साकेत-सर्त १ । ४५ ।

५१. दृष्टावयव पृ० ३४२ ।

बसत इहेत, भूषण ग्रंथ नाहीं धवल कडोल पाणितत भाहीं ।  
बिबल उचित मानहु छवि सेवा यत छुति क्षेप रही कछु रेखा ॥<sup>५१</sup>

अनया

सारी इहेत जसत छिर कैंसे । सति परिवेष सोहू निति जैसे ॥  
चूरिन जिन इनि सोहू कभाई । मनहु मृनाल मयो मुरझाई ॥  
भूष मर रहित जसत मुख कैंसे । निति एकलंक मलिन बिभु जैसे ॥  
खजन मय भजन नहीं । भोजन ग्रह न करै मृग मान बिमोजन ॥<sup>५२</sup>

प्रिय-बिछोड़ के कारण भी नारी अपने कबल स्वरूप में दिखाई पड़ती है । जो मन का घन है और जिस पर जीवन का सारा साज-सुवार निर्भर है वही जब विरक्त होकर बस देता है तो नारी का विषाद लोक का रूप ग्रहण कर लेता है । उस समय की उसकी यह काव्यिक मूर्ति समीप कल्याणत परिलक्षित होती है—

रोबहिंरानी तबहिं पराना । सोधहि बार करहिं कष्टाना ॥  
चूरहिं गिब समरण जर हारा । अब का पर हुन करब विपारा ?  
बा कहूँ कहहिं रहसि के पीछ । सोइ जसा, काकर यह बीछ ॥  
मरे कहहिं ये मरे न पावहिं । उठै छावि सब लोग बुझवहिं ॥<sup>५३</sup>

अपनी परित्यक्तवस्था में भी नारी लोकाकुल ही बन पड़ती है । संघ्ना की उदासी की तरह एक नीरव कवचा उसे आच्छादित किए रहती है और उस समय का उसका वह लोकाकुल स्वरूप एकदम निस्तेज रंगहीन रेखाचित्र-सा दिखाई पड़ता है—

कामायनी कुसुम अनुषा पर पड़ी न वह मकरंद रहा  
एक चित्र बस रेखाओं का अब उसमें है रंग कहाँ ?  
वह प्रमत्त का हीन कला छवि फिरन कहाँ खिंची रही  
वह संघ्ना की रवि छवि तारा ये सब कोई नहीं वहाँ ॥<sup>५४</sup>

प्रिय के अविड की आशका मात्र से लोकाकुल हो उठनेवाली नारी के जीवन में कदवा का प्रामाण्य होगा स्वाभाविक ही है । अतः हिन्दी-महाकाव्यों की मात्र भूमि में उसके लोकाकुल स्वरूप की माध-व्यंजना भी पूर्ण सहृदयता के साथ व्यञ्जित हुई है ।

श्लेष के अतर्गत व्यक्त होनेवाले नारी के रौद्र स्वरूप की ध्वजना भी हिन्दी महाकाव्यों की मात्र भूमि में दृष्टियोग्य होती है । इच्छा-पूर्ति के मार्ग में अनरोध उत्पन्न होने

पर अपमान, अपकार या अपमान मुकजनों की निम्न सुन कर नारी म क्रोध-भाव बाधित हो उठता है और वह रौद्ररूपा दृष्टिगोचर होने लगती है। नारी का यह क्रोध भाव कहीं तो बचनों द्वारा व्यक्त होता है और कहीं मुख-मुद्रा तथा धार्मिक चेष्टाओं द्वारा।

अपनी इच्छा-पूर्ति के साम में मेहर को अवरोध स्वरूप जानकर अभीला द्वारा अपने मुह से अपनी ही बर्खास्त करना एवम् वह भाव का परिचय देते हुए उनेज्ज्वात्मक उद्गार व्यक्त करता उसके उस क्रोधी स्वभाव का ही परिचायक है जो प्रायः नारी को बड़-बड़ कर बोलने के लिए प्रेरित कर देता है—

मैं तुम्हें आग में जलूँगी उड़ जायेगा वानो पारा ।  
मैं बना गमा कर भाऊँगी सोनाहराम बरहूँ सारा ।  
मैं तुरता दूँगी सब परो सब रंग तेरे कष्ट जायेगे ।  
तेरे हिमायती हूँ जितने मुझसे न कोई घट पस्यो ॥४८

अपने परिवार की अनिष्ट आर्तका एवम् अपकार का अधिष्ठान पाकर भी नारी अपने रौद्ररूपा स्वरूप में दृष्टिगोचर हो उठती है। मन्दा को रक्ष में बिप घोरते देख कर लैकेयी का यह स्वरूप उसके रौद्ररूप का ही परिचायक है—

लौक्य ये लोचन घटल घबोल  
लाल ये लाली भरे कबोल ।  
न जाती देख सकी उस घोर  
जला ये वहीं न लोप कठोर ॥४९

एक बार सिर पर क्रोध सवार हो जाने पर सामने पड़नेवाली वस्तुओं को अस्त-व्यस्त कर डालना नारी में स्वाभाविक रूप से दृष्टिगोचर होता है। उस समय वह बेबी से दुर्गा बन जाती है —

एकियों तक आ छे केस  
हुआ बेबी का दुर्गा बैरा ।  
पड़ा तब जित पदार्थ पर हस्त  
उते कर डाला घस्त व्यस्त ।  
तोड़कर खेंके सब भूझार  
अधुनय ते ये मुक्ता हार ॥५०

अपमान से विरग्न होकर भी नारी का क्रोध जाग्रत हो उठता है। उसकी अवस्था

बन्दा का वधुचित्त साम उठमेवाता आयोग्य जब किसी ईनी सहायता से निष्क्रम सिद्ध  
हो जाता है तो नारी इस आकस्मिक सहायता से बल पाकर साक्षात् बंदी बन  
जाती है—

प्रकटि बसन निधि है तेहि काला,  
बंदी सनहुँ घाय बिकराला ।  
द्रुपद कुमारि केज छिड़कायी  
कीन्ह महा प्रस सखिहु चुनवाई

सल भुज भंजन रक्त किनु बंदिहीं नहि ये बार,  
बेहि पति राखी घाय मम सोई प्रण रत्नन हार । १४

इसी प्रकार अपना सर्वस्व समाप्त होते देख कर संतप्तावस्था में नारी के हृदय में जायने  
वाला क्रोध, भय, आप का रूप भी ग्रहण कर लेता है—

अस कहि हरिहि रोय अनु बारी  
बाइख आप बीन्ह पालवारी  
'अस गुरु कनह मरत कुन नाछा  
संसेहि धनुकुम सहहि बिनसा ।'

पुत्र पीव, धाता स्वजन बचहि बंज नहि लीव,  
एकाकी, निर्जन विपिन, अंत पुम्हारण होय । १५

उत्साह की संतर्पित नारी के भीर-वेष्ट की ध्वजना की हिन्दी-महाकाव्यों की  
भाव-भूमि में दृष्टिगोचर होती है। नास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार बर्नवीर बुद्धवीर  
बादि की तरह यद्यपि नारी के भेद करना समभव नहीं है किन्तु अवसर उपस्थित होने  
पर नारी द्वारा प्रदर्शित उत्साह निश्चयात्मक रूप से उसके भीरांगना स्वस्व की व्यंजना  
करता है। ऐसे स्वप्नों का बहो नारी का उत्साह प्रदर्शन उसके भीरांगना स्वस्व की  
व्यंजना करता है, हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में प्राचुर्य नहीं है, लेकिन इनका  
प्रभाव भी नहीं है।

धर्म निशा में दस्तु की तरह, नकाब डाल कर अपने घर में किसी को प्रविष्ट  
होते देख कर नारी जब भवभीत होने के बजाय तसबार धींच कर आत्मरुद्ध को  
नमस्कारती है वो उसका यह आपत उत्साह, उसके भीरांगना स्वस्व का ही  
परिचायक है—

हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि

फिर धीरे धीरे सगी बैसने नजर पड़ा जो डालो ।  
 लस लकाव में छिपा किसी को भट तसवार निकाली ।  
 बढ़ती हुई तड़प कर बोली 'ठहर ! क्यों ? क्यों धाया ?'  
 कर हुआ तनवार पार में पग जो एक बढ़ाया ॥६१॥  
 उत्साह के बावत होते ही गारी का बंधु विमलित सुकुमार स्वरूप सी छात्र-वर्ग  
 टेक से प्रवीण हो उठता है और ऐसे क्षणों में उसका नीर-बैल सायाग मकानीय  
 दृष्टिकोण होता है—

आ छत्रुण समीप कभी लक्ष्मण की रानी  
 प्रकट हुई क्यों कार्तिकेय के निबट मकानी ।  
 बड़ा ताल से बाल विरामित छूट पड़ वे  
 क्षणम पर तो अक्षय बड़ा में फूट पड़े वे ।  
 माथे का तिलक रज्जव धंधार तदुभय बा  
 प्रभवा तप सा पुण्य गाल यद्यपि वह दृष्ट पा ।  
 बांधा कर छत्रुण छूट पर कंठ निकट बा  
 बाधे कर में स्तुत किरण सा मूल विष्ट बा ॥६२॥

केवल बेध से ही नहीं बांधी से भी उसका उत्साह फूट निकसता है और वह पशु को  
 अपनी करमी का फल बचाने के लिए क्षीति की तरह जाये-जाये बसता जाइती है—  
 ठहरो यह मैं बंधु क्षीति सी जाने जाने  
 मौगे अपने दिव्य कर्म फल अथम असावे ॥६३॥  
 पुरुष को ह्योत्साह होते बेचकर गारी में जो उत्साह कभी-कभी बाधत हो उठता है,  
 वह पुरुष ने पीछा का संवरण ही नहीं करता अपितु गारी के नीरांगना स्वरूप को  
 भी ब्याप्त करता है—

बस मुझ मृग भीनीं राम थीं हीं लरी यों ।  
 हरि हर तब हारे बैची दुर्गा सरी यों ॥६४॥

भय के अंतर्गत गारी का भी स्वरूप ही दृष्टिकोण होता है । छात्रों के छात्र-मात्र  
 काम से भय ममानक रस का स्वादी भाव माना गया है और वापुरण के छात्र-मात्र  
 भीरु स्त्री भी इसकी पावा समझी गई है ॥६५॥ अथम अथ्याय के मनोवैज्ञानिक विकास

६१ बुराहा पृ० ६५ ।  
 ६२ साकेत पृ० ४७२ ।  
 ६३ बही पृ० ४७४ ।

६४ राम-चरित्र १६ । २२ ।  
 ६५ रस-कमल पृ० ३४५ ।

के अंतर्गत संवेगों पर विचार करते समय हम बेल चुके हैं कि प्रायः भय के कारण व्यक्तित्वतः वस्तु नियन्त्रण अथवा सामाजिक होते हैं। मानसिक अपरिचितता अथवा आत्माकरण के प्रभाव से स्त्रियों में भय की भावना अविना होती है। पूर्ण कथित रूपों के अतिरिक्त भारतीय नारी में बर्मे भीरुता भी पाई जाती है। किन्तु स्वाभाविक भीरुता कामरता है और बर्मे-भीरुता आस्तिकता।<sup>६९</sup> अतः नारी का यह बर्मेभीरु स्वस्व भय की व्यञ्जना करते हुए भी मर्यादक रस की वस्तु नहीं है।

हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में नारी का यह भीरु स्वरूप अनेक स्वरूपों पर विविध रूपों में व्यक्त हुआ है। परन्तु नारी का यह भीरु स्वस्व भयजनित है मर्यादक नहीं। यह भीरुता स्वयं भय-संचरित है भय की संचारक नहीं। अतः मर्यादक रस की दृष्टि से इस भीरुता को रस की नहीं भाव की सीमावस्था के रूप में ही देखना चाहिए।

लेख में किसी मूल्यवान् वस्तु के डुम हाँ जाने पर परवासों की डाट-डपट का भय नारी में स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। अतः ऐसे अवसरों पर उसका भय हासिक एवम् मानसिक भीरुता के कारण परिताप परचाताप आकुलता एवम् स्वन के रूप में व्यक्त होता है—

किन्तु केनं प्राहृष्टं पृष्टि साया । द्वार पंखाइ अमिड मेह हाबा ॥  
घर पंछत पु अय यह हाक । कीम उत्तर पावत पंसाक ॥  
नैन सीप दाघु तस धरे । जानी मोति बिर्हि सब डरे ॥<sup>७०</sup>

कहीं जाने पर विचलित हो जाने के कारण भी नारी के मन में दुर्जन्यों का भय आबुद्ध हो उठता है। इस भीरुता का कारण नारी की सामाजिक स्थित है। उदाहरणार्थ—

पूड़ गिरा तुनी सिम सङ्गुचानी । मयड बिलम्ब मानु मय मानी ।<sup>७१</sup>

मोक्ष-निम्बा वधवा सामाजिक अपमान का भय भी नारी को मूक बना देता है और वह निम्बा मीठ के रूप में दृष्टियोग्य होती है—

नखि पुवा मिज सुत बसा स्थापत जनु तनु प्राण  
कहि न सकी 'यह मम मुबन सहि न सकी अपमान ।  
पिरी बरखी अकुलाय जाय समारेड कुल तियन  
उठी केत पुनि पाय जनु शर अग्रहत भीत मृति ।<sup>७२</sup>

६९ काव्य-दर्पण पृ० २३२ ।

६८ मानस वासनांक पृ० २६० ।

६७ जायसी व पावनी पृ० २३ ।

६९ दृष्ट्यायन पृ० २६८ ।

गारी की निर्बलता अथवा असहायता भी उसकी मीरता का एक कारण । अतः ऐसे अवसरों पर उत्पन्न भय उसने बौद्ध स्वरूप का व्यञ्जक होता है—

किन्तु रोक ली गई भुजाओं से मनु की यह  
निस्तहाय हो बौद्ध बुद्धि देखती रही यह ।<sup>७०</sup>

अथवा

हाथ धई मोती करी धन तो ।  
कपिला परी काम मनिच्छ के पाल ।  
प्राप्त धृवी करि धीन्ही गई ।  
कुम्भीमि सों हुआ व्याप हुआने ॥  
देखते नाच सुटी यह जात है ।  
बोली सकों न परे मुक्त ताने ॥  
हेरी करे वक्त न हमरो ।  
ते विज्ञात न प्राप्ति बचावत वाले ॥<sup>७१</sup>

संक्रांत को सामने देखकर भी निर्बल हुआ गारी भयभीत हो उठती है और उस समय यह संक्रांत भी अथवा प्राण-जीव के रूप में दृष्टिगोचर होती है—

तलवारें लंगी हो जमकीं मिरी जमीला धरों पर ।  
कहा 'कीकिण् जमा मुझे धन बरस बीबिये मेरा सर ।'<sup>७२</sup>

व्यक्तिगत तथा सामाजिक भय के अतिरिक्त गारी में वस्तुबन्ध भय भी उसके जीवन स्वरूप का परिचायक होता है । किसी भयंकर स्वप्न को देखकर, स्वप्न-स्नेह-स्मरण भय का कारण होना गारी में स्वाभाविक रूप से पाया जाता है । यद्यपि इस भय का कारण उसका स्नेह-भाव होता है किन्तु उसे भयभीत बनाने वाला भयंकर स्वप्न ही उसकी मीरता को बाधित करता है । अर्थात्—

भद्रा काँच उठी सपने में, सहसा उसकी छाँह कुली,  
यह क्या देखा भिने ? कैसे यह इतना हो गया क्षीन ?  
स्वप्न स्नेह में भय की कितनी जासकिए उठ जाती,  
धन क्या होगा इसी सोच में व्याकुल रजनी बीत जाती ।<sup>७३</sup>

भयंकर भय को देखकर भी गारी चला उठती है, उसके भुज मे भीतर

७० कामायनी पृ० १६७ ।

७२ गुरुबहा पृ० १३ ।

७३ राबल महाकाव्य १३ । १० ।

७३ कामायनी पृ० १५६ ।



निकल चट्टी है मय के कारण वह सहम जाती है और कंठारोष हो जाना भी स्वाभाविक है—

काल लौं नम्र को धावत देखि, सुलोचना ऐसी नई धबराई ।

और सौ हाथ बई कहि के सहमी, गिरी की मुख बोलि न पाई ॥४५

अपने मीर स्वरूप के अतिरिक्त कुछ स्वर्णों पर नारी के भयानक स्वरूप की भी व्यंजना हुई है क्योंकि यह स्वरूप दूसरों के लिये मय का कारण बना है। उदाहरणार्थ—

पड़ी थी बिजनी ली बिकरत

लपेटे थे मन जैसे बाल ।

कौन देखे थे काले सौं ?

अबनि पति उठे अचानक काँप ॥४६

अवस्था

तब स्त्रियमनि राम पाँह बई । रूप मयंकर प्रकटत भई ।

बिपुरे केस रत्न बिकरता । लुपुटी कुटिल करन लवि पाता ॥४७

मान की दृष्टि से ज्ञानि के अन्तर्गत हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में नारी के बीमत्स स्वरूप की व्यंजना का प्रायः अभाव है। शाकिनी आकिनी पिशाचिनियों को अपर नारी की संज्ञा प्रदान की जाये तो युद्धस्वभ के प्रसंगों पर उनका क्रिया-कलाप बीमत्स स्वरूप की व्यंजना कर सकता है। पृथ्वीराज राघो में ऐसे स्वर्णों की भरमार है। किन्तु ज्ञानि के अन्तर्गत नारी के बीमत्स स्वरूप की अभिव्यक्ति का प्रायः हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में अभाव ही है।

आश्चर्य भाव के अन्तर्गत नारी के आश्चर्यवर्धक अवस्था विस्मय-विमूढ़ स्वरूप की व्यंजना हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में यद्य-तब दृष्टिगोचर हो जाती है। नारी में भावुकता का प्राबल्य होने के कारण किसी अद्भुत वस्तु अथवा असंगत घटना को देखकर उसका विस्मय-विमूढ़ या आश्चर्यवर्धक हो जाना स्वाभाविक है। नारी में यह विस्मय अथवा आश्चर्य भाव कहीं विकसित हो नहीं गया है। इस रूप में दृष्टिगोचर होता है। यथा—

सोइ रघुवर सोइ लक्ष्मिनु सीता । देखि सती पति भई समीता ।

हृदय कंप तन लुधि कछु गहीं । नयन मूवि बेठी नय मयौं ॥४८

४५ रावण महाकाव्य १। ४०।

४६ मानस धारवाक्य ५०। ४११।

४७ साकेत ५०। ६०।

४८ मानस वाक्य ५०। ४१।

अथवा

सुनत इयम मनुमित वचन कीन्ह बरन बिस्तार ।

विकल मानु गिनु मुक्त लखेउ कीटिग बिस्व प्रसार ॥<sup>७८</sup>

विभिन्न सौंदर्य अथवा विभिन्न वस्तु आदि को देखकर नारी का आश्चर्य भाव उत्पन्नता के रूप में भी प्रकट होता है और ऐसे अर्थों में वह अपने विस्मय-विमूढ़ चतुस्त्रय स्वरूप में दृष्टिगोचर होती है—

आनन्द मुकसित मोचन आनन्द,

आनित ललपभाषा पुर कलप ।

विस्मित बिहंसित पुलकित निमसित,

ललित मुकुल अनिल आनोलित ॥<sup>७९</sup>

निर्वेद के अन्तर्गत नारी का शांत-धीर स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है । हिन्दी महाकाव्यों की भाषा भूमि में निर्वेद भाव के अन्तर्गत नारी-स्वरूप की व्यञ्जना बहुत कम हो पाई है । निर्वेद-संचारी के अन्तर्गत उसके विरक्त उदासीन स्वरूप की व्यञ्जना अनेक स्थलों पर सुसन्न हो उभरी है किन्तु निर्वेद भाव के अन्तर्गत उसका स्वरूप बहुत कम स्थलों पर दिखाई देता है । निर्वेद के अन्तर्गत नारी की यह शांत मूर्ति कहीं तो परमार्थ चिन्तन में लीन दृष्टिगोचर होती है और कहीं हम भाव के कारण अपने सर्व मंत्रणा स्वरूप में । क्या—

जो बेती थी कलह अनिता आदि के दुर्गुणों को ।

जो बेती थी अतिन मन की व्यापिनी कालिमायें ।

जो बेती थी हृदय तल में बीज भावमयता का ।

वे भी बिच्छा बिजित मूह में शान्ति धारा बहती ॥<sup>८०</sup>

अथवा

हे सर्व मंयते । तुम नष्टी

लज्जा कुल धरने पर बहती

कन्यालुपथी बाली कष्टी,

तुम लज्जा निज में हो रहती ॥<sup>८१</sup>

हमके अतिरिक्त जीवन-संचारों से विरक्त उत्पन्न हो जाने पर, जीवन की

७८. इन्द्रायन पृ० ४१ ।

८०. प्रियप्रवात पृ० १७ । ४७ ।

७९. वही पृ० १११, ४० ।

८१. कामावनी पृ० २४१ ।

बसावटा का अनुभव करते हुए नारी में जो निर्बलमान जागृत हो उठता है वह उसके उत्प-वित्तन-साविका स्वरूप को भी हमारे सामने रखता है। सर्व मुन्बरी के निम्न सप्पार उसके इसी चित्रण स्वरूप के व्यञ्जक है—

बिबस भिन्ना कुतों में बहनी हैं बनल बीबन की बार ।  
सहरों का तिरजन होता रहता है सहरों का संहार ॥  
घों ही बनता घोर विकृता छद्म छलित ही में घासीन ।  
बीन कब बन उठ जाता है हो जाता फिर वहीं बिलीन ॥<sup>५१</sup>

भाबों के अन्तर्गत छल विवेचन को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में भाबों के माध्यम से नारी जीवन के विविध स्वरूपों की व्यञ्जना रस की अनुमती सूचिका के साथ उपस्थित हुई है। इस रस-साक्षना में 'भाव-दशा' की 'शील-दशा' का रूप देखकर नारी के विविध स्वरूपों को व्यञ्जित करते हुए, साहित्य एवम् जीवन भाव तथा भावना के क्षेत्र में स्वादिष्ट-सा प्रवाह किया है।

विभावों के अंतर्गत नारी के विविध आत्मजन स्वरूप

एवम्

उत्सकी छद्मदीपनमयी चेष्टाओं का निरूपण

विभाव एवम् भाव अन्वेष्याभित माने गए हैं। भरत भूमि के मतानुसार विभाव विशेष ज्ञान का वर्ण रक्ता है। विभाव कारण निमित्त हेतु—ये पर्यायवाचक हैं।<sup>१</sup> विभावों द्वारा भाबों को आत्मजन भी मिला है और उन्हें उद्दीपित भी किया जाता है। सुक्कमी के कथनानुसार 'हमारी परिस्थिति हमारे जीवन का आत्मजन है अतः उपचार से वह हमारे भाबोंका भी आत्मजन है।'<sup>२</sup> इस दृष्टि से विचार किया जावे तो नारी हमारे जीवन का ही आत्मजन है और जिन परिस्थितियों में नारी का यह आत्मजन स्वरूप जीवन को प्राप्त होता है तथा अपनी उद्दीपनमयी चेष्टाओं द्वारा जीवन को अनुप्राणित करता है उसे देखते हुए उसके स्वरूप सीमित नहीं विविध ही होते हैं। जिसकी स्नेहित छाया जगत् से मुक्त पयस्त जीवन के साथ रहती है और परिस्थितियों के अनुसार जिसमें परिचर्तन होता रहता है जो जीवन के मुक्त भाबों को अपनी चेष्टाओं द्वारा उद्दीपित करने का कार्य भी करती है, उस नारी को रीति-सम्भों के निश्चित सिद्धान्तों के बाजार पर एकाधिक भाबों का आत्मजन मान मान लेना कुछ उचित नहीं

जान पड़ता। अतः विचारों के अंतर्गत हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में व्यञ्जित गारी के विभिन्न आसन्न स्वस्वों पर विचार करते समय हम इस बात पर भी विचार करेंगे कि अपनी उद्दीपनमयी चलावों के अंतर्गत गारी किन परिस्थितियों का निर्माण करने में सहायक सिद्ध होगी है और इन परिस्थितियों का 'कारण' निमित्त या 'हेतु' होने के कारण गारी अपने किस स्वरूप में अभिव्यक्त होती है।

मात्सीय दृष्टिकोणानुसार गृहार रस के आलंबन विभाव के अंतर्गत नायिका भव का स्वान आता है। नायिका भेद की दृष्टि से नायिका की व्याख्यात्मक प्रवृत्ति के अंतर्गत जाति अनुसार वर्णानुसार, वंशानुसार अवस्थानुसार एवम् पुणानुसार अनेकानेक भेद-विभेद किए गए हैं। हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में नायिका-भेद के लक्षणों को सामने रख कर गारी की चरित्र-सृष्टि नहीं हुई है और न उसके भावों का निरूपण है। 'स्त्री-भेद-वर्णन'² एवम् स्त्री भेद-वर्णन खण्ड³ के नाम से जाति-अनुसार किए जानेवाले भेद का भी केवल राखो एवम् पचावत को छोड़कर अन्य महाकाव्यों में जगह है। वर्णानुसार किए जानेवाले विविध भेद की दृष्टि से भी हिन्दी के अधिकांश महाकाव्यों में स्वकीया नायिका का ही प्राधान्य है। परकीया के भी रूप मन-रस दृष्टिकोण पर हो जाते हैं किन्तु सामान्या नायिकाओं का नाम पर राखो की चित्ररेखा एव गुरुजनों की जनारकसी को छोड़कर सामान्या नायिकाओं का भी हिन्दी-महाकाव्यों में जगह है। चित्र-रेखा एवम् जनारकसी की चरित्र-सृष्टि भी कुछ ऐसे ढंग से हुई है कि वे नायिका-भेद के लक्षणानुसार सामान्या सिद्ध नहीं होती। उन्होंने अपने प्रेम का जो मूल्य चुकाया है, वह किसी उत्तमा नायिका से कम नहीं है। इसी प्रकार पुष्यानुसार भी हिन्दी-महाकाव्यों में उत्तमा मध्यमा एवम् अधमा नायिकाओं की व्यवस्था हुई है किन्तु अधमा के चित्र बहुत कम दृष्टिकोण पर होते हैं। यही हाल वंशानुसार एवं अवस्थानुसार किए जानेवाले भेदों का भी है। नीच-तान पर लक्षणों के अनुसार उन्हें नायिका-भेद की शीर्ष में रखा किया जा सकता है किन्तु वह उनकी वास्तविक भावविशेषता को प्रकट करते में असमर्थ सिद्ध होता है। अतः नायिका भेद के निश्चित लक्षणों के आधार पर प्रस्तुत किए जानेवाले भेद-विभेदों द्वारा व्यक्त होनेवाले नायिका के इन लक्षणपरक स्वस्वों की चर्चा न करते हुए, विचारों के अंतर्गत केवल 'गारी' के रूप में ही उसके विविध स्वस्वों पर विचार करना उत्तम होता क्योंकि 'अज्ञान' से 'लज' का स्वान कहीं अधिक महत्वपूर्ण एवम् उपादेय होता है।

गुरुजनों के मतानुसार पीति-ग्रन्था की अधीनत रस-दृष्टि परिमित हो गई है। वे इस बात को भी मानते हैं कि बुद्धि की व्याप्ति के लिये मनुष्य को जिस प्रकार

निस्तृप्त एवम् अनेक व्यापक शोष मिता है, उसी प्रकार भावों की व्याप्ति के लिए भी।<sup>१४</sup> वही ऐसी स्थिति इस परिमितता के मोड़ को छोड़ कर जाने की ओर दृष्टि डालने पर भारतीय चिन्ताओं के बजाय व्यावहारिक रूप पर विचार करना होता। नारी का आत्मन-स्वरूप निर्धारित करते समय शास्त्र सम्मत मार्ग का परित्याग दुस्साहस अवश्य है क्योंकि सदिया से बनी आई साधनात्मक दृष्टि का परित्याग करना राक्षस मार्ग को छोड़ कर पगड़ड़ी पकड़ने के समान है। फिर भी यह दुस्साहस करने का प्रयत्न केवल इसी दृष्टिकोण से किया गया है कि इस अनुविधित पक्ष के अतिरिक्त बदर पगड़ड़ियों पर भी विचार कर लिया जाने तो अनुचित न होगा क्योंकि वे पगड़ड़ियाँ भी अपना कुछ हेतु तो रखती ही हैं। साथ ही नारी का यह आत्मन-स्वरूप निर्धारित करते समय हम उन उड़ीपनमयी चेहानों पर भी विचार करेंगे जो नारी के स्वरूप विधेय के निर्धारण का हेतु<sup>१५</sup> हुई हैं।

रति भाव की पुष्टि जबकि प्रेम के प्रस्फुरण में नारी अपनी जिस आत्मन-स्वरूप में दृष्टिगोचर होती है, वह उसके निमित्त स्वरूपों को हमारे सामने रखता है। प्रथम के अन्तर्गत उसका अनुपम सौख्य आता है जो अपनी मूकता द्वारा भी प्रेम-भाव को प्रस्फुरित कर भाव-माप्ति का मूक आत्मन-सिद्ध होता है। जैसे—

करत कत कही अनुच सन मन सिय क्य मुमान ।  
मुक सरोज मकरन्द लुहि करे मधुप ह्व नान ॥<sup>१६</sup>

अपनी मूकता में भी नारी का यह आत्मन-स्वरूप रति भाव का हेतु होता है क्योंकि—

कम्पा सुन्दर काम रंज रखती प्रीति में है परा  
आती है रति रीज भी मुक के उत्पुल्ल नैराश में  
बीड़ा कामिनी की मुवा हृदय का सकोच, दोनों तरफ  
होते स्वर्ग प्रकाश से सुरभि से सारंग ॥ विष्णु हैं ॥<sup>१७</sup>

द्वितीय के अन्तर्गत उसकी भाव भविष्य, शारीरिक चेहरे या क्रिया-कलाप आते हैं जो अपने आप में मूक रह कर भी मूल प्रेम को मुकुरित कर देते हैं। वथा—

जुमे मसुरा मुक मुनों से वह धार्मिकता का मिलता,  
छलत बकों में धातिपन, मुक लहरों का तिरता ।  
नोचा हो छलता जो बीजे बीजे मिखातों में  
जीवन का क्यों ज्वार उठ रहा, हिमकर के हातों में ॥<sup>१८</sup>

१४ रस भीमांसा पृ० ११२ १३ ।

१५ चिन्ताम पृ० ७७ ।

१६ मानस बातचीत पृ० २३८ ।

१७ कामायनी पृ० १३३ ।

अथवा

बहुच के बहु पास कुमार के विपुल विधम युक्त चड़ी हुई  
 दुग मिला कर, बबल भीह ले, 'कुछ मिले मुझको' कहती हुई ।<sup>१८</sup>  
 कृषीय क अतर्गत उसका वह मुखरित स्वरूप दृष्टिपोषण होता है जो बापी-विनाश द्वारा  
 अपनी उद्दीननमयी आंगिक चेष्टाओं से समुक्त होकर प्रेम भाव को बाधित एवम् उद्दीपित  
 करने का हेतु होता है । जवाहरनार्व—

पित भावसु मार्ग पर लैऊँ । जो मयि नइ नेइ सिर बैऊँ ॥  
 ई पिय ! बचन एक सुनु मोरा । बानु पिया ! मयु बोरे घोरा ॥<sup>१९</sup>

अथवा

उसने कहा हटो सम्भलो तो देखो कोई आया ।  
 छोड़ डले वह गया देखने इधर उधर बचराया ॥  
 देख न कोई पुनः खींच कर कुम्भन की कर्वा कर ।  
 बार बार आतिथन करके गया हर्ष में वह घर ॥<sup>२०</sup>

उक्त जवाहरनार्व में 'बोरे घोरा' एवम् 'हटो सम्भलो तो' में जो बापी-विनाश  
 व्यक्त हुआ है वह प्रेम भाव का आत्ममग्न ही नहीं अपनी साकेतिकता के अंतर्गत  
 वैवाहिक जीवन प्रेम का परिपुष्ट सामाजिक स्वरूप है । इसके अंतर्गत नारी के

जो आत्ममग्न स्वरूप हमारे सामने आते हैं, वे प्रभावित बार कर्पो में दृष्टिपोषण होते  
 हैं—विनयात्मक रूप में विनोदात्मक रूप में विवादात्मक रूप में और विवेकात्मक  
 रूप में । अपने चारों ही कर्पो में वह सामान्य भावना को मुरक बनाती हुई रति भाव  
 के पोषण का हेतु होती है ।

विनयात्मक रूप में नारी की विनय-भावना के साथ अयु का समिधित हो  
 ना भावोदक का कारण हो जाता है और इस समिधित स्वरूप द्वारा रति-भाव  
 का प्रेम भावना को बल प्राप्त होता है । जैसे—

नम्र स्वर में वह बोली आब  
 बलाऊँ जैसे बुझ में हृष्य ।  
 बतारो यदि हो कहीं उपाय'  
 टपायप विरे अयु अतहाय ॥<sup>२१</sup>

उदाहरण १०७१ ।

पत्नी प्रभावती पृ० १४१ ।

१० मुरबही पृ० २० ।

११ साकेत संत ४ । ८ ।

विभोवात्मक रूप में नारी की विभोव भावना के साथ व्यंग्य एवम् मुस्काम मिल कर अनुराग वृद्धि के 'निमित्त' ही होते हैं—

कर बढ़ा कर जो कमल छा खिला  
मुस्कराई घोर मौनी ऊँचिला  
'भक्तमज बन कर बिभेक न छोड़ना  
कर कमल कहु कर न मेरा तोड़ना । १२

विभोवात्मक रूप में नारी का मान कमल का रूप ग्रहण कर जब कटु वचन कहने पर उसका हो जाता है तो यह मान सामान्य भावना का सहज अंग होने के कारण क्रोम-संयुक्त होकर भी अनुराग वृद्धि का ही हेतु बन जाता है। उदाहरणार्थ—

बसत जपड़ उर जबपि गहना  
बसत कहि कहि 'प्राण निवारी, भागत हूँ  
नित्य विबाह्य मङ्गलाचार, एकहु संग नहि हूँ  
स्नेहभाचारी संकुमहीना, आसन निरत सुन मेहु बिहीना । १३

विभोवात्मक रूप में नारी अपनी बर्मे एवम् कठिन वृद्धि द्वारा जिस भावना को व्यक्त करते इच्छित होती है और इस भावना के साथ विरवास एवम् दृढ़ता का जो स्वर व्यक्त होता है वह निःसंदेह प्रेम-भाव का पोषक ही है। यथा—

जहुँ जगि नाथ मेहु जब नते । पिय बिनु तियहि तरनि हँ लें साते ।  
तनु बनु भासु धरनि पुर राखु । पति बिहीन सहुँ सोक सबाखु ।  
जोग रीय सम सुखल नाक । जम जातना तरित ससाक ।  
प्राण नाथ सुन बिनु जग माहीं । मो कहु मुखव कठहुँ कसु माहीं । १४

इसके अतिरिक्त पुन विषयक रति अथवा वात्सल्य भाव की वृद्धि की दृष्टि से नारी का स्नेह अंकाकुल स्वभाव वात्सल्य भावना का हेतु होकर सामान्यन की स्थिति में परिलक्षित होता है। उसकी कातरता अथवा उसका बर्मेन वात्सल्यजनित स्नेह को उद्दीपित करता ही जान पड़ता है जैसे—

कहो रहा नइकड । तू फिरता अब तक मेरा नाम्य बना ।  
धरे पिता के प्रतिनिधि तूने भी मुख कुछ तो दिया घन,  
बंजल तू बनकर युग बन कर भरता है बोकड़ी कहीं  
मैं भरती हूँ तू रुठ न जाये करती कैसे तुझे मना । १५

१२ साकेत पृ० ३३ ।

१३ हृत्पुष्पापन पृ० ३४२ ।

१४ भागत घयोप्याकाँठ पृ० ४६२ ।

१५ कामायनी पृ० १०६ ।

नारी की नाटकीय उपस्थिति जबका उसका 'नारी-चरित्र' हास का आत्मन बन कर अपनी उदात्तमयी चेष्टाओं द्वारा हास-भाव को उद्दीपित करता भी दृष्टिगोचर होता है—

भरत मातु पति पद विलसाली । का धनमवि प्रति कह हति रानी ।  
उत्तर हैह नहि कैह उसासू । नारि चरित करि बारह सासू १<sup>१६</sup>

यहाँ मंगल का निरवासे घर कर मातु बारहा 'नारी चरित्र' से संपृक्त होकर ही हान का आत्मन बन पाया है और भावोद्दीपन का हेतु हुआ है अथवा किसी को रोते देख कर ईदना अनुप्यता नहीं बकरता का ही परिचायक हो सकता है ।

नारी का प्रिय-विशेषों स्वरूप जब कबचा की प्रतिभूति बन कर विभक्त उठता है और प्रिय की स्मृति प्रलाप की तरह व्यक्त होने लगती है तो उसका यह स्वरूप मुक्त सहायुद्धों को उद्दीपित कर सहृदय जन क शोक का कारण बन जाता है और कबचा का आत्मन । जैसे—

धन से परिप्लावित भोजन, हृदय को पकड़ निज हान है ।  
विलसती बहु भाँति यद्योचरत, बिछू बाजुन हो बरने लगी ।  
‘अहह, भाव, हूँ । नम प्राप्त है । हृदय के जन, जीवन तार है ।  
बिछू नारिच में तन के मुने, कब वहाँ कित धोर जते मने ?’ १<sup>१७</sup>

अपने हृदयै स्वभाव के कारण चाहे वह प्रेममय क्यों न हो, नारी कभी-कभी प्रतिभूत आचरण के कारण क्रोध-पाना हो उठती है और उसकी स्नेहमय चेष्टाओं भी क्रोध को उद्दीपित कर, क्रोध-अकाशन का हेतु बन जाती है । भारत की पत्नी का यह प्रतिभूत आचरण क्रोध का आत्मन ही बनता है—

पाम्पह बरा निस्तोह यदि, विनय मुनहुँ हो राय ।  
मतक बरी कबरकार होई कतेहु तर्ज न पाय ॥ १<sup>१८</sup>

व्यवहारिक क्षेत्र में भाव-नारी हठोन्माही पुरष को उत्साहित करती भी दृष्टिगोचर होती है । नारी द्वारा किया जानेवाला उत्साह-वर्चन का यह कर्म, वहीं तो लक्ष्मणदे उत्साह का आत्मन बन कर सामने आता है और वहीं अपनी उदात्तमयी चेष्टाओं द्वारा पण प्रति वीरता को सुपराह होने से बचाते हुए, उत्साह-वर्चन का हेतु होता है । उत्साह-वर्चन—

१६ भावत प्रयोगादी ५० ४१२ । १८ भावत प्रयोगादी ५० २८४ ।  
१७ विद्वत् ५० १२४ ।



कहा धार्मिक ने सस्नेह 'धरे सुख इतने हुए धनीर ।  
 हार बैठे जीवन का बाँध जीतते मरकर जिसको धीर ।  
 सब रहे ही अपने ही बोझ, जोखते भी न कहीं भयलम्ब,  
 तुम्हारा सहार बन कर क्या न उभरु होऊँ मैं बिना विलम्ब ।'<sup>११</sup>

अथवा

तो क्या मैं कायर सा क्षिप कर हत्या की जाते हूँ ।  
 मिट्टी में लथिय कुल यौरव अपना मिसबाते हूँ ?  
 ऐसा पतित काम करने से तनिक नहीं छरमाये ।  
 जन के लालच से पूर्वज का नाम हंसाने छाये ॥<sup>१२</sup>

परिस्थिति विषय में नारी या तो योधियों के लिए भय की वस्तु हो सकती है या कामियों के लिए । हिन्दी-महाकाव्यों की भावभूमि में व्यक्त नारी का अज्ञात कोष भय एवम् विस्मय दोनों का ही हेतु हुआ है । कैंकेयी को खिकार न पाई हुई सिंहिनी के समान सखिकार सोठी देखकर अग्निव्रत की आरंभका एवम् अज्ञात कोष का 'रहस्य, इतरव के मन में सुप्त भय तथा विस्मय को उद्दीपित ही नहीं करता अपितु, उसके 'बाहुस्य' का निमित्त बनता है । यथा—

पकारे जब भीतर प्रवाल बहाने जाकर देखा जो हाल  
 रघु ऐसे उससे ने बड़ दुःख बड़ा भय विस्मय का बहुल्य ।  
 न पाकर मानों आत्मा निकार, सिंहिनी सोती थी सखिकार ।<sup>१३</sup>

इतना ही नहीं कभी-कभी विषम परिस्थिति में जाग्रत नारी की आहत-सी धापी, आक्रोश से संवृक्त होकर जब वर्माधिमामियों के घातक-भ्रुति ज्ञान को चुनौती देती इक्ष्मिणीवर इक्ष्मी है तो उसकी यह उद्दीपनमयी चेष्टा भीष्म-से हड़ घटियों के मन में भी म्लानि के उदय का कारण बन जाती है । शोषणी की चुनौती और भीष्म की स्थिति तो देखिए—

'भीष्म, विभुद, हृदय श्रोत्र गुण सेबहि बर्य अग्निमान ।  
 कठे कस अब भीम यहि कहा शस्त्र भुति तान ?'  
 ध्याकुल भीष्म न शीघ्र उठावा, मोक्षत बुभक्षन बचन गुणवा  
 'अब अस्तव्य देखेज अब नहीं यहि ते अधिरा नील अथ नहीं ।  
 धर्म मोहि कस ईश जियावा बज्र मान मम लक्षत नसावा ।'<sup>१४</sup>

१६. कामायनी पृ० ३३, ३५ ।

२१. साकेत पृ० ३६ ।

२०. मुरझाई पृ० १०१ ।

२२. कृष्णार्जव पृ० ४२४ ।

हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में व्यक्त नारी के उक्त विविध स्वरूपा और उनकी उद्दीपनमयी चेष्टाओं पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी किन परिस्थितियों में किन भावों को अवलम्ब देने और उद्दीपित करने का 'हेतु' हुई है। यदि भरत मुनि के मतानुसार 'विभाव विधय ज्ञान का अर्थ रखता है' और 'विभाव कारण निमित्त हेतु-ये पर्यायवाची हैं' तो 'विधय ज्ञान' का 'हेतु' बनने नारी के विभावों के अंतर्गत व्यक्त उक्त स्वरूप साधक है बाहे उक्त स्वरूप छात्सीय कछीटी पर सी टेंक साबित न होते हों। यदि कारण निमित्त या हेतु विभाव के पर्यायवाची नहीं हैं और शास्त्र सम्मत होने के बाव भी नायिका भेद को आचार्य त्रिवेदीजी जैसे विद्वानों द्वारा 'बाबी की विपर्यया'<sup>२३</sup> का पठना प्राप्त हो सकता है तो मैं अपने इस दृष्टिकोण को सविनय 'मति-प्रय' मान लेने के लिए तैयार हूँ। उक्त विवेचन की एक दृष्टिकोण के रूप में ही मैंने विभावों के संतुलन रखा है, किसी सिद्धांत के रूप में नहीं। गुस्सखी के बचन के आधार पर ही मैंने अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है। गुस्सखी का कथन है कि 'किमी भावोदक द्वारा परिचालित संतुष्टि जब उस भाव के पापक स्वरूप गढ़ कर या काट-छांट कर सामान रत्नन भयती है' तब हम उस सखी बहि-वत्पना कह सकते हैं।<sup>२४</sup> हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में विभावा के अतुल्य नारी की स्वरूप व्यंजना में व्यक्त इसी बहि-वत्पना को स्पष्ट करने का प्रयत्न उक्त विवेचन द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

## अनुभावों के अंतर्गत नारी के कायिक मानसिक एवम् सात्त्विक कार्य-कलाप और उनका स्वरूप

हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में अनुभावों के अंतर्गत नारी के विविध काय कलापों एवम् उनके स्वरूप की भी व्यंजना हुई है, वह संक्षेप में इस प्रकार है—

कायिक अनुभाव के अंतर्गत कटाक्ष आदि हृदय आधिक्य चेष्टाओं द्वारा नारी के कार्य-कलाप व्यक्त होते हैं। मन की बात बाबी द्वारा प्रकट न करत हुए भी नारी जब अपनी आंगिक चेष्टाओं द्वारा भाव प्रकाशन का प्रयत्न करती है तो उसके इस काय कलाप का स्वरूप चेष्टाजनित होता है। जैसे—

अधुरि बदन बिभु बंजल होरी, सिय लग बित भौह करि बाँकी ।

अंजन मंहु तिरिछे नैननि भिज पति कहैउ तिनहि सिय लैननि ॥<sup>२५</sup>

२३ रत्न रत्नन पृ० ७३ ।

१ मानस प्रयोग्यालीङ्ग पृ० ३१७ ।

२४ अमर-गीत सार, भूमिका पृ० २८ ।

## अथवा

होकर विनयित पौवन के लक्ष कुसुम मार से भोरी ।  
हैं भील लँक भवकाती कर चितवन से चितभोरी ॥  
बन भीषि बिनास सरित की बहू रस ही रस बरसाती ।  
साँझों को गवा गवा कर, भक्त केतु प्यवा कहुराती ॥<sup>२</sup>

मानसिक अनुभाव के अंतर्गत नारी-मन के आनंद-मनोव प्रकट होते हैं। वतः करण की वृत्ति से ही ये उत्पन्न होते हैं। मानसिक अनुभावों द्वारा व्यक्त नारी के क्रिया-कलापों का स्वभाव बाह्य ब्रह्मावों में अभिष्ट होकर भी मनोवृत्तिवर्ग्य होता है। दूसरे शब्दों में इस आंतरिक लक्षक का अक्षिप्त स्वरूप माना जा सकता है। जैसे—

तनिक बह गई माँझी धाप, 'इसे धापाय कहुँ कि प्रताप ?'  
अधर पर एक मधुर मुस्कान, भोल सी लहरा गई दयाजान ॥<sup>३</sup>

## अथवा

हृदित हरि भावेज पुति सैनन 'भावेज साँझ करिक संघ बैसन ।  
'अहूँ' कहैज प्रकट हंसि बाला गधनि भवन बियोज बिहाला ॥<sup>४</sup>

सात्विक अनुभाव के अंतर्गत नारी के अकृतिम अंग-विकार हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। सात्विक अनुभाव स्वयं उद्भूत होते हैं और स्वयं पुनः से उत्पन्न होने के कारण सात्विक कहे जाते हैं। अतः इन अनुभावों के अंतर्गत नारी के कार्य-कलाप अपने सात्विक रूप का प्रकट करते हैं। सात्विक अनुभाव आठ प्रकार के होते हैं जिनके अंतर्गत नारी के कार्य-कलाप हिन्दी-महाकाव्यों की मान भूमि में इस प्रकार व्यक्त हुए हैं—

१. स्तम्भ —हृदय मय सज्जा विस्मय विचार जाति से शरीर के अंगों का घबरासन रुक जाना स्तम्भ कहलाता है। प्रेम-विवलता के अंतर्गत नारी का स्तम्भित स्वरूप देखिए—

जबुर सखि लखि कहा कुलाई । पहिरावतु अघमल सुझाई ।  
सुगत कुपास कर मान जठाई । प्रेम विवस पहिराव न जाई ॥<sup>५</sup>

कुसमाचार मुनवर भी नारी अपने स्तम्भित स्वरूप में दृष्टिगोचर होती है—

कैकेयी का मुख भी न कुला, नान्याए शरीर हिला न कुला ।

२. मूरजही पृ० ९४ ।

३. ताकेठ संत १ । १३ ।

४. दृष्टावत पृ० १३ ।

५. मानस, वासनाई पृ० ९६१ ।

बस कइ ली गई अड़ी बाँझें, भागों की नहीं लड़ी बाँझें ॥<sup>९</sup>

९ श्लोक :—यह काव्य भय हर्ष, अथ क्रोध आदि से उत्पन्न होता है । मुहुर्मात्रा के कारण यात्रा-भय से मारी के मुख पर भय-विष्णु का सलक माना स्वाभाविक है । यथा—

बारहों पर कसु और मुँहों पर विष्णु के,  
रजः भूरा वे पद्य प्रभूत पुत इन्धु के ।<sup>१०</sup>

हर्षजनित स्वेद भी नाटी में दृष्टिगोचर होता है—

सूर्य सुता पायेज पतिहि, लफल छोड, तप त्याग ।  
लाज मिलोवन श्लोक धीन रोय रोम धनुराग ।<sup>११</sup>

१ रोमाञ्च —यह हर्ष अथ लील त्याग छोड आदि से उत्पन्न होता है । किसी कारण से रोमों का लडा हो जाना रोमाञ्च कहलाता है । हर्ष में रोमाञ्चिन्म मारी की असल देखिए—

लाज की ममोज ने हवाले इमि कांस परी  
मुघ ठो यवनि कपु चहुत न पाई है ।  
छोली गुन नैनी के सरीर की गन्धि मेदि,  
रोमावलो व्याज लो मगहु कड़ि आई है ॥<sup>१२</sup>

४ स्वर-भंग —भय हर्ष क्रोध मर आदि में स्वाभाविक ध्वनि में विचार उत्पन्न होने पर स्वर भंग पाया जाता है । भावातिरेक के कारण मारी के स्वर भंग का स्वरण अक्षर्य शब्द के रूप में प्रकट होता है—

स्वा करने लयी लवडा ललित कर्ण कपोल  
सिना पुनरु कहव ला या मरा मृगयु बोल ।<sup>१३</sup>

५ कव —क्रोध भय जीत आनन्द आदि से कव उत्पन्न होता है । नाटी में कव एवम् आनन्दजनित कव लयका इस प्रकार व्यक्त हुआ है —

मेहर बेचारी हो काँप उठी संभली पति बाँह पकड़ ।  
बन बरता ला जाता था दानो धी धड़क रही मड़ मड़ ॥<sup>१४</sup>

१ लाकेत पृ० १७८ ।

७. चही पृ० १४६ ।

८. कल्याणन पृ० २२६ ।

९ राघव महाकाव्य १ । ३१ ।

१० कामायनी पृ० २४ ।

११ शूरजहाँ पृ० ११३ ।

तथा

बहि करन हरि बिधि बहि पूजा, बरेड एक पद बहैड न पूजा ।  
बिसरे सुमन प्रकटित बामा गहैड हस्त सस्मित बन ब्याजा ॥<sup>१२</sup>

६ ब्रह्म — मोह, क्रोध भय भय सीत ताप आदि से इसकी उत्पत्ति होती है । नारी में यह ब्रह्म उसकी मुख-छवि को परिवर्तित अवका मिलन करता दृष्टि गोचर होता है—

विकसिता कलिका हिम वस्त से, दुरत ज्यों बचती अति प्रताप है ।  
सुन प्रसव मुकुन्द प्रवास का मलित त्यों कुचमानु सुता हुई ॥<sup>१३</sup>

अथवा

कुमलाई बचा केर बाली, या दस्त जन्म की उन्मिली ।  
मुख जनि पड़ी पीली पीली जैसे घटात नीली नीली ॥<sup>१४</sup>

७ अशु — मानस्य भय कोक क्रोध अन्धा अपमान आदि से अशु उत्पन्न होते हैं । नारी में इस अनुभाव का प्राबल्य है । मानस्य हो या कोक, भय हो वा क्रोध संयोग हो या वियोग प्रायः उर्वर ही यह अशु भय दृष्टिगोचर होती है ।  
उदाहरणार्थ—

हमक पलक से ये अशु घासे अणों में,  
जग कलित कपोलों में बसी पाँडुता भी ॥<sup>१५</sup>

अथवा

नैन चुबौहि जस मरबड भीक । सोहि बिगु धन लान तर भीक ॥  
इपटप डूब परीहि जस ओला । विरह पवन होई मारे ओला ॥<sup>१६</sup>

या

अशु भरे दलितली नयन भये तरीप संवार,  
इक कर पोंडत हरि दलित, इक लोचन अलवार ॥<sup>१७</sup>

अथवा

तब पूछिमी रघुराज । मुख है पिता लग पाइ ।  
तब पुन को मुख ओइ । कम तें जहाँ सब रोइ ॥<sup>१८</sup>

१२. कृष्णायन पृ० ६३५ ।

१३. शिवप्रवास ४ । २६ ।

१४. साकेत पृ० १६० ।

१५. सिद्धार्थ पृ० २४७ ।

१६. जामली बं० पृ० १५३ ।

१७. कृष्णायन पृ० २४६ ।

१८. रामचन्द्रिका १० । १० ।

८—प्रलय —यम मोह मय निरा मुर्छा धारि स यह उत्पन्न हुमा है ।  
नेह-यमा की विसृति को प्रलय माना जाता है । प्रलय के अन्तर्गत नारी का निष्पेक्ष  
स्वल्प ही अधिर्वाणन व्यक्त हुआ है । जैसे—

देवत नैन मुम्हूई न विसि परिछ भूमि तँवार ।

सँभोगी कोपिल भई जब बरिषय धरिमार ॥<sup>१८</sup>

अथवा

हजर कर्मिता कुम्ह निरी, बहु कर 'हयम ! अहयम विरी ।<sup>१९</sup>

काविक मानसिक एवम् सात्विक अनुभावों के अनिश्चित आशय अनुभाव भी  
होता है किन्तु नारी की वेग-ज्वरना की चर्चा को भाव भूमि के अन्तर्गत वृथा जान कर  
ही यहाँ उमका निरूपण नहीं किया गया है । इसी प्रकार उन अदृष्टादिम अनुभावों की  
चर्चा भी जो नारी के अंगद अदस्तद एवम् स्वभावद अन्वयान माने गये हैं यहाँ  
इतक नहीं की गई है कि उनकी यचना अर्थकार के रूप में ही विषय रूप से की  
जाती है । अनुभाव अस्पष्ट हैं । अतः विस्तार मय के कारण हिन्दी-महाकाव्यों की  
भाव-भूमि में काविक मानसिक एवम् सात्विक अनुभावों के अन्तर्गत ही नारी के  
विविध कार्य-जलापों एवम् उनके स्वकथा का विवेचन यहाँ मञ्जु में प्रस्तुत किया गया  
है । उक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की  
भाव-भूमि में अनुभावों के अस्तम अन्त नारी के कार्य-जलाप भावामास के हेतु ही  
मिद होते हैं । दूसरे शब्दों में इन काव्य-कलापों की भावानुभव का मायन माना जा  
सकता है ।

### संचारी भावों के अन्तर्गत नारी-जीवन की विविध संरंग-वर्णितियाँ

राष्ट्रीय दृष्टिकोण से संस्मरणधीन अर्थात् अतिथर मनोविकारों का चित्त-वृत्तिवों  
को संचारी भाव की संज्ञा प्रदान की गई है ।<sup>२०</sup> संचारी भाव रस के उपयोगी होकर  
अस-तरंग की भाँति उनमें संस्मरण करते हैं । संस्मरण ही संचारियों का गुण है क्योंकि  
ये भाव रस की मिडि तक सिधार नहीं रख पाते हैं । सुखसुखी के कथनानुसार 'ओ  
भाव ऐसे हैं जिन्हें किसी भाव को प्रकट करने देना या सुनकर दर्शक या श्रोता भी  
उनकी भावों का सा अनुभव कर सकते हैं वे तो प्रधान भावों में रने मए हैं रोप भाव  
और मन के वेग कथावियों में शामिल मये हैं ।<sup>२१</sup> अतः यह स्पष्ट है कि संचारियों के  
अन्तर्गत जीवन का संस्मरणधीन स्वल्प ही दृष्टिकोण ही मचता है ।

१८. रासो, समय ६६ । ६४६ ।

१ काव्य-वर्णन पृ० ८४ ।

२०. सावेत पृ० ११६ ।

२ रस मोमाला पृ० २०२, २०३ ।

हिन्दी-महाकाव्यों की भावभूमि के आधार पर, संघर्षी नारियों के अंतर्गत नारी जीवन की जो विविध तरंगारविमयी दृष्टियोंपर होती हैं, उन्हें हम नारी के जीवन-सागर की संचरमण्डीस भाव-तरंगों मान सकते हैं। संघर्षियों की तरह इन भाव-तरंगों का स्वल्प भी विविधता का अर्थक है। संक्षेप में यह इस प्रकार है—

निर्वेद की दृष्टि से नारी के जीवन में ऐसे क्षण का उपस्थित होते हैं जब ईर्ष्या अपमान आपत्ति, व्याधि, दृष्ट-विमोघ पारिव्रिय अथवा आक्षेप के कारण वह हीन चिन्तित ममिन् अथवा अयु विगलित हो उठती है। अपने साक्षसे नाम का विमोघ नारी को जिस स्थिति में ला उड़ा करता है, वह स्थिति जीवन को निस्तार-सा अनुभव करती हुई विरक्ति से परिपूर्ण हो उठती है और नारी का जीवन निराशाचलित निर्वेद भावना से भर जाता है—

विविधता इन में है । छक्ति बाकी नहीं है ।

तन तब सकने की हो पये कील ऐसी ।

बहु इस क्षणनि में माय्यबानी बड़ी है ।

अक्षर पर लोवे मुरमु के बंध में जी ।

बहु कलाप चुकी हैं राग भी ही चुकी हैं ।

अप कर कितनी ही रात रो चुकी हैं ।

अथ न हृदय में रक्त का सेज बाकी ।

तन बल प्राप्ता में सभी को चुकी हैं ।<sup>१</sup>

मनस्ताप यम दुःख अथवा क्षीम के कारण जब नारी में हृदयचलित विकलता निधिलता असहनशीलता अथवा अनुत्साह दृष्टियोंपर होने लगता है तो नारी-जीवन स्थिति से भर उठता है। मर्यादा एवम् क्षीम का परित्याग कर नुस्खनों के समक्ष उपस्थित होने पर बाध्य करना नारी-जीवन की सबसे बड़ी व्याधि का सज होता है। उदाहरणार्थ—

पव पव द्रुपद मुता मिलजानी करत काहू पामर अतापी ।

लजत न रजस्वला में नारी परत विविध धंग हक सारी ।

साहुं धात्र को गुहजन पाये सापहि पातक लबाहि प्रामाये ।<sup>२</sup>

दृष्ट-हानि अथवा अग्नि की आघात मान से नारी में विध्वंसिता स्वर-ध्वंश कंठ का उठना अथवा कंठ-ओष्ठ का धूल नामा स्वाभाविक रूप से दृष्टियोंपर होने लगता है और नारी-जीवन धंका से उद्ध्वलित-सा हो उठता है—]

मंझोरि घर दंपति नारी । प्रतिभा स्वर्णिम नयन बग नारी ।<sup>१</sup>

प्रसूया भाव नारी-जीवन को ऐसे क्षणों में कम्युणित करता दृष्टिगोचर होता है जब दूसरे का उत्कर्ष न केवल मरने के कारण या तो नारी दूसरे के दोषों को प्रकट करने लगती है या निरस्कार, क्रोध व्यथा निम्न की घरण लेती है । जैसे—

उलका निकलु होवे उसने जो लीलापर की आई है ।  
मित्रके कुल का कुछ पता नहीं जो ठीकर जाती आई है ।  
पुच्छको तो बात कहकशी है उंगली जुनिपां दिखलाती है ।  
यह नाटक मित ही होता है बहु रोम बाग में जाती है ।<sup>२</sup>

मानस का मोहमुक्त अतिरेक नारी में सब के रूप में दृष्टिगोचर होता है । सब के क्षणों में नारी-जीवन मादकता से भर उठता है और यह मादकता भीम बने क्षणों को बल सिंसाये हुए, प्रत्यक्ष को भी स्वप्नबन् बना देती है—

सब धर्म मोम से बनते हैं कोयलता में बन जाती हैं,  
मैं सिमिट रही अपने में, परिहास पीत पुन पाली हूँ ।  
सिम्त बन जाती है तरल हृदो, नयनों में भरकर लीक्यता  
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो बहु बनता जाता है अपना ।<sup>३</sup>

अपनी मुकुमारता के कारण धमक अणों में नारी पत्नीता-पत्नीता हो उठती है साँस फूलने लगती है और मुख लूथ जाता है—

प्यासे कटि पय से लय लय ललने बाह माँगते अल ।  
भलके के मोती का पानी पिला छत्रों करती शीतल ॥  
काँटा हुई अबाग प्यास से काँच कूलता है अलता ।  
बारों ओर विपद पदस्वलो का है दृश्य नजर आता ॥<sup>४</sup>

परिधम व्याधि जापरस अचना यमविम्या के क्षणों में नारी में आनन्द भाव दृष्टिगोचर होता है । यथा—

आपत रैनि अदृज विन तारा । नई अलत सोवत बेकरारा ।<sup>५</sup>

अवस्था

निद्राजीत सुनेत्र मध्य मुखरा जो स्वप्न की वयोधि थी,  
नी होके बहु का लगी हृदय की संवाहिका धारित से,

१. मानस, लंकाकांड पृ० १०४६ ।

२. गुरजरा पृ० १२ ।

३. गुरजरा पृ० १४ ।

४. आपसी संवाहनी पृ० १४२ ।

५. कामायनी पृ० ६८ ।



हिन्दी-महाकाव्यों की भावभूमि में आचार पर, संचारी भावों के अंतर्गत नारी जीवन की जो विविध तरंगानलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, उन्हें हम नारी के जीवन-सागर की संचरणशील भाव-तरंगों मान सकते हैं। संचारियों की तरह इन भाव-तरंगों का स्वल्प भी विविधता का अंग है। संक्षेप में यह इस प्रकार है—

निर्बल की दृष्टि से नारी के जीवन में ऐसे क्षण या उपस्थित होते हैं जब ईर्ष्या अपमान आपत्ति, व्याधि, दह-वियोग वारिधय अथवा आसिप के कारण वह बिन चिन्तित मसिन अथवा मधु विगमित हो उठती है। अपने भाइसे लाल का वियोग नारी की बिस्म स्थिति में ला सका करता है, वह स्थिति जीवन को निस्सार-सा अनुभव करती हुई विरचित से परिपूर्ण हो उठती है और नारी का जीवन निरुत्साहित निर्बल भावना से भर जाता है—

विचित्र इस में है । सखि बाकी नहीं है ।  
तन तन लकने की हो गये सीख ऐसे ।  
बहु इस अवनति में माम्बाली बड़ी है ।  
अक्सर पर सोये मृत्पु के घर में जो ।  
बहु कल्प चुकी हूँ राख नी हो चुकी हूँ ।  
जय कर कितनी ही रात रो चुकी हूँ ।  
घर न हृदय में रक्त का लेख बाकी ।  
तन बल आशा में तनी जो चुकी हूँ ।<sup>१</sup>

मनस्ताप धम कुछ अथवा शोक के कारण जब नारी में हृदयवन्धित विकलता विचित्रता असह्यनीयता अथवा अनुत्साह दृष्टिगोचर होने लगता है तो नारी-जीवन स्तम्भ से भर उठता है। मर्यादा एवम् धीन का परिणाम कर पुस्त्रों के समस्त उपस्थित होने पर बाध्य करना नारी-जीवन की सबसे बड़ी व्याधि का क्षण होता है। उदाहरणार्थ—

पद पद ह्रुपद सुता बिलसानी, करत काह पामर अग्रानी ।  
लखत न रजस्वला में नारी परत निविष्ट धीन इक सारी ।  
जाहुँ प्राय जो पुस्त्रन भागि, भागहि पातक सबहि अमाये ।<sup>२</sup>

दह-हानि अथवा अनिष्ट की आसंका माघ से नारी में विचर्यता स्वर मंग कंठ का उठना अथवा कंठ-जोड़ का मूल जाना स्वाभाविक रूप से दृष्टिगोचर होने लगता है और नारी-जीवन बाँका से उल्लेखित-सा हो उठता है—)

मंशोदरि उर कंचलि भारी । प्रतिमा त्रयविह नयन मग भारी ॥<sup>४</sup>

मधुया भाव भारी-जीवन को ऐसे लक्षों में समुचित करता दृष्टिगोचर होता है। जब दूसरे का उत्कर्ष न देख सकने के कारण या ती भारी दूसरे के दोषों को प्रकट करने लगती है या तिरस्कार, क्रोध अथवा निन्दा की धारण होती है। जैसे—

उसका निम्नाह होते जसते को सोरापर की जाई है ।

जिसके कुल का कुल जता नहीं को छोकर जाती आई है ।

मृच्छको तो बात कहकसी है, पंथली कुमिणी निजलाती है ।

बहु नाटक निज ही होता है बहु रोम बाध में जाती है ॥<sup>५</sup>

मानस का मोहमुक्त अतिरेक भारी में जब के रूप में दृष्टिगोचर होता है। जब के लक्षों में भारी-जीवन भावकता से भर उठता है और यह भावकता योग बने प्रसंगों को बस बिताते हुए, प्रत्यक्ष को भी स्वप्नवत् बना देती है—

सब धर्म नीम से बनते हैं, कोपकला में बल काजो हैं

में सिमिड़ रही अपने में, परिहास पीत मुख पाती हैं ।

स्मित जन जाती है सरत हूँ, नयनों में भरकर बाँकबना

प्रत्यक्ष देखती हैं तब जो, बहु बनता जाता है अपना ॥<sup>६</sup>

अपनी कुतुम्हारता के कारण जब के लक्षों में भारी पर्वीना-महीना हो उठनी है, सोच फूलने सकती है और मुख सूख जाता है—

प्यसे कटि पय से लय लय ततसे बाट भाँसति बल ।

भस्त्रके के मोती का पानी पिला उगड़े करती दीप्तस ॥

कंठो हुई अचान प्यास से सोत फूलता है बाला ।

बारों और बिन्दु नखसली का है दुस्य नजर धाला ॥<sup>७</sup>

परिधम व्याधि प्रागरव अथवा गर्मनिम्बा के लक्षों में भारी में आलस्य भाव दृष्टिगोचर होता है। यथा—

आगत ईनि मृच्छ निज तारा । जई धमस सोबत केकरार ॥<sup>८</sup>

अथवा

विशाधीन धुनेत्र मध्य धुलहा को स्वप्न की व्योम्नि थी

भी होके बहु आ लगी हृदय की संवाहिका धारित से,

४. भावत, संस्कारवृ० १०४३ ।

५. मुरझाई वृ० ५४ ।

६. कामायनी वृ० १५ ।

७. मुरझाई वृ० १२ ।

८. आगती प्रभावनी वृ० १४२ ।

साझासी छहरत्नभार जब से सजार होने लगा,  
पथी भी निज घर व घरम हो बल्लभमाया हुई ।<sup>१</sup>

कुछ-बारिख अथवा मनस्ताप आदि से नारी-जीवन में वैश्य का संस्कार होता है । ऐसे क्षणों में वह भीहत दिखाई पड़ती है—

सीमक हूँ अब साध नहीं । जिनके बल व यहि नीचे प्रचारों ॥  
रोबत रोबत जीवन भयो तन । कैसे सरासन की कर वारी ॥  
वै अबला कस के परिपश्य में । का विधि तों अब माहि निवारी ॥  
कोन उपाय सो है सहि नाथ । बचलक पाई विपत्ति को द्वारों ॥<sup>११</sup>

इह वस्तु की अप्राप्ति होने पर नारी चिन्ता से भर उठती है । नारी-जीवन में चिन्ताओं का अभाव नहीं है । जीवनानुगमन के साथ ही चिन्ता उसे सजाने लगती है—

बैस के बर मोहि धामहि । पिता हमार न धाँच लयावहि ॥  
जीवन मोर भयज अस रंगा । वैह वैह हम्ह लाग धर्मवा ॥<sup>१२</sup>

मोह भी नारी-जीवन का धन है । मय वियोग कुछ चिन्ता, सुख आदि के उत्पन्न होते ही चित्त विषेप के कारण यथार्थ ज्ञान के होते ही नारी में मोह बाधित हो उठता है—

बैखेड धाये कु बर कन्हौ । मयति कहुँ कहुँ बुझि जयायी ।  
इतने ही भइ आमी लख रानी । कहति 'जहा' राजा बीराजी ?<sup>१३</sup>

स्मृति से नारी-जीवन निम्न तरंगित रहता है । किसी भी सादृश्य मूलक वस्तु के अभिनेकन मात्र में उसका मायुक हृदय प्रिय की स्मृति में लीन हो जाता है—

मैत्रोन्माही बहु मुदमयी नीलमा पात की सी ।  
प्यारे नीसे यवन तल के बंक में राजती है ।  
धु में झोधा, घुरन जल में बगिह में दिप्य प्राभा ।  
मेरे प्यारे कु बर बर सी प्रायध है विसासी ।<sup>१४</sup>

नारी-जीवन में बलि के दर्शन उम्र समय होते हैं जब विपत्ति से लोग मोहादि के कारण उसका मन चंचल नहीं होने पाता है । जैसे—

मुझे राज्य का खेद नहीं राम भरत में मेद नहीं ।  
ममभी बहुत राज्य लेबे उसे भरत को है वैबे ।<sup>१५</sup>

१० सिद्धार्थ पृ० १५ ।

११ दासल महाकाव्य १३ । ११ ।

१२ जायसी प्रभावली पृ० २१ ।

१३ हृष्णापन पृ० ७१ ।

१४ प्रियप्रवास १६ । ८७ ।

१५ साकेत पृ० ६६ ।

परिस्थिति विशेष में उठनेवाली लम्बा चीड़ा के रूप में प्रकट होती है। पुरप के समान-प्रमाण से मारी के मन में तरंगित होनेवाली चीड़ा का स्वरूप ही विचित्र होता है—

बुल ललित्य सो समय तब बर न बढ़ती धीन,  
 बही धिधिर निमीच में ज्यों द्योत भार नवीन ।  
 भुल जाती लकीरु बहु लुलुभारता के पार,  
 सब गई पाकर पुण्य का नर्म नय उपचार ॥<sup>१६</sup>

ये सब भाषाई-रूप के कारण जब मारी का चित्त अस्तिवर हो उठता है तो चपलता बचल लहरियाँ भी तरह मारी-बीचन को समीपमय बना देती हैं। मारी में अनुरागमूलक चपलता अव्यक्त आकर्षक रूप में प्रकट होती है—

प्रभुहि चितै पुनि चितै बहि, रागत सोचन सोन ।  
 सेनत मनसिज भीन बुल जनु बिधु मंडल डोल ॥<sup>१७</sup>

इस पदार्थ की भाँति जबका अभीष्ट जन के समानम भाँति से प्राप्त आनन्द मारी जीवन में हर्ष के रूप में लहरा उठता है—

जये स्वयंवर हरि लम्काना । येसो हुलसि कु बरि बर मासा ॥<sup>१८</sup>

मुनद जबका बुझद, त्रिज वा अग्रिम बात के सुनने पर जब मारी अपने कान्त स्वरूप को त्याग कर उत्तेजित हो उठती है तो उसमें भावैष इक्षिणीकर होने लबडा है—

किन्दु बाहे को कुछ हो जाय लहुंगी कमी न यह धम्याय ।  
 कक भी मैं इसका प्रतिकार, लख जाये बाहे लखार ॥<sup>१९</sup>

मारी जिस समय विवेकमूल्य जबका किर्तव्य विमूढ़-सी इक्षिणीकर होती है उन समय उसकी यह चित्तवृत्ति बढ़ता के रूप में प्रकट होती है—

येहर जहाँ यह गई वहाँ पर मिली न बीबी वाली ।  
 जोन मुति सब गई लिये कर में करवान निराली ॥<sup>२०</sup>

मारी जब अपने प्रभाव, ऐश्वर्य विद्या जबका पुनीत्यता भाँति, कब बहुकर करते हुए स्वयं को अन्ध से अधिक समझने लगती है तो उसमें गर्व भाव का प्रसर होता है। जैसे—

१६. काव्यावली पृ० ६४ ।

१७. साकेत पृ० ६१ ।

१८. आनन्द, वागवतक पृ० २०४ ।

२०. पुरावही पृ० ७० ।

१९. इन्द्रधनुष पृ० २०४ ।

मैं तो बहीर की बेटी हूँ मेरा तो कुल है अति उत्तम ।

मौख्य और लाक्षण्य मेरा है नहीं किसी से भी कुछ कम ॥२१॥

इह-हानि असह्यात्मिका अथवा असफलता के कारण जब नारी निरुत्साह हो  
होकर अनुत्पन्न करती है तो उसमें विवाह बाधित हो उठता है—

वर पर धाँधू थी पार बहाई तिर पर

अवच्छिन्न हो उठा कंठ सिसकियाँ लेकर ।

अपनी ऊँचा में आप जली जाती थी,

स्विर भी पर फिर भी बही जली जाती थी ॥२२॥

अस्तित्व के अतर्गत नारी में इह कार्य की सात्त्विक सिद्धि की मायना  
हृद्योत्पन्न होती है । ऐसे क्षणों में वह कुछ उत्तापनी अथवा बहीर हो उठती है—

बीरे बीरे अवरुण करके नख की बल प्यारी ।

जाते की ये अपुत्र लक्ष्मि प्राण से मोठ धार्ये ।

धाँधे कोलीं हरि जननि ने कह से और कोलीं ।

बसा धारणा कु वर हज में नाथ हो ॥२३॥

विषयों से निवृत्त होकर नारी जब विधायन करने की मन-रिक्ति में होती है  
तब निद्रा प्राप्ति के दर्शन होते हैं—

पर मन भी क्यों इतना डीमा, अपने ही होता जाता है ।

यन स्थान जब सी धाँधों में, क्यों सहसा जल भर जाता है ॥२४॥

अपस्मार रोग की वह वृत्ति है जिसमें किसी रोग के समान लक्षण हृद्योत्पन्न  
होते हैं । बेचना जानाथ बाध से नारी का हृदय जब कुर्वलता अनुभव करते हुए गिर  
गिर पड़ता है कम्पित होने लगता है तो नारी-जीवन में अपस्मार परिणतित  
होता है—

बसा धाँधमति बहनि न जायी । निरति भूमि उठि बहुति कमहाई ।

दोरति अहुरि निरत भूमि धरनि । दिरत धुत कसपति नख धरनि ॥२५॥

निद्रा दूर करनेवाले कारणों से अथवा अज्ञान से मिटने पर सचेत होने का नाम  
विबोध है । स्वप्न के कारण एकामक कच्ची नींद से जाग पड़ने के बाद नारी का  
विबोध वैज्ञानिक—

२१ शूरबहूँ पृ० ३२ ।

२२ साकेत-संत ११ । ४३ ।

२३ प्रियमवात ७ । ६० ।

२४ कामायनी पृ० १०४ ।

२५ कृष्णायन पृ० ११६ ।

दुरीयं पञ्चबाहू परिणतु बल मे प्रबल माला हिलने लगी तथा,  
प्रहृस्त कम्पाकृत नेत्र भी लगी, विपुल हस्ताम्बुज से चिमे जये ।<sup>२६</sup>

निष्ठा, अपमान भाग हाथि आदि के कारण जब गारी में चिड़चिड़ाहट मचका  
अपहिन्कुटा इक्षिभोर होती है ता वह अमर्ष भाव से संचरित हो उठती है—

अस धन समुक्त कहति जानकी, अल सुनि नहि रघुवीर जानकी ।  
सठ सुने हरि आनेहि मोही । अथम मिलनज साध नहीं तोही ।<sup>२७</sup>

मय गौरव लज्जा आदि से उत्पन्न हर्ष आदि भावों को जब गारी अनुराईपूर्वक  
घिसाने का प्रयत्न करती है ता उसमें अविश्वाम्पा भाव उत्पन्न हो उठता है—

हेसन निज मुग बिहुष तब छिद्र बहोरि बहोरि ।  
निरखि निरखि रघुवीर छवि बाई प्रीति न बोरि ॥<sup>२८</sup>

अपमान, हृषित व्यवहार आदि के कारण गारी में उग्रता के दयन भी हो  
उठते हैं—

अंधी आवाज ही बेचि लिहूँ । धन मालिनी नहि तरेरि न कोली ॥  
'घोबि कहा तुम बैसत हो हरी । निज कई कुलदावि की कोली ॥<sup>२९</sup>

जब गारी मात्स्वार्थ के विचार से किसी वस्तु का निर्बंध कर लेती है ता इस  
निर्बंध के अंतर्गत नति की व्यवस्था होती है—

औ को नाति कस तुम कोरी । आदि अंत नहि अल न छोरी ॥  
कस जब कहा की धसहि न पाबी । हम तुम नाह, हुई जन साथी ॥<sup>३०</sup>

रोग, वियोग आदि के संघात से गारी का मन जब व्याकुल हो उठता है ता  
उसमें व्याधि के दर्शन होते हैं—

नवन मीर नर ही सखी तु कछी भी नर  
दरक रहा है बेध अथ रोग रोम से स्नेह ।<sup>३१</sup>

मय भोक्त आदि से जब गारी का चित्त भ्रान्त हो उठता है तो उसमें उम्माद  
भाव आवृत्त होने लगता है—

पाके कुही निजक छिद्र यों बालिका व्यथ कोली ।  
मेरी बालें तनिक न कुनी बातली बातली मे ।

२६ तिब्बार्थ पृ० १७२ ।

२७ मानस सुन्दरकांड पृ० ५६० ।

२८ मानस, मातृकाण्ड पृ० २६१ ।

२९ रामल महाकाव्य १४ । ३८ ।

३० जावली व जावली पृ० ३०० ।

३१ बालेल पृ० ९८७ ।

पीड़ा नारी हृदय तल की नारि ही जानती है ।

बूही तू है विकल बचना, छाति तू ही मुझे दे ॥<sup>३०</sup>

भाव के अंतर्गत नारी-हृदय की व्यग्रता दृष्टिगोचर होती है—

बसा कर सज्जती थी मरी मंथरा दासी मेरा ही भव रह सका न बिना बिछासी ।

जल पंजर पत ध्रुव धरे लक्ष्मीर धमामे, ये व्यथित भाव के स्वयं चुन्नी में जाये ॥<sup>३१</sup>

सदेह के कारण जब नारी के मन में ऊहापोह उत्पन्न होता है तो वह बितर्क से पूर्ण हो उठती है—

रहों सजाइ त पिठ जसे गहों त कह मीहू बीठ ।

ठाड़ि तैवानि कि का करी हुनर बुझो बहठ ॥<sup>३२</sup>

नारी-जीवन में उपस्थित होनेवाला वियोग-काल अरुण से कम नहीं होता है । वियोग-काल में नारी मृत्यु के समान ही महानुभव करती है किन्तु मरण के वास्तविक क्षण उपस्थित होने पर भी कभी-कभी उसके लिये मृत्यु-कष्ट न्यून-सा हो जाता है । जैसे—

मिर बहु बड़ी बोध में प्रिय के प्रतिम प्रिय की छाँकी कर ।

बार बार रो लगा चुमने होकर निकल धँक में सर ॥<sup>३३</sup>

इस प्रकार हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में संघारी भावों के अंतर्गत भी नारी-जीवन की विविध तरंगवलियाँ नारी-हृदय में संवरण करने वाले विभिन्न भावों की ध्वजक हैं । नारी के स्वाधी भाव-स्वरूप की तरह उसका संवरणशील स्वरूप भी कुछ कम विसेपताएँ नहीं रखता है ।

### भाव-भूमि की विसेपताएँ

हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि के अंतर्गत व्यक्त नारी-जीवन की भाव-ध्वजना ही अपनी निज की विसेपताओं से अनुप्राणित है । हिन्दी-महाकाव्यों में जहाँ एक ओर रस की मधुमती क्रिया के साथ नारी-जीवन के विभिन्न भावारमक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं वहीं दूसरी ओर उसकी भावाभिव्यक्ति उसे एक औरनशासी व्यक्तित्व भी प्रदान करती है । भाव-अभिव्यक्ति के साथ ही हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि में नारी के प्रति सहृदय दृष्टि का अभाव नहीं है । भाव-ध्वजना की दृष्टि से उसका स्वकीया स्वरूप तो अपने आप में महान् ही है परन्तु परकीया के रूप में भी उसकी जो भाव-ध्वजना हुई

है, वह पूर्ण सहृदयता के साथ हमारे सामने आती है। नारी के सामान्या स्वस्व को भी हिन्दी-महाकाव्यों की भाव-भूमि में सहृदयतापूर्वक व्यक्त किया गया है। सदाचरन का परम्परित स्वस्व ही भाव-व्यवस्था के माध्यम नहीं रहन पाये हैं और भावना के उत्तरोत्तर विकास द्वारा नारी के कुटिल कठोर कुबुद्धिबलित कर्ममय को भी यमो विरामवक के माध्यम द्वारा बोलने का प्रयत्न किया गया है।

हिन्दी-महाकाव्यों की भावभूमि का एक खोर यदि विरिमा भूमि लक्ष्य के बेरी जाती भावनाओं से अनुप्राणित होकर चलता है तो अपने दूसरे खोर तक पहुँचते-पहुँचते वह भावना नारी को अज्ञानम स्वीकार करते हुए उसके सर्वमयता स्वस्व की वापसा करती है। सबसे में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की भाव भूमि 'लोक' पर न चलते हुए भी अपनी सावना-मध्य दृष्टि से अनुप्राणित रही है और नवीनता के समारोह द्वारा कामानुसरण एवम् सुख दृष्टि की बहुभुत समता रखते हुए, इस भाव-भूमि ने अपने सावना-सम्ब भाव-मार्ग को प्रस्तुत ही किया है। इस भाव सावना ने जहाँ नारी-चरित्रों को नवीनता प्रदान की है वही सदियों की सावना-सम्ब दृष्टि के अङ्कुश ने उस टक्कू-सम मलौहृति को इस भावभूमि में पनपने का अवसर प्रदान नहीं किया है जो विजातीय या विदेशी है। इसलिये इस भाव-भंगा का अन्त नदता नहीं हो पाया है। साव ही सुपरहित एवम् सावना-सम्ब दृष्टि के समन्वय के परिणाम स्वयं भावात्मक आदर्श अनुकरणीय ही न रह कर जीवन से अनुप्राणित भी हो उठा है। अतः हिन्दी-महाकाव्यों की एक हजार वर्षों की यह भाव भूमि नारी की भावात्मक सत्ता की प्राक्-प्रतिष्ठा करने में सफल हुई है और 'कुस काँस' की तरह विषम युग की अवास्तविक नारी को अपने भाव-शेष से उजाड़ कर इस भाव भूमि ने अपनी उर्वरा पत्ति को सुरक्षित बना लिया है।





हिस्ती-महाकाव्यों की कला युनि में नारी की सीदर्य-व्यवस्था पर विचार करने के पूर्व कला सीदर्य एवं नारी का तात्त्विक विवेचन कुछ आवश्यक हो जाता है। सामान्यतः वस्तु विवेचन में प्रयोजित कौशल को कला की संज्ञा प्रदान की जाती है। काव्य-रचनकार स्व के कलन को ही कला मानते हैं।<sup>१</sup> कला की विभिन्न पाश्चात् परिभाषाएँ<sup>२</sup> कला की महत्ता पर प्रकाश डालती हैं।

सागकेनी कला को शक्ति मानता है और चीन के मतानुसार कला मानस विज्ञान है। इमर्सन कला को ईश्वरीय कार्य का ईश्वरीय मार्ग मानता है और जास्कर वाइल्ड कला में जीवन का रहस्य पाता है। सार्वभौम के मतानुसार कला मनुष्य की आत्माविव्यक्ति की भावना है। जार्ज एमिस कला को पुष्पांकित सत्य समझता है जबकि रस्किन के मतानुसार कला वस्तुओं को मिथ्या रूप में न रखते हुए सत्य रूप में ही प्रकट करती है। सर जॉन रूसक के कलनानुसार जिस प्रकार सूर्य पुष्पों को रंगीन करता है उसी प्रकार कला जीवन को रंगीन बनाती है। बल जामसन एवं जॉन टेस्टर ने कला का एकमात्र ध्येय अज्ञान को माना है। इस प्रकार विभिन्न व्यक्तित्व, जिनकी ही कला की परिभाषा है और जिन ही कला के स्वरूप हैं। पर प्रायः सभी कलाविद् इस बात पर अपनी सहमति व्यक्त करते हैं कि कला सीदर्य की साधना है और सीदर्य की अभिव्यक्ति ही कला का प्रायः-सत्य है।

सीदर्य अपने आप में एक कला है। यह वह नमक है जिसका अभाव जीवन को निस्वार्थ कर देता है।<sup>३</sup> सीदर्य ज्ञान के प्रवर्तक बापार्टन ने सीदर्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि बुद्धि-लेख में जिस वर्म या तत्व की अभिव्यक्ति सत्य रहभाती है,

<sup>१</sup> काव्य दर्पण पृ ३२।

<sup>२</sup> विनयनरी शास्त्र कोलेसन्स पृ० १०१ से १०३।

<sup>३</sup> द विमरी शास्त्र ध्यूरी पृ० १७।



हिन्दी-महाकाव्यों की कला सुनि में मारी की सौंदर्य-व्यवस्था पर विचार करने के पूर्व कला सौंदर्य एवं मारी का तात्त्विक विवेचन कुछ आवश्यक-सा हो जाता है। सामान्यतः वस्तु विधेय में प्रदर्शित लीखल को कला की संज्ञा प्रदान की जाती है। काव्य-व्यवहार स्व के कलन को ही कला मानते हैं।<sup>१</sup> कला की विभिन्न पाश्चात् परिभाषाएँ कला की महत्ता पर प्रकाश डालती हैं।

लापकेनी कला को शक्ति मानता है और जीन के मतानुसार कला मानस विज्ञान है। हमसन कला को ईश्वरीय कार्य का ईश्वरीय कार्य मानता है और आल्फर आल्फर कला में जीवन का रहस्य पाता है। सार्बेन के मतानुसार कला मनुष्य की आत्मनिष्पत्ति की भावना है। जान एमिस कला को पुष्पांकित शिल्प समझता है जबकि रस्किन के मतानुसार कला वस्तुओं को मिथ्या रूप में न रखते हुए सत्य रूप में ही प्रकट करती है। सर जान मुराक के कथनानुसार जिस प्रकार सूर्य पुष्पों को रंगीन करता है उसी प्रकार कला जीवन को रंगीन बनाती है। बेन जानसन एवं जान टेलर ने कला का एकमात्र सन्तु अज्ञान को माना है। इस प्रकार विभिन्न व्यक्ति हैं, जिनकी ही कला की परिभाषाएँ हैं और जिनने ही कला के स्वरूप हैं। पर प्रायः सभी कलाविद् इस बात पर अपनी सहमति व्यक्त करते हैं कि कला सौंदर्य की साधना है और सौंदर्य की अभिव्यक्ति ही कला का प्राण-रस है।

सौंदर्य अपने आप में एक कला है। यह वह नमक है जिसका अभाव जीवन को बिस्वार कर देता है।<sup>२</sup> सौंदर्य-शास्त्र के प्रवर्तक बायपार्टन ने सौंदर्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि बुद्धि-जीन में जिस धर्म या तत्त्व की अभिव्यक्ति सत्य कहलाती है,

<sup>१</sup> काव्य दर्पण पृ ३२।

<sup>२</sup> हिंसवरी शास्त्र कोडेक्स पृ० १०१ से १०३।

<sup>३</sup> हिंसवरी शास्त्र धूम्री पृ० १७।

इन्द्रियानुभव के क्षेत्र में उसी अभिव्यक्ति का नाम सौंदर्य है।<sup>४</sup> सौंदर्य के मतानुसार सौमित्र या भान्त में खसीम अथवा जनस्त की झांकी सौंदर्य है।<sup>५</sup> सरस्तु सौंदर्य को ईश्वर प्रदत्त प्योटो स्वाभाविक भेद्यत्व का कारण और होम भविष्य की वचनबद्धता मानता है।<sup>६</sup> यूनानी सौंदर्य आस्था वर्धन के अनुसार सौंदर्य का नैतिक अन्धकार और ठात्विकता से असम अस्तित्व नहीं है। सुन्दर वह है जो शुभ या मंगलमय है, और सबसे अधिक सुन्दर वह है जो ठात्विक है।<sup>७</sup> सरस्तु ने सौंदर्य को समझने का अधिक वैज्ञानिक प्रयास किया है। अपने तत्त्व-शास्त्र में उसने सुन्दर और शुभ में भेद करने की चेष्टा की है। एक जगह वह यह भी मान लेता है कि सौंदर्य आवश्यकता एवं उपयोगिता से असम भिन्न है। उसने यह महत्वपूर्ण बात भी कही कि सुन्दर की अनुभूति से उत्पन्न आनन्द में इच्छा या वासना का समावेश रहता है।<sup>८</sup>

बामगार्टन एम्. खॉमिंग के अतिरिक्त जर्मनी के अन्य सौंदर्य-शास्त्रियों ने भी अपने-अपने ढंग से सौंदर्य की व्याख्या की है। हीगन के अनुसार बहुत्व का एकत्व में परिणित हो जाना सौंदर्य का मूलभूत है। वह सत्य न इन्द्रिय ग्राह्य रूप को सौंदर्य मानता है। कान्ट सौंदर्य को मनोगोचर समझता है। सापेक्षतावाद इच्छा-शक्ति के वस्तु रूप में प्रकट होनेवाला प्रकाश को सौंदर्य मानता है।<sup>९</sup>

फ्रांसीसी सौंदर्य-शास्त्रियों के अन्तर्गत डिड्रो के कथनानुसार वस्तु के विभिन्न अवयवों की समन्वयता का नाम सौंदर्य है। पेरे डेफियर के मतानुसार प्रत्येक वस्तु का सुन्दर वस्तु विषयक आवश्यक अलग-अलग होता है और वस्तु विषयक आदर्श-सादृश्य के आधार पर ही उसी परिमाण में वस्तु-सौंदर्य होता है। श्विटर कसिन धृन्वत्ता को सौंदर्य का मुख्य एवं सार्वभौमिक लक्षण नहीं मानता। वह एकता एवं विविधता दोनों को ही सौंदर्य-साधन समझता है। उसकी दृष्टि में सौंदर्य तीन प्रकार का होता है—भौतिक नैतिक एवं मानसिक। वह भौतिक सौंदर्य को साधमूलक एवं मानसिक सौंदर्य को आदर्श सौंदर्य मानता है। डेव्यूक सौंदर्य का अहस्य चरणा का प्रकाश समझता है। उसके मतानुसार प्राणी-सृष्टि का सौंदर्य मुख्यतः वस्तु के परिमाण वैधिम्य वर्ण, कोमलत्व आदि अनेक बातों पर अवलम्बित होता है। उसकी मान्यता है कि धृन्-सृष्टि का सौंदर्य अचेतन शक्ति का प्रकाश है।<sup>१०</sup>

४ इन सा० ब्रिटानिका पृ० २१२।

५ पाश्चात् दर्शन पृ० ३७४।

६ डिक्शनरी ऑफ कोडेयान्त

पृ० १२८, १२९।

७ पाश्चात् दर्शन पृ० ३६७।

८ वही पृ० ६८।

९ आन कोष पृ० २४०।

१० वही पृ० २४०।

आत्म-परिचयों में भी सौंदर्य का विशेषण अपने-अपने ढंग से दिया है। साईं भैरवचरित्र में सौंदर्य-ज्ञान के लिए स्वतन्त्र आनन्दिक का अस्तित्व स्वीकार किया है। भैरवचरित्र में सौंदर्य को जड़-सृष्टि-सौंदर्य, जीव-सृष्टि-सौंदर्य एवं प्रकृतिसौंदर्य—ऐसे तीन रूपों में विभक्त किया है। हनुमान सौंदर्य के लिए बाह्य अस्तित्व की आवश्यकता को स्वीकार करता है। वह सौंदर्य को सापेक्ष एवं निरपेक्ष दोनों रूपों में मानता है। उसके मतानुसार वैश्वरूप में एकत्व का होना सौंदर्य का मूल है। हेमिल्लन एकत्व एवं बहुत्व के संयोग को सौंदर्य मानता है। उल्लिखित भवभट्ट स्वयं की अभिव्यक्ति को सौंदर्य समझता है और वेन की मान्यता है कि सौंदर्य मूल-समुच्चय पर अवलम्बित है।<sup>११</sup>

दांडिन के मतानुसार जीव-विकास में यौन सम्बन्ध के चुनाव में सौंदर्य सर्वत्र महत्वपूर्ण स्थान रहा है। स्वप्नर सौंदर्यानुभूति का एक निरदेश्य क्रिया मानता है। सौंदर्यानुभव में कितनी ही ठोपी इतिशयोक्तियाँ होती हैं। उनमें उतना ही अधिक आनन्द होता है।<sup>१२</sup>

विभिन्न सौंदर्य-शास्त्रियों की उक्त विचारधारा से यह स्पष्ट हो जाता है कि सौंदर्य के स्वरूप एवं आकार के सम्बन्ध में ही मतभेद नहीं बल्कि उसने उपयोग तथा उपभोग के सम्बन्ध में भी मत-मतान्तर चल आ रहे हैं। सामान्यतः हम उसे ही सुन्दर मानते हैं जो मधनातिशय के साथ-साथ आनन्ददायक भी हो। हरचिन एहमनका कहना है कि चिरन्तन राव का अवलोकन करना किसी वस्तु की स्वयं उसी के विभिन्न देखना है। विद्युत् सौंदर्यपरक दर्शक सामग्री अपने को मूल जाता है और समार को—कसा के संसार को—मात कर लेता है।<sup>१३</sup> दूसरे लक्ष्यों में यह कहा जा सकता है कि कसा का संसार सौंदर्य का संसार है। कसा की साधना सौंदर्य की साधना है। इस साधना की एकमात्र मर्त कसा विषयक सुरभि है। एहमन की मान्यता है कि कसा बुद्धि का ही दूसरा नाम है जो एक सामान्यस्वरूप समाज में मनुष्य के बारे में अपारों को अनुमानित करेगी जैसा कि वह आज उन विफलिप्त कृत्रिमों में उल्लासपूर्ण कर रही है जिन्हें हम सौंदर्यात्मिक के लक्ष्यों में सुन्दर कहते हैं।<sup>१४</sup>

कसा, और विशेषकर काव्य-मत्ता में सौंदर्य-बोध सुरभि-सम्पन्नता पर ही निर्भर होता है। काव्य रमणीयार्थ प्रतिपादक एवं रम्यता होने के कारण सौंदर्योपासक भी होता है और कव्य की यह सौंदर्योपासना ही उसकी कसा का एक कीमत

११ इन साह० विद्याभिका पृ० २११-२२। १२ यार्न के उपयोग पृ० १६४।

१३ वाङ्मय दर्शनों का इतिहास

१४ काली पृ० १७१।

है। काव्य का सौन्दर्य-स्रोत बचना उसका कला-संसार या तो प्रकृति है या मानव। काव्य का आस्वादनकर्ता सुख-सम्पन्न समाज ही होता है। अतः सुख की भविष्यकामना में काव्य को भित्त कीपल की तरह लेनी पड़ती है वह काव्य की कलारमकटा होती है और इस कलारमकटा द्वारा सौन्दर्य की उपासना करते हुए काव्य आनन्द की सृष्टि एवं प्रसार का कारण ही नहीं होता अपितु सौन्दर्य-रसि का परित्करणकर्ता भी होता है। बस कि मुक्तजी ने कहा है 'मनुष्यता की सामान्य भूमि पर पहुँची हुई संसार की सब सम्म बातियों में सौन्दर्य के सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हैं।'<sup>१४</sup> इन सामान्य आदर्शों की प्रतिष्ठा का अर्थ कला को है। अतः सौन्दर्य और कला अनन्योन्यामिष्ठ हैं।

नारी अपने आप में एक सौन्दर्य और एक कला है। संसार की दो महान सम्पदाओं अर्थात् धूलानियों और भाण्डियों ने अपनी-अपनी कला की अभिव्यक्ति देवियों की कल्पना नारी रूप में कर अपनी सुख-सम्पन्नता एवम् सौन्दर्य-बुद्धि का ही परिचय दिया है। इस कल्पना का आधार कला एवम् सौन्दर्य का समन्वय ही जान पड़ता है। बूंदरे ज्यों में नारी कला एवम् सौन्दर्य का समन्वित सजीव संस्करण है। तुलसीदासजी के शब्दों में कहा जाय तो वह सुन्दरता को भी सुन्दर बनानेवाली और छविगुह के मध्य दीप-छिछा की तरह प्रदीप्त होनेवाली है।<sup>१५</sup> मर्तुहरि भी संसार में कमसनपनी स्त्रियों से अधिक सुन्दर अन्य वस्तु नहीं मानते।<sup>१६</sup> येकांत भी यह कहने की अनुमति चाहता है कि संसार की सर्वाधिक सुन्दर वस्तु एक सुन्दर नारी है।<sup>१७</sup> हमसैन ने नारी को एक प्राचीन कवि माना है जो अपने वसंस्कृत वाणी को तुमारी है और उन सब में बिकने निकट वह पहुँचती है, कोमलता आद्या तथा प्रवाह का रोपन करती है।<sup>१८</sup> अतः संसार की इन सर्वाधिक सुन्दर वस्तु की सौन्दर्य-व्यवस्था करते समय कला में सांस्कृतिक सुख-सम्पन्नता कोमलता आद्या एवम् प्रवाह का संवरण होना स्वाभाविक है। यदि यह सत्य है कि 'सौन्दर्य की सर्वोच्च अभिव्यक्ति कला में होती है' तो यह भी सत्य है कि सौन्दर्य की सर्वोच्च अभिव्यक्ति के लिए कला को संसार की इस सर्वाधिक सुन्दर वस्तु—नारी के सौन्दर्य—को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में कला सौन्दर्य एवम् नारी एक-बूंदरे के पूरक ही सिद्ध होते हैं। सौन्दर्य नारी की शोभा ॥ नारी कला की शोभा है और कला सौन्दर्य की शोभा है।

१४. रस नीमासा पृ० ३०।

१५. मानस भाष्यार्थ पृ० २३५।

१७. मृत्कार शतक ३३।

१८. विषयमयी साक कोटेशन पृ० १०३८।

१९. बही पृ० १३८ ३८।

२०. पारचात् वर्णनों का इतिहास पृ० ३७४।

## नारी-सौंदर्य के बाह्य उपकरण एवम् सनका वर्गीकरण

सम्पत्ता के विकास के साथ ही रश्मि का विकास भी स्वाभाविक है। ऐय एवम् काल के अनुसार सन्ध्य में रश्मि-भेद उपस्थित होता रहता है। रश्मि जब प्रवृत्ति का रूप ग्रहण कर लेती है तो कला कुछ सामान्य जातियों की प्रतिष्ठा कर रश्मि को मरश्मि में परिचित करती दृष्टिगोचर होती है। 'विस सौंदर्य को प्रवृत्ति अपने भीड़े विविध बड़-उपादानों से व्यक्त करती है उसे कला में इच्छित सूक्ष्म उपादानों से बांध लिया जाता है।' सुषमबी के कलानुसार जिस प्रकार की रूप रेखा या वर्ण विन्यास से किसी की तबाकार परिचय होती है, उसी प्रकार की रूप रेखा या वर्ण विन्यास उसके लिए सुन्दर है।<sup>१</sup> नारी-सौंदर्य के लिए व्यवहृत वह तबाकार परिचय अपने आप में बड़ हो गई है और सौंदर्य-विन्यास की दृष्टि से नारी-सौंदर्य को व्यक्त करने के लिए कुछ लक्षणों एवम् बाह्य उपकरणों का साधन ग्रहण किया जाता है। इन दृष्टीय लक्षणों एवम् उपकरणों का आकार या तो काम-शास्त्रीय विन्यास है या सामुद्रिक लक्षण। सुवर्ण-सम्पन्नता के नाम पर सौंदर्य-विन्यास के हेतु कुछ आसंकारिक लक्षण भी निर्धारित कर लिए गए हैं और कुछ नैसर्गिक उपकरण भी चुटा लिए गए हैं। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम उन्हें निम्न भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं—

[१] काम-शास्त्रीय—काम शास्त्रीय आकार पर स्थियों को पधिनी चित्रिणी संक्षिप्ती एवम् हस्तिनी इस प्रकार चार रूपों में देखा गया है। इनमें प्रथम दो श्रेष्ठ समझी गई हैं। अतः सौंदर्य के आरम्भ भी वहीं के लक्षणों से प्रवृत्ति किए गए हैं। सौंदर्य के लक्षणों की दृष्टि से पधिनी का कमलसमानी सुख रंज नासिका वाली अविरल कुच मुग्धा शीर्ष केजी कुलांगी मुखर्ष की सी कांतिवाली पद्म रंज सुवेदी मूढवयनी सुकुमापी लज्जाशीला रामहंस की सी गविवाली मृदुल मुक्तास संपुक्त, मृत्-यान में रश्मि रखनेवासी एवम् रित रति तथा भोजन में अल्पता भरतनेवासी होना आवश्यक है। चित्रिणी में सुन्दरता के साथ बांधव्य अल्प लज्जाशीलता एवम् परिहास-प्रियता दृष्टिगोचर होनी चाहिए। वह सकल गुण विविधा, स्निग्ध वैज्ञोत्पभासी रति रसज्ञा एवम् सन नर विरल रोम रखनेवासी हो।<sup>२</sup>

[२] सामुद्रिक—स्त्री-रूप के सम्बन्ध में कुछ बहियाँ सामुद्रिक लक्षणों से भी प्रवृत्ति की गई हैं। सामुद्रिक लक्षणों की दृष्टि से स्त्री की देह वर्ण रंज आकर्षक सत्त्व

१ पादशास्त्र दर्जनों का इतिहास

पृ० ३७४।

२ रस नीमाता पृ० ३०।

३ हि० सा० की सुविधा पृ० २१२

एवम् लज्जा मा० सा० का मा० देह

पृ० २१६, २० के आधार पर।



स्वर, गति और छाया पर विचार किया जाता है।<sup>४</sup> सामुद्रिक छात्र स्त्री के मुख चित्र के भी सुमासुम लक्षणों को व्यक्त करता है। अतः रूप-सौन्दर्य की व्यंजना करते समय जिन उपकरणों का उपयोग उपमान के रूप में किया जाता है उनकी सौख्य ब्यथा उनका स्वरूप प्रायः सामुद्रिक लक्षणों पर ही आधारित है। अतिकाव्य बाह्य उपकरणों का अनुभाव इन लक्षणों के अनुरूप ही किया गया है। रूप-वर्णन की दृष्टि से कहीं-कहीं इन सामुद्रिक लक्षणों का ही उपकरण के रूप में प्रयोग हुआ है। रूप-वर्णन के उपकरणों के अंतर्गत इन सामुद्रिक लक्षणों की चर्चा आगे की गई है।

[३] आत्मकारिक—गारी-सौन्दर्य के वर्णनकरण की दृष्टि से काव्य-साहित्यों में नायिकासङ्कार के अंतर्गत स्त्रियों की जीवनवस्था के अनुभाव-रूप अद्वैत अलंकार माने हैं जिनमें तीन प्रमुख सात अवलम्ब एवम् अठारह स्वभावक हैं। मातृ, हृत्, और हेला प्रभाव हैं जिनका शरीर से सम्बन्ध होता है। सोमा कान्ति दीप्ति, माधुर्य प्रगल्भता औदार्य, शैव्य अलम्ब कहलाते हैं क्योंकि ये कृति-साध्य नहीं होते हैं। स्वभाव के अंतर्गत सीमा भिलास विच्छिन्ति, विच्छोक किञ्चिन्निष्ठ मोटासिष्ठ कुट्टसिष्ठ विभ्रम सलित मय विच्छूत उपल मीमंष्य विसेष कुरूपहृत् हसित चकित तथा कैलि की गणना होती है और ये कृति साध्य होते हैं। एक ओर जहाँ इन्हें सौन्दर्य के सक्षय माना जा सकता है वहीं सौन्दर्य-विषय की दृष्टि से इनका उपयोग उपकरण की भाँति भी किया जा सकता है।

[४] नैसर्गिक—गारी-सौन्दर्य की व्यंजना की दृष्टि से नैसर्गिक उपकरणों का अत्यन्त महत्व है। उपमान के रूप में नाम आनेवाले ये नैसर्गिक बाह्य उपकरण कद से हो चुके हैं और रूप-वर्णन के अंतर्गत लिए जानेवाले गल-विह्वल वर्णन में प्रायः इनका प्राधान्य होता है।

[५] शून्य—गारी-सौन्दर्य की भी-वृद्धि करनेवाले शून्य बाह्य उपकरणों में कुछ वस्तु विषयक होते हैं जैसे स्वर्ण वीर आदि। कुछ वर्णनकरण विषयक होते हैं जैसे भ्रूवण-वस्त्रादि। कुछ वर्णन विषयक माने जा सकते हैं क्योंकि सौन्दर्य की भी-वृद्धि में रूप-वर्णन का भी बहुत बड़ा हाथ होता है। इसके अतिरिक्त कुछ बाह्य उपकरण अमत्कार-वृद्धि में निमित्त भी अपना लिए जाते हैं। किन्तु ऐसे उपकरण धूर की सूत्र अधिक उपकरणायक कम होते हैं।

हिन्दी-महाकाव्यों का रूप-वर्णन

हिन्दी-महाकाव्यों की कला भूमि के अंतर्गत गारी का जो रूप-वर्णन हुआ है,

उसे मोटे रूप में हृय दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम को व्यक्तित्व प्रधान एवं द्वितीय को अवयवप्रधान कहा जा सकता है। प्रथम के संतर्पण गायी की रूप रचना एवम् द्वितीय के व्यक्तित्व प्रधान करती है और द्वितीय के संतर्पण पिछ-नल-निम्पण का आशय है। व्यक्तित्व प्रधान रूप-वर्णन स्वाभाविक रूप में भी प्रस्तुत किया गया है और अवयवप्रधान रूप में भी। अवयवप्रधान रूप-वर्णन में वर्णकरिता का ही आशय है। अंतर्करिता रूप-वर्णन में उपमा, रूपक उत्प्रेक्षीति की भरमार है।

उपेक्ष प्रथम हृय गायी के व्यक्तित्व प्रधान रूप-वर्णन को लेते हैं। जहाँ यह स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुआ है, वहाँ गायी के सहज व्यक्तित्व की सत्य दृष्टिबोध होती है। उदाहरणार्थ—

मैं इन्त बहमावति गायी । रवि रवि बिबि सब कला संवारी ॥  
जब देवा देखि रज सुवसता । नंबर जाह सुहुने बहुत पासा ॥  
देवी माग चलत गिरी पेढी । कति नाये होइ बूझ बंटी ॥<sup>१</sup>

अथवा

सोह बहत तनु सुनार गायी । जयत कमलि अनुजित दृष्टि गायी ।  
हुन सज्जन सुवेत सुहाए । सज्जन-सज्जन रवि सखिहू बनाए ॥  
रव सुनि जब सिय पगु गायी । देखि कय मोहे नर-नारी ॥<sup>२</sup>

या

कुछ से सब स्नान धियु, पीताम्बर परिमाण किए,  
रविप्रता में बसी हुई, देवार्चन में लगी हुई,  
सुखिबसी ममता नाया, कोहल्या कोमल काया ।<sup>३</sup>

वर्णकरिता के संतर्पण गायी का व्यक्तित्व प्रधान स्वरूप अपनी सुपमा संतर्पण एवं गायी के वर्णकरिता हो सता है। गायी की इस रूप-वर्णना में कहीं उपमा प्रत्येकाओं की नहीं-ही बंध गई है और वही प्रतीकप्रकृता ने उसके व्यक्तित्व को प्रतीक एवम् बहुमुख बना डाला है। जैसे—

कनोबाव प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेनु चिप्यानवा ।  
छर्चपी बलहामनी सुरतिका कीड़ा कला पुतली ।  
छोपा बारिधि की समुत्प धरि ली लाजव्य लीलापली ।  
भी राया मृगवाविसी मृग भूमी भाग्य की मूर्ति थी ॥<sup>४</sup>

१. कामरौ प्र पावली पृ० २० ।

२. बलह, बालकंह पृ० २७४ ।

३. साकेत पृ० ६२ ।

४. प्रियम्वता २ । ४ ।

स्वर, गति और आवा पर विचार किया जाता है।<sup>४</sup> सामुद्रिक शास्त्र सभी के लक्ष्य शिक्ष के भी घुमावुध लक्षणों को व्यक्त करता है। मत् रूप-सीधर्य की व्यंजना करते समय बिना उपकरणों का उपयोग उपमान के रूप में किया जाता है। उनकी खोज बचवा उनका स्वल्प प्राय सामुद्रिक लक्षणों पर ही आधारित है। अधिकोक्त बाह्य उपकरणों का प्रताप इन लक्षणों के अनुस्यू ही किया गया है। रूप-वर्णन की दृष्टि से कहीं-कहीं इन सामुद्रिक लक्षणों का ही उपकरण के रूप में प्रयोग हुआ है। रूप वर्णन के उपकरणों के संतर्गत इन सामुद्रिक लक्षणों की चर्चा जाये की गई है।

[३] धार्मिक—गारी-सीधर्य के वर्णनकरण की दृष्टि से काव्य-साहित्यों में नायिकावर्णन के अंतर्गत स्त्रियों की यौवनावस्था के अनुमान-रूप अद्वैत वर्णन माने हैं जिनमें तीन भेद सात अवलोकन एवं अठारह स्वभाव हैं। मातृ, हार और हेमा भंजन हैं जिनका शरीर से सम्बन्ध होता है। मोमा कान्ति दीप्ति माधुर्य प्रपन्नता मोदय, दीर्घ अवलोकन कहलाते हैं क्योंकि ये कृति-साध्य नहीं होते हैं। स्वभाव के अंतर्गत जीना विसास विच्छिष्टि, विच्छोक किस्किधित मोदयित कुट्टमिध विभ्रम सतिध मर विच्छुत उपन भोग्य विलेप, कुपुहस इतिध चकित तथा केमि की मयना होठी हैं और ये कृति साध्य होते हैं। एक ओर जहाँ इन्हें सीधर्य के लक्षण माना जा सकता है वहीं सीधर्य-विचन की दृष्टि से इनका उपयोग उपकरण की भाँति भी किया जा सकता है।

[४] नैसर्गिक—गारी-सीधर्य की व्यंजना की दृष्टि से नैसर्गिक उपकरणों का अत्यन्त महत्त्व है। उपमान के रूप में काम मानेबान में नैसर्गिक बाह्य उपकरण रूप से ही चुके हैं और रूप-वर्णन के अंतर्गत किए जानेबाने लक्ष-लिख वर्णन में प्रायः इनका प्राधान्य होता है।

[५] धातु—गारी-सीधर्य की भी-सूत्रि करनेबाने अन्य बाह्य उपकरणों में कुछ वस्तु विषयक होते हैं जैसे स्वर्ण तीर आदि। कुछ वर्णन विषयक होते हैं जैसे मृणम-वस्थादि। कुछ वर्ण विषयक माने जा सकते हैं क्योंकि सीधर्य की भी-सूत्रि में रंग-बर्ण का भी बहुत बड़ा हाज होता है। इसके अतिरिक्त कुछ बाह्य उपकरण वर्णन-सूत्रि के निमित्त भी अपना लिय जाते हैं। किन्तु ऐसे उपकरण दूर की मूल अधिक उपकरणारम्भक कम होते हैं।

हिन्दी-महाकाव्यों का रूप-वर्णन

हिन्दी-महाकाव्यों की कला-श्रुति के अंतर्गत गारी का भी रूप-वर्णन हुआ है,

उसे मोटे रूप में हथ को भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम को व्यक्तिगत प्रमाण प्रथम द्वितीय को अवयवात्मक कहा जा सकता है। प्रथम के अंतर्गत भागी की रूप धारण करते क व्यक्तिगत प्रमाण करती है और द्वितीय के अंतर्गत शिष्ट-मय-निष्पन्न का प्राधान्य है। व्यक्तिगत प्रमाण रूप-वर्णन स्वाभाविक रूप में भी प्रस्तुत किया गया है और अंतर्कारिक रूप में भी। अवयवात्मक रूप-वर्णन में अंतर्कारिकता का ही प्राधान्य है। अंतर्कारिक रूप-वर्णन में उपमा रूपक, उपरोक्तों की भरमार है।

अब प्रथम हम नारी के व्यक्तिगत प्रमाण रूप-वर्णन को लेते हैं। जहाँ यह स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुआ है, वहाँ नारी के सहज व्यक्तिगत की प्रत्यक्ष इतिवृत्त होती है। उदाहरणार्थ—

मैं हल्का बदमाशति करी। रश्मि रश्मि निमि छल कला संवारी ॥  
जय देवा तेहि संव सुवाता। नंबर पाछ सुनुवे बहुत वाता ॥  
देवी नाथ मलय गिरी बैठी। छवि माने होइ ब्रह्म बैठी ॥<sup>१</sup>

अथवा

छोड़ बरन तनु सुन्दर करी। जगत जननि समुत्पिठ धरि करी।  
रूपन कलन नुरेन तुम्हारे। झङ्क-झङ्क रश्मि छविनु बगाए ॥  
रंग बुनि जल तिल वसु करी। देखि क्य मोहै नर-नारी ॥<sup>२</sup>

या

मुख से कम स्नान किए, पीछाम्बर बरिगात्र किए,  
पमित्रता मैं बची हुई, देवार्चन में लगी हुई,  
भूमिबसी बमला बापा, कीहस्या कोयल कायर ॥<sup>३</sup>

अंतर्कारिका के अंतर्गत नारी का व्यक्तिगत प्रमाण स्वरूप अपनी सुपमा, शौर्य एवं बरिगा से उन्मादित हो उठ है। नारी की इस रूप-धारणा में कहीं उपमा उपरोक्तों की मङ्गो-सी संबंध नहीं है और वही प्रतीकात्मकता ने उसके व्यक्तिगत को जनैतिक प्रथम प्रस्तुत बना जाता है। जैसे—

बरोबरन प्रभुसक्त प्राय कमिका छेलेनु बिम्बाकमा।  
छर्चबी कलहसभी सुरसिका श्रीका कला प्रवती।  
प्रोभा बारिनि की समुत्प धरि ती लामण्य सीतानयी।  
भी राधा मुहुषामिली मुख बुधी माधुर्य की मूर्ति को ॥<sup>४</sup>

१. बालगी व पावली पृ० २०।

३. चाकेत पृ० २२।

२. बालर, बालकांड पृ० २०४।

४. त्रिप्रवस्त ४।४।

स्वर, गति और आवाज पर विचार किया जाता है।<sup>४</sup> सामुद्रिक शास्त्र स्त्री के मुख चित्र के भी सुभाषित अलंकारों को व्यक्त करता है। यतः रूप-सीर्ष्य की व्यवस्था करत समय बिन उपकरणों का उपयोग उपमान के रूप में किया जाता है। इनकी सौन्दर्यवा उनका स्वरूप प्रायः सामुद्रिक अलंकारों पर ही आधारित है। अधिकतर बाह्य उपकरणों का चुनाव इन लक्षणों के अनुकूल ही किया गया है। रूप-वर्णन की दृष्टि से कहीं-कहीं इन सामुद्रिक लक्षणों का ही उपकरण के रूप में प्रयोग हुआ है। रूप-वर्णन के उपकरणों के अंतर्गत इन सामुद्रिक लक्षणों की चर्चा आगे की गई है।

[१] आत्मकथनिक—नारी-सीर्ष्य के वर्णन के दृष्टि से काव्य-शास्त्रियों ने नायिकावतार के अंतर्गत चित्रों की व्यवस्था के अनुसार-रूप अठारह वर्णन करे हैं जिनमें तीन धंगज सात अत्यन्त एवम् अठारह स्वभाव हैं। भाव हास और हेला धंगज हैं जिनका खतर से सम्बन्ध होता है। सोमा कान्ति, शीघ्रि माधुर्य प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य अत्यन्त कहलाते हैं क्योंकि ये कृति-साध्य नहीं होते हैं। स्वभाव के अंतर्गत सीमा विमल विच्छिन्ति विच्छोक, किमकिंचित मोटावित कुट्टमित विभ्रम मसित मय विच्छूत उपन योग्य विशेष कुतूहल हसित चक्षुः तथा केलि की बचना होती है और ये कृति साध्य होते हैं। एक ओर वहाँ इन्हें सीर्य के लक्षण माना जा सकता है वहीं सीर्य-चित्रण की दृष्टि से इनका उपयोग उपकरण की भाँति भी किया जा सकता है।

[४] वैचर्यिक—नारी-सीर्ष्य की व्यवस्था की दृष्टि से वैचर्यिक उपकरणों का अत्यन्त महत्त्व है। उपमान के रूप में काम आनेवाले ये वैचर्यिक बाह्य उपकरण रूप से हो चुके हैं और रूप-वर्णन के अंतर्गत किए जानेवाले नव-लक्षण वर्णन में प्रायः इनका प्राधान्य होता है।

[५] अन्य—नारी-सीर्ष्य की भी-वृद्धि करनेवाले अन्य बाह्य उपकरणों में कुछ वस्तु विषयक होते हैं जैसे स्वर्ण सीर आदि। कुछ वर्णन विषयक होते हैं जैसे भूषण-वस्त्रादि। कुछ वर्ण विषयक माने जा सकते हैं क्योंकि सीर्य की भी-वृद्धि में रंग-रसि का भी बहुत बड़ा हाथ होता है। इसके अतिरिक्त कुछ बाह्य उपकरण चमत्कार-वृद्धि के निमित्त भी अपना सिद्ध करते हैं। किन्तु ऐसे उपकरण दूर की दृष्टि अधिक उपकरणभारमक कम होते हैं।

### हिन्दी-महाकाव्यों का रूप-वर्णन

हिन्दी-महाकाव्यों की कला-भूमि के अंतर्गत नारी का भी रूप-वर्णन हुआ है,

जैसे मोटे रूप में हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम को व्यक्तिगत प्रधान एवं द्वितीय को सार्वभौमिक कहा जा सकता है। प्रथम के ध्वनिगत भागी की रूप ध्वनियाँ एतसे क व्यक्तिगत प्रधान करती हैं और द्वितीय के अंतर्गत विद्वान्त-निरूपण का प्रामाण्य है। व्यक्तिगत प्रधान रूप-वर्णन स्वाभाविक रूप में भी प्रस्तुत किया गया है और सार्वभौमिक रूप में भी। सार्वभौमिक रूप-वर्णन में जनसाधारिता का ही प्राधान्य है। जनसाधारिक रूप-वर्णन में अपना कथक उल्लेखों की भरमार है।

सर्व प्रथम हम नारी के व्यक्तिगत प्रधान रूप-वर्णन को लेते हैं। यहाँ यह स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुआ है, यहाँ नारी के सङ्घ व्यक्तिगत की सार्वभौमिकता होती है। उदाहरणार्थ—

मैं उल्लस परमावसि जाती । रवि रवि बिधि सब कला संवारी ॥  
कप केवा लेहि धंग मुवासा । जबर चाह सुपुत्रे कहूँ वासा ॥  
देवी जाग जलप निरी बेढो । सति माये होइ बूझ बँधी ॥<sup>१</sup>

अथवा

सोह नवल लघु सुन्दर तारी । जपत जगनि धनुसित रवि जाती ।  
सुवन सकल सुतेत सुहाय । प्रह्लाद-प्रह्लाद रवि सज्जित बनाय ॥  
रंग भूमि जग तिप पगु जाती । देखि कप मोहे नर-नारी ॥<sup>२</sup>

या

मुख के लज स्नान विधु, पोताम्बर परिगत रिधु,  
परिव्रता में पयो हुई, देवार्चन में लगी हुई  
मूर्तिमयी समता माया, कीर्तना कीमल काया ।<sup>३</sup>

जनसाधारिता के अंतर्गत नारी का व्यक्तिगत प्रधान स्वरूप अपनी सुपमा सीधमें एवं परिभा से उद्घाटित हो उठा है। नारी की इन कथ-ध्वनियों में कहीं उनका उत्प्रेक्षाओं की लड़ी-ली बंध नहीं है और यहाँ जनसाधारिता ने उनके व्यक्तिगत की जनसाधारिक एवं सद्गुण बना जाता है। जैसे—

कपोतान् प्रफुल्ल प्राप कलिदा राकेन्दु विभ्रामना ।  
तन्मयी नमस्तुतयी सुरतिका कीड़ा कला पुनरी ।  
छोमा बारिधि को समुद्रम गति ती लालच्य सीतलमयी ।  
भी राधा मुकुटापिणी मुख भूषी माधुर्य की मूर्ति थी ॥<sup>४</sup>

१ बायसी प्रभासनी पृ० ५० ।

२ मल्ल, बाकरीट पृ० २७४ ।

३ छायेत पृ० ६२ ।

४ प्रियप्रभास ४ । ४ ।

## अथवा

बिहारी घमकें क्यों तर्क जान ।

बहु दिवस मुकुट सा जगज्जलतम अति ऊँच सबुज था स्पष्ट भान ।

बो पद्य पलाश बयक से बन बेते धनुराय बिराज डाल ।

मुकुटरित भगुप से मुकुट सबुज बहु आनन बिसमें भरा जान ।

बसस्मस पर एकत्र नरे संसृति के सब विज्ञान जान ।

या एक हाथ में कर्म कलत्र बहुधा जीवन रसवार मिले

दूसरा बिहारों के मन को वा मधुर भगव प्रसन्न बधिये ।

बिहारी की त्रिपुल तरंगमयी आलोक बसन लिपटा अरान

चरणों में भी मति भरी ताल ।<sup>५</sup>

हिन्दी-महाकाव्यों की कसा सूमि में नारी का यह व्यक्तित्व प्रचान रूप-सौंदर्य अपने विविध स्वरूपों की शौकी प्रस्तुत करता है और इस विविधता के अंतर्गत भी उसकी रूप-भाधुरी प्रसंगानुकूल हिन्दी-महाकाव्यों की कसात्मकता का परिचय देती है । सर्व प्रथम स्वयंवर-भूमि में बहू-वेष में प्रविष्ट होती नारी के रूप-सौंदर्य की झलक देखिये—

अंग पंकज किमलक सुधासा नमय सपीर मनहुँ नि'स्वप्ता ।

देह कांति इन्बीवर क्यामा, ब्रह्मोन्मूल सुकेतु धमिरत्ना ।

नयन असीर, मधुर आलोकित नील सिन्धु अलक अति सु चित ।

अक्षर बिम्ब बिभूष द्युति भासा अंकु कपोल कंठ धुनि नासा ।

अगल सहज पद्म पद्म राजत, मंद मंद मणि सुवर वासत ।

कर धुग अंकुज मृदुल मृदुलाना अंकुली ललित कलित अयमासा ।

मनहुँ बिमोहन हित जग सारा, बहुदि जोहिनो बपु बिभु वारा ।

प्रविधति रंग पांचाल कुमारी लल लल ब्रुव अचल निहारी ।<sup>६</sup>

सास के चरण स्पर्श को नारी बधू और इससे उत्पन्न परिस्थिति के अंतर्गत नारी-सौंदर्य की व्यंजना देखिये—

केतु पती पद्म अम्बन नाभ बधु जब ही जब वा दिन आगत ।

रंचक सीत लो सारी पद, परिचारिका आसने हाथ बढ़ागत ।

भीतर छीब ली बाहर ली बहुत घोर कुहाई को धार ली दावत ।  
ता पर भग्न हुंसी की छटा, बसुन्धा री मनो जुधा बाग बहागत ॥<sup>७</sup>

कवि में मंचम-पट जोंग कर कछीटा मारे नारी की 'नई बज' की भी एक झलक सीमिए—

धंजल पट कवि में छोंत कछीटा मारे,  
जीता माता ली धाज नई बज पारे ।  
अंजुर क्षित कर के कलछ पयोधर पावन,  
जन पाज यवमय कुछल वदन भव भावन ।  
बहने की रिग्य पुकृत छह ! के ऐसे  
उत्पन्न हुआ हो देह संघ ही बंते ।<sup>८</sup>

निद्रा-नियन्त्र नारी का सीर्य्य भी अपनी एक निजी विशेषता रखता है । रूप सीर्य्य की दृष्टि से नारी की यह कवि भी अनुपम है । यथा—

है बस्य पात परते सरके किन्ती के, ऐसी अर्धल बहु पाव नूपुति में है,  
ज्योत्स्नामयी अनुपमा मुपमा किन्तीको, भागो उते सिपट के छवि लो रही है ।  
देखो सरोज कर एक करोज री है, है हुंहरा मुमुणी के मुख की सिपाय,  
मानो सनाल सरतीकहु धंजु री या राकोध री त द्वित करव की कली है ।<sup>९</sup>

अपनी अस्त-व्यस्तता में नारी का रूप-सीर्य्य कवि की रूप-कवि का विषय होता है और ऐसे धारों में उज्ज्वलता का सम्भार-पा लड़ा करते हुए यह सीर्य्य भी झलक उठता है—

सुटी कंठ माता सुरे हार दूरे । यति फूल जैसे सतें देव छूटे ।  
करी कंचुकी किमिनी बाव सुखी । पुरी काम की ली पानो बर सुखी ॥  
दिना कंचुकी वनछ बखोज शर्म । किन्ती लीकहु ओजर्न सोम धर्म ।  
किन्ती स्वर्ग के मुग्ध लावय दूरे । अलोकन के धूर्न सम्पूर्ण दूरे ।<sup>१०</sup>

रूप-व्यञ्जना की दृष्टि से नारी का रूप कवि काज भी अपना महत्व रखता है । विद्युत की समाप्ति एवम् यौवनालयन के समय तुरयधीला नारी के रूप-सीर्य्य का एक चित्र देखिये—

उम परिषों की रागी जो सुमरी धमार-कली ली ।  
का धंग मनोरम भागो लवि में देह कली ली ॥

७ रासल महाकाव्य ६ । २

८ ताकैत पु० २२० ।

९ निद्रार्च पु० ११२ । १७० ।

१० रासलनिद्रा पु० १२ । ३०, ३१ ।



त्रिगुता भी निशा सिरानी, जब आया यौवन रितकर ।  
 जबि विलसित तप सरवर में वो तरसित लक्ष मनोहर ॥  
 जब सरस सुवर्ण नहर में यौवन ह्रासा में छुप कर ।  
 पुतली सी नाच रही थी धाँकों में जाहू भरभर ॥<sup>११</sup>

तप निमग्नता मारी का रूप-सौन्दर्य अपनी जिस प्रभा को प्रकट करता है वह प्रभा अपने सांख्यिक सौन्दर्य के कारण अपनी उपमा आप होती है । जैसे—

निरकी तेज पुष्प प्रति मारी, तप निमग्न लखली मुकुमारी ।  
 मस्तक जटा कलाप भलाया रसोत्पल जनु प्रति अमिरामा ।  
 बंधु मेखला सुधम कदि, कस अरीर तप मार ।  
 मानु प्रभा आनुहि मनहुँ लपति बिलि सप्पार ॥  
 ललु अलि कला आनु लखीना अमिनिजा जनु पुन बिहीना ।  
 अजबा अहि बिबिक्त बस सोनित, बन देखी आनुहि प्यान स्थित ॥<sup>१२</sup>

गर्भविम्बा काम में भी मारी का रूप-सौन्दर्य अपनी बिलिखता रसता है । इस बिलिखता की वो ध्वजना हिन्दी-महाकाव्यों की कला भूमि में व्यक्त हुई है उसका एक उदाहरण नीचे—

केतकी पर्न सा पीसा पुह धाँकों में धातत भरा स्नेह  
 कुल कृपता नई लखीनी भी कपित लतिका सो नित्य देख ।  
 मातृत्व घोष से भुके हुए, बंध रहे पयोधर पीन छात्र  
 कोमल कामे अंगों की नव पहिका बलसी खरि छात्र ।  
 सोने की चिक्ता में मानों कालिन्दी बहती भर जसाध,  
 स्वर्ग्या में हुन्दीवर की या एक पंक्ति कर रही हास ॥<sup>१३</sup>

इसके अतिरिक्त, मारी के व्यक्तित्व प्रमाण रूप-वर्णन की ध्वजना करने में कवियों ने कहीं-कहीं मह-साध्य अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पनाओं की भी शरण ली है । कहीं अतिशयोक्ति के बाव भी संकोच नप रह जाता है और कहीं मारी-देह को समुद्र-मंथन द्वारा प्राप्त औरह कुर्मम रत्नों से भवार कर नभस्कारिक रूप-सौन्दर्य की ध्वजना कर ली जाती है । इनके उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं—

जो छवि पुखा पयोनिधि होई । परम रूप भय कल्पन सोई ।  
 सोमा रजु मंदक विपाक । सबहु पानि पञ्चज निज पाक ।

११ गुरजही पृ० २३, २४ ।

१२ कामायनी पृ० १४२ ।

१३ अमल पृ० ३२९, २३ ।

एहि बिधि उज्जे सखि बह सुन्दरता पुछ सुत ।  
तरपि सकोच सनेत कवि कहहि सीय सम सुत ॥<sup>१४</sup>

एवम्

बिहि कहति यव्यए, रतन बीरहु छडारे ।  
सोइ रतन सकोच, धनु धनु प्रति पारे ।  
कय रंस जुव सखि, बदन धनुष बिध सखिय ।  
परिमल सुरदास अप सम प्रीता सुन सखिय ।  
बदन बह बबल सुरध मय मुगति, सुम्भन सुरत ।  
बेगह सु बनसरि सोल मनि, मोह धनुष सजौ नर ॥<sup>१५</sup>

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की कला-भूमि में गीरी-सीर्य की व्यञ्जना की दृष्टि से गीरी के व्यक्तित्व प्रधान रूप-वर्णन में सीर्य विषयक सुर्ध्व एवम् कलात्मकता का पूर्ण परिचय दिया गया है। यह सुर्ध्व-सम्पन्नता एवम् कलात्मकता जहाँ कवि-श्रवण की नज़र के साथ समिपित हो गई है वहाँ गीरी की सीर्य-व्यञ्जना पूर्ण साक्षात्कार के साथ प्रकट होती है। उदाहरणार्थ—

मोट कड़ाह धुमर की बिजली जलरोपम पद की  
वरिष बनी वो बिनु मुछ की, सोमा भी सुयमा सुख की ।  
भाव सुरभि का छदन छाहा । समल कमल सा बदन छाहा ।  
छपर छबोले छदन छाहा । दुन्द कली से छदन छाहा ।  
समि सिजाती थी छलकें मयुष पालती थी पलकें ।  
छोर कपोलों की जलकें बहती थी छवि की छलकें ।  
मोम मोम गोरी बहि, हो बोंबों की हो राहें ।  
मान सहस्र पल में वे छबल बह कल में वे ।  
थी कमला थी कम्पाली, बाली में बीणा वाली ॥<sup>१६</sup>

गीरी-सीर्य की व्यञ्जना की दृष्टि से उसका रूप-लाभ्य भी बिते सामुद्रिक शास्त्र 'छाया' की धारा प्रदान करता है, इसके व्यक्तित्व की एक अनोखी कल्पक व्याख्या करता है—

छीर देखा बहु सुन्दर दुग्ध नयन का इन्द्रजाल अनिराम,  
दुग्ध बंधन में लता समान अरिक्ता से तिरता धनदाम ॥<sup>१७</sup>

१४. बालघ, बालकांड पृ० २०४ ।

१५. सारंग पृ० ६५, ६६ ।

१६. छातो, लघु ६६ । ११६ ।

१७. आभासनी पृ० ४६ ।

मारी के रूप-सीधर्य की ध्वजना की दृष्टि से शिख-मख वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा है। वास्तव में यह मारी-रूप का अवयवात्मक स्वरूप है क्योंकि मारी-सरीर के अधिकृत अवयवों का वर्णन इसके अंतर्गत पाया जाता है। शिख से बना कर मख तक की इस सीधर्य-ध्वजना के हेतु जो उपमाग काम में लाये जाते हैं वे प्रायः सङ्ग हो चुके हैं। इस उपमागों में नबीनता का समावेश नाम मात्र को हो पाया है। केवल ध्वजना चमत्कार या उपमान के उपयोग का कौशल ही लक्षित होता है। हिन्दी-महाकाव्यों की कला भूमि में मारी के इस अवयवात्मक स्वरूप की ध्वजना भी अत्यन्त कौशलपूर्वक व्यक्त हुई है। प्रायः प्रत्येक महाकाव्य में इसके विपुल उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। रावो एवम् पद्मावत में तो स्वतंत्र रूप से भी शिख-मख वर्णन के प्रति रूचि प्रदर्शित की गई है किन्तु गेब महाकाव्यों में यह वर्णन प्रसंगानुद्भूत पाया जाता है। बिस्तार मय एवम् प्रायः एक बात की एक ही जैसी पुनरुक्ति के कारण अवयवात्मक स्वरूप के अंतर्गत प्रत्येक महाकाव्य में उदाहरण प्रस्तुत न करते हुए, हम यहाँ संक्षेप में मारी की इस सीधर्य-ध्वजना का निरूपण करेंगे।

अव्ययग की सुविधा की दृष्टि से हम मारी के अवयवात्मक स्वरूप को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम सीध भाग है जिसके अंतर्गत मुख-मंडल के चित्रण की ध्वजना हुई है। द्वितीय मध्य भाग है जो कंठ से कटि तक माना जा सकता है। तृतीय अवयवभाग है जो निजम्ब से सपा कर पद-तल तक जाता है। अवयवात्मक स्वरूप-ध्वजना में स्वाभाविकता के बजाय अलंकारिकता कटू ही प्राप्ताव्य है। अतः संपूर्ण अवयवात्मक रूप-वर्णन अलंकारिक है।

सीध भाग—हस्ती-सरीर के बदन में सर्वाधिक ध्यान मुख-मंडल पर ही दिया गया है। साधारणतः केश ललाट, कपोल मुख नासिका नेत्र अचरोष्ठ, दाँत बाजी और कंठ—ये ही मुख-मंडल के वर्णनीय अवयव हैं। हिन्दी-महाकाव्यों की कला भूमि में इन अवयवों की जो ध्वजना हुई है वह संक्षेप में इस प्रकार है—

केश-वर्णन—

- [१] प्रथम सीध कस्तुरी केशा। बलि बासुकी, का श्रीर नरेता।  
भीर केश बहु जालती पानी। बिताहर सुरै कैहि धरबाणी।<sup>१७</sup>
- [२] सुम्हारा लल कर केश कलाप, ब्रजस पर पर सोखे सोप।  
धिरजे यल समीप धन दूर, लका कर दात बल मल मपूर ॥<sup>१८</sup>

- [१] बिरहों के पुष्पवली बाल धत धवलम्बित मुख के पास ।  
गोल धन धावक से सुकुमार, सुखा भरणे को विष्णु के पास ।<sup>१४</sup>

माघ-बर्णन—

- [१] लंछन रेखा कटोरी कसी । जगु जन बहू धामिनी परगती ।  
सुख बिरह जगु पपन बिसेली । जयुना पाहू पुरसती देखी ।<sup>१५</sup>
- [२] द्वि फल वाली चिकुरानि जघ्मपा, यद्योपरा की धति मंजु नाप नी ।  
प्रवीण हो कज्जल हृद पे यका, प्रवीण की सुत भिक्षा मनोरमा ।  
कला विद्या में धनका विजेष की लपेय कावचिति धन्य जन्मला,  
कि हेम रेखा कल पे कसी हुई, नि धीपनि हो जलती जगन्त में ।<sup>१६</sup>

सनाट-बर्णन—

- [१] बहु निश्चय मुकुट सा उज्ज्वलतम धमि बंड सवृज या स्पष्ट माल ।<sup>१७</sup>
- [२] कहीं लिलार बुझ के ज्योति  
तेहि लिलाट पर लिलक बईठा । बुझि बाट जगहु प्रभु शीठा ।  
कमल पाद जगु बैठा राजा <sup>१८</sup>

फोल-बर्णन—

- [१] गालों पर धवा धा धा लज्जर से छिप छिप जाती ।<sup>१९</sup>
- [२] पुनि बरनी का गुरंग कपाता । एक नारंग हुई किपु धमोता ।<sup>२०</sup>

मुक्त-बर्णन—

- [१] आहु, बहु मुक्त । पश्चिम के गहोन बीच जग धिरो हों जनश्रवण ।  
अवल एवि जगज्जल जगकी जेद दिखाई देता ही एवि धाम ।<sup>२१</sup>
- [२] कंकरी की घालन बतुर जगुराजन ने लाग बं बहान यदि बसितों बनामी हूँ ।  
पूनीकी जिताकी पूरी मंजुल नयजू वाली जाकी लपु बाकर बननहीवायेहूँ ।<sup>२२</sup>

१६ कामायनी पृ० ४७ ।

२४ पुरबर्ण पृ० ४६ ।

२० जायसी रघुबावती पृ० ४१ ।

२६ जायसी रघुबावती पृ० ४४ ।

२१ सिद्धार्थ पृ० ३६ ।

२६ कामायनी पृ० ४६ ।

२२ कामायनी पृ० १६३ ।

२७ रामाय भा० १ । ३६ ।

२३ जायसी रघुबावती पृ० ४२ ।

## नासिका-वर्णन—

- [१] नासिक कीन करण के बारा ।<sup>१५</sup>  
 [२] बेजि धमर रस धमरन मण्ड नासिका कीर ।<sup>१६</sup>  
 [३] नाक का मोती धमर की कान्ति से,  
 बीज बाहुिम का समझ कर भ्रान्ति से ।  
 बेज कर सहसा हुधा मुक मीन है,  
 सोचता है, धन्य मुक यह कोन है ।<sup>१७</sup>

## नेत्र-वर्णन—

- [१] सीता नयन बकीर सजि रवि बंसी रघुनाथ ।<sup>१८</sup>  
 [२] जह बिमोकि भुष सावरु नयनी । अनु तह बरिष्ठ कमल सित स्नेही ।<sup>१९</sup>  
 [३] मर मस्त नृगों के साक्षी, रमणी यौवन का हाता ।<sup>२०</sup>  
 [४] ऊर्मिला ने कीर सम्मुख बहि की  
 या जहाँ वो जजनों की सुधि की ।<sup>२१</sup>  
 [५] हो पय पलाय जब से दुप बैठे सगुराय विराय बाल ।<sup>२२</sup>  
 [६] कुटिल जू धराधन सी लठी बन गये भुष लोचन व्याप से ।<sup>२३</sup>

## धमर-वर्णन—

- [१] धमर निम्न बिहूम धृति माता ।<sup>२४</sup>  
 [२] पय रागों से धमर पागों बने ।<sup>२५</sup>  
 [३] फूल कुम्हारि जानी राता । फूल धरहि ज्यों ज्यों कहूँ बस्ता ।<sup>२६</sup>

## बट-वर्णन—

- [१] जस बाहों निजि बाहिनी बीसी । जमकि उठे तस बनी बटीसी ।<sup>२७</sup>

२६ आपसी पृ० २०८ ।

२८. बही पृ० ४३ ।

३० साकेत पृ० २८ ।

३१ रामचन्द्रिका पृ० ६ । ४३ ।

३२ जानस बालकांड पृ० २१८ ।

३३ सूरजहाँ पृ० २४ ।

३४ साकेत पृ० २८ ।

३५ कानाधनी पृ० १६५ ।

३६ सिद्धार्थ पृ० ७ ।

३७ कृष्णायन पृ० २८५ ।

३८ साकेत पृ० २७ ।

३९ आपसी प्रपादनी पृ० ४३ ।

४० बही पृ० ४४ ।

- [२] मोतियों से बात निर्मित हैं घने । ४१  
[३] कुब कली से रत्न ग्रहा । ४२

बाबी-बर्तन—

- [१] कहहि परस्पर कोटिल बयनी । ४३  
[२] सुना यह मनु ने मनु मुबार, मनुकरी का सा अब सामग्य । ४४  
[३] बाली में बीछा पाखी । ४५

पलक, मोह एवम् तिल-बर्तन—

- [१] मनुष्य बाली भी पलकें । ४६  
[२] कटास ये पलकें लज्जा पा चुके तबानि भू बाप बड़ा हुआ लता । ४७  
[३] धर्मनि बान बानों तिल सुन्ना  
तो तिल हैल कपोल पर गगन रहा पुन पाकि । ४८

घीवा-बर्तन—

बरनीं पीठ कंबु के रीसी । कचन तार लानि जनु सीसी ।  
पुनि तेहि ठीक परो सिनि रेखा । घूट जो पीक नीक सब देखा । ४९

मुस्कान-बर्तन—

घौर उस मुख पर वह मुखबान । रत्न किलतय पर ते बिभाम,  
अकल की एक किरण अमल, अलक अलताई हो अमिराम ।  
उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मारी का मुख-मंडल रूप-सौंदर्य  
की जो व्यंजना प्रस्तुत करता है वह मुख्य सम्पन्न होने के साथ ही सरस भी है ।  
अनिक उपकरणों के माध्यम से आलंकारिक पुट डाल इन अवयवों का जो रूप-  
लक्षण हुआ है, वह प्रायः कट होने के बाद भी सरस है । यही वह भी उत्प्रेक्षणीय है  
कि बाबी एवम् मुस्कान का वर्णन भी मुख-मंडल से सम्बन्धित होने के कारण कवियों

- ४१ साकेत पृ० २७ ।  
४२ वही पृ० २९ ।  
४३ आनस, बालकंड पृ० ११९ ।  
४४ कामायनी पृ० ४३ ।  
४५ साकेत पृ० २९ ।

- ४६ वही पृ० २९ ।  
४७ सिद्धार्थ पृ० ५५ ।  
४८ जायसी प्रजापती पृ० ४३ ।  
४९ जायसी प्रजापती पृ० ४३ ।  
५० कामायनी पृ० ४७ ।

## नासिका-वर्णन—

- [१] नासिक नील धारण के धारा ।<sup>१८</sup>  
 [२] देखि अमर रस धारण भएउ नासिका कीर ।<sup>१९</sup>  
 [३] नाक का धोती धारण की कान्ति से  
 नील शक्ति का समझ कर आन्ति से ।  
 रंज कर सहसा हुआ कुछ मीन है,  
 सोधता है अथ्य कुछ यह कोन है ।<sup>२०</sup>

## नेत्र-वर्णन—

- [१] सीता नयन बजोर लखि, रवि बंसी रतुबाध ।<sup>२१</sup>  
 [२] यह बिजोकि मृग सावक नयनी । जनु तहँ बरिस कमल तित स्नेही ।<sup>२२</sup>  
 [३] मर मस्त बूबों के छाठी, रमछी यौवन का हला ।<sup>२३</sup>  
 [४] ऊमिला ने कीर सम्पुञ्ज वृद्धि की  
 या बहो बो जवनों की सृष्टि की ।<sup>२४</sup>  
 [५] बो पय पलायन बरक से दुग बैठे अनुपम विराय डाल ।<sup>२५</sup>  
 [६] कुजिल भू धारावन छो लती बन पये मृग शोचन व्यास से ।<sup>२६</sup>

## अक्षर-वर्णन—

- [१] अक्षर बिम्ब बिभूष लुति भासा ।<sup>२७</sup>  
 [२] पय रागों से अक्षर भागों बने ।<sup>२८</sup>  
 [३] पूज कुपहरि जालों राता । कूल भरहि ज्यों ज्यों कह बाता ।<sup>२९</sup>

## दंत-वर्णन—

- [१] जस भावों निशि बामिनी बीसी । जमकि जठे लस बरी बसोती ।<sup>३०</sup>

२८ आयसी प्रं० पृ० २०८ ।

२९ वही पृ० ४३ ।

३० साकेत पृ० २९ ।

३१ रामचरितका पृ० ९ । ४३ ।

३२ भावस बालकांड पृ० २१८ ।

३३ मूरजहाँ पृ० २४ ।

३४ साकेत पृ० २८ ।

३५ कामायनी पृ० १६८ ।

३६ तिहार पृ० ७ ।

३७ कल्याण पृ० २९८ ।

३८ साकेत पृ० २७ ।

३९ आयसी प्रंयावनी पृ० ४३ ।

४० वही पृ० ४४ ।

[२] मोतियों से बात निमित्त हैं यों ।<sup>४१</sup>

[३] कुछ कत्ती से रखन रह्य ।<sup>४२</sup>

बाबी-बर्तन—

[१] कह्यि परस्पर कोकिम बपनी ।<sup>४३</sup>

[२] सुना यह मनु ने यहु बुकार, मनुकरी का ता बह सावध ।<sup>४४</sup>

[३] बालो में बीखा पाली ।<sup>४५</sup>

पतक, बाहुं एवम् तिस-बर्तन—

[१] यमुप बालती भी पतकें ।<sup>४६</sup>

[२] कदाक ये वसवि लख या कुके, तवावि जू बाध बढ़ा हुप्र लता ।<sup>४७</sup>

[३] अविनि बाल बालों तिल सुन्दा  
तो तिल डेकि कपोल पर मयन रह्य भुब बाहि ।<sup>४८</sup>

पीवा-बर्तन—

बरलौ नीच बंधु के रीसो । कचन छार जागि अनु सीसी ॥

मुनि लेहि डीम बरी तिमि देखा । बूढ को नीक नीक सब देखा ॥<sup>४९</sup>

मुस्कान-बर्तन—

और उत मुख पर वह मुसकान । एक छितलव पर ले विभाम  
अबल की एक किरल अम्ताल, अधिक चलताई हो अचिराम ।<sup>५०</sup>

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी का मुख-मंडल रूप-वैरव्य की ओर ध्यान प्रस्तुत करता है, वह पुरुष सम्पन्न होने के लिये ही धरस भी है । नैसर्गिक उपकरणों के माध्यम से आलंकारिक पुनः छाप इन अवयवों का जो रूप-वर्णन हुआ है, वह प्रायः कठ होने के बाद भी लगभग है । यही वह भी उल्लेखनीय है कि बाबी एवम् मुस्कान का वर्णन भी मुख-मंडल से सम्बन्धित होने के कारण करिबों

४१ साकेत पृ० २७ ।

४२ वही पृ० २९ ।

४३ भागत, बालकोट पृ० ३३६ ।

४४ कामायनी पृ० ४३ ।

४५ साकेत पृ० २३ ।

४६ वही पृ० २२ ।

४७. सिद्धार्थ पृ० ८८ ।

४८ कामायनी पृ० ४२ ।

४९ कामायनी पृ० ४३ ।

५० कामायनी पृ० ४४ ।



मे उसी रवि के साथ किया है यद्यपि बाणी और मुस्कान अवयव के चतुर्गत नहीं जाते हैं। यह भी सुरभि-सम्पन्नता का एक प्रमाण है।

मध्य माग के चतुर्गत बाहु हाव, प्रंगुलियाँ बलस्थल नाभि, त्रिवली रोमावली पृष्ठ एवम् कटि का वर्णन विशेष रूप से किया जाता है। बलस्थल-वर्णन में कवियों ने विशेष रवि प्रदर्शित की है। मध्य माग के चतुर्गत नारी के रूप-सीर्य की ओर ध्यान आकर्षित है वह इस प्रकार है—

बाहु-वर्णन—

- [१] कनक बज्र हूँ भुजा कलाई । जानी डेरी लुहरे भाई ॥<sup>११</sup>  
 [२] मृत्तल सा कोमल बाहु देखके विभिन्न जानी अपनी कठोरता  
 सुबल कङ्कल भी इतीमिथे, बलस्थल होता बहु कम्पमान वा ॥<sup>१२</sup>

हाव-वर्णन—

- [१] छोड़त अनु रूप बलज समाला । लसिहि समीप देत जय माना ॥<sup>१३</sup>  
 [२] लता पल्लव पुष्पों के साथ, निरख कर इष्ट बने निज हाव ॥<sup>१४</sup>

हथेली प्रंगुली-वर्णन—

- [१] जानी रक्त हथोरी लुहरी । रवि परमल तल ने लुहरी ।  
 दिया काङ्कि अनु लीलेति हावा । कहिर भरी प्रंगुली लैहि सावा ॥<sup>१५</sup>  
 [२] मजरी छी प्रंगुलियों में यह कला ॥<sup>१६</sup>

बलस्थल-वर्णन—

- [१] दिया पार, कुच कजल साक । कनक कलोर लठे अनुवाक ॥<sup>१७</sup>  
 [२] बिना ककुकी स्वच्छ बलोज राज ।  
 किन्ही सांच हूँ धीकरी सोम साज ।  
 किन्ही स्वर्ण के कुम लालन्य पुरे ।  
 बलीकर्म के पूर्ण सम्पूर्ण पुरे ॥<sup>१८</sup>

५१ आससी प्रयागली पृ० ४६ ।

५२ सिद्धार्थ पृ० ८८ ।

५३ मानस, बालकण्ठ पृ० २६० ।

५४ लालित्य संत १ । ३१ ।

५५ आससी प्रयागली पृ० ४६ ।

५६ साकेत पृ० ६७ ।

५७ आससी प्रयागली पृ० ४६ ।

५८ रामचन्द्रिका १६ । ३१

[१] हृदय की गौरव पूर्ण प्रमथ, दैत उसलुन मृग हो बंध ।<sup>११</sup>

[४] याचे जुने शुभ्रग मंजु उरोज ऐसे, जैसे धनुष कवि की कविता लसि हो ।<sup>१०</sup>

नामि त्रिबली एवम् रोमावली-वर्णन—

[१] नामि कृत्रु लो जलप' समीक । सज्जुव मंवर जस मंवी रंभीक ।<sup>११</sup>

[२] कुशोवरि । इस त्रिबली का जाल, कहां लहरायेया हिम ताल ।<sup>१२</sup>

[३] त्रिबली की त्रिमुख तरंगमयी ।<sup>१३</sup>

[४] रोम राजि मृगार की ललित जता सी राज ।<sup>१४</sup>

[५] उर में लगलुं मरन की रैक । ताकी दीपति बिपति बिशेष ।<sup>१५</sup>

पीठ एवम् कटि-वर्णन—

[१] बेरिति पीठि लोमिहू बहु पावे । अनु-किरि बली धुपझरा कवि ।  
मलयकिरि के पीठ संवारी । बनि नाथिन जड़ी जो कारी ।<sup>१६</sup>

[२] स्वर लीज, लीज की गाती, की कमर कमान बनती ।<sup>१७</sup>

[३] लंक की छामता की छवि कै, जर लगु गुनाल के धोरत ही रहे ।<sup>१८</sup>

[४] जर लकिम लंकय त्रिज किती जर मुक्तिम माहि ललाई तिती ।<sup>१९</sup>

[५] कटी चलम्पटा जहो, मनो कि रिद्धि रंकी ।<sup>२०</sup>

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की कला-भूमि में नारी के मध्य भाग का अवयवार्थक स्वरूप भी पूर्ण कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया है । यद्यपि मध्य भाग की रूप-व्यंजना में प्रयुक्त अधिकोक्त उपमान भी कम ही हैं और इसका स्वरूप भी परम्परागत ही है परन्तु उसमें कला-वस्तुत्व का अभाव नहीं है ।

अधोभाग के संतर्गत नितम्ब जंवा पह-रत आदि का वर्णन विस्तृत रूप से हुआ है । साथ ही यति की व्यंजना भी रूप-सौन्दर्य की पोषक बनकर आई हैं । नितम्ब

१६ साकेत संत १ । १० ।

१० सिद्धार्थ पु० १६८ ।

११ जायसी पद्यावली पु० ४७ ।

१२ साकेत संत १ । १० ।

१३ कानावली पु० १६८ ।

१४ राजबलिका ३१ । ३० ।

१५ वही पु० ३१ । ३१ ।

१६ जायसी पद्यावली पु० ४७ ।

१७ गुरजही पु० २४ ।

१८ पद्यल महाकाव्य १ । ३६ ।

१९ रातो समय २१ । १२३ ।

२० वही, समय ३६ । १७३ ।

से लगा कर मल एवम् पद-तल गया गारी-शरीर का यह भाग जहाँ पुनर्वर्ती कवियों की रूप-व्यवस्था का अधिकार विषय रहा है वहीं उत्तरवर्ती कवियों द्वारा नितम्ब-नकारि की स्वरूप-व्यवस्था नाम भाग को की गई है। यति के प्रति जो सम्यक् है, वह सर्वत्र एक बीजा भिन्नता है। कुछ उदाहरण नीचे—

नितम्ब एवम् बचा-वर्णन—

- [१] बरणीं नितम्ब सक र्क] सोभा । जो पद पवन बैलि मन सोभा ॥  
कुरे जय सोभा अति पाए । केरा लँम कौरि अनु लाए ॥<sup>७१</sup>
- [२] नितम्ब बिज कूल से कटि प्रवेस लीन है ।  
बिभ्रुति भुवि सी सबै तु लोक लाज लीन है ।  
अमोल ऊँदरे उदार जय सुगम जानिये ।  
मनोज के प्रमोद लो बिलोद जय मानिये ॥<sup>७२</sup>
- [३] नितम्ब घट तु विष प्रवाल रंज बुभ्रिय ॥<sup>७३</sup>

पगल-वर्णन—

- [१] लाली ली करती सरोज पन की भू पृष्ठ को भूषिता ॥<sup>७४</sup>
- [२] अरुण सहस्र पत्र पद राक्त मण्ड मन्द मणि मुरुर बन्धत ॥<sup>७५</sup>

पति-वर्णन—

- [१] तुम्हारे चरणों की से बाल, जलें अब उस पर बाल मराल ॥<sup>७६</sup>
- [२] पद पधों में मञ्जीर मराल मचलते ॥<sup>७७</sup>

गारी के रूप-सौन्दर्य की व्यवस्था की दृष्टि से उसके अवयवात्मक स्वरूप के संतर्पण उसका कब भी अपना स्थान रखता है। यथा—

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार, एक सम्बी काया उन्मुक्त,  
मनु पवन झीकित ज्यों सिंधु साम सुशोभित हो सौरभ संपुक्त ॥<sup>७८</sup>

इस अवयवात्मक स्वरूप के अतिरिक्त गारी के अणुसे अणु का धौंर्य समस्त शरीर की सुधुमा एवम् इस सौन्दर्यमयी के चलते ही नैसर्गिक उपकरणों में उठ घड़ी

७१. आपसी प्रवाहनी पृ० ४८ ।

७२. रामचन्द्रिका ३१ । ३३ ।

७३. रासी, समय ३६ । १७७ ।

७४. शिवप्रसाद ४ । ७ ।

७५. हृदयामन पृ० २३७ ।

७६. साकेत संत १ । २६ ।

७७. साकेत पृ० २२१ ।

७८. कामायनी पृ० ४६ ।

होने वाली हलचल भी मारी के रूप-सीदर्य की व्यंजना की दृष्टि से रहस्य है। विस्तार रूप के कारण यहाँ कुछ उदाहरण ही पर्याप्त होंगे—

- [१] नील परिधान बीच सुकुमार, कुल रहा सुकुल पल्लवुला पल।  
जिला हो ज्यों विजली का झूल, मेघ जन बीच गुलाबी रंग ॥<sup>१४</sup>
- [२] सुमुख कलन अंचल में मग्न, बचन प्रेरित तोरन साकार।  
रचित परचाछ परम शरीर, जड़ा हो से मधु का साधार ॥<sup>१५</sup>
- [३] लौक्यो के जगत गुलाब गुलशान की  
अवतलन अकुकनि की सुकसा सजायी है।  
त्यों ही कोकनर हरीबर, भरमिन्द कुल,  
अपठ, गुलाब की प्रभा हूँ सकुचली है ॥  
उड़न बराल लागे, पत्र अकुलान लागे  
केहरि गुच्छनि में सुफाईवं परो टाली है।  
शङ्खिनी की श्रीधर करिधनि के कुम्भ पट  
बाकी छवि साधुहै भरत जाली पायो है ॥<sup>१६</sup>
- [४] दरम्य जल की कुहाई की बचल पार,  
पग भरते ही भरते हैं लकुचात जात।  
निबरन होत जात विविध बघारि लागे  
जैसे हिम पात की कुपल जल कात जात ॥  
कच, कुच, प्रपुल नितम्बनि के मारनि लों  
हैंक ही बर त जग लंक बल कात जात।  
उग्रप कल जालनि लपोम लोत सारी गई,  
विपिन शरीर ज्यों गलत भरसात जात ॥<sup>१७</sup>

उक्त उदाहरणों को देखते हुए यह निरवधारक रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की कला-श्रुति के अन्तर्गत मारी-रूप की सीदर्य-व्यंजना अत्यन्त ही प्राणवान रूप से उपस्थित की गई है। यह रूप-सीदर्य अलग एक ही वचनाभिराम ही नहीं अपितु कलात्मक भी है।

**रूप-वर्णन के उपकरण : प्राचीन एवम् नवीन**

हिन्दी-महाकाव्यों की कला-श्रुति में रूप-वर्णन के हेतु त्रिंश उपकरणों का प्रयोग

हुआ है जिनमें से अधिकांश प्राचीन हैं एवम् कवि-परम्परा के बड़े उपमान हो चुके हैं। नवीन उपमानों का समावेश बहुत कम हो पाया है। विदेशी प्रभाव के कारण कुछ नवीन उपकरण अवश्य जुटा लिए गए हैं जबकि कुछ उपकरण कवि-परम्परा द्वारा भी अपने नवीन स्वरूप में उपस्थित हो गए हैं। नारी रूप के वर्णन की दृष्टि से, रूप-वर्णन के प्राचीन एवम् नवीन उपकरण संक्षेप में इस प्रकार हैं—

**केश—**स्त्री-सामुद्रिक के अनुसार भ्रमर के समान काने, पतले बिकने, कुचित एवम् कमकीले बाल उत्तम माने गए हैं।<sup>१</sup> केशों की शीर्षता कुटिमता, मुकुता निविडता और नीसिमा आदि वर्णनीय समझी जाती है।<sup>२</sup> अतः उक्त महाकाव्यानुसार केवों के लिए जिन प्राचीन उपकरणों का प्रयोग उपमानों के रूप में आया है वे नाग, नागिन कस्तूरी मत्तमयूर, कालिन्धी भ्रमर, राहु वग आदि हैं। नवीनता की दृष्टि से जायसी द्वारा 'प्रेम पंजीर' उपमान का प्रयोग हुआ है। सुकुमारता की दृष्टि से प्रसादजी द्वारा प्रयुक्त 'वनशावक' उपमान भी नवीनता लिए हुए है। इसी प्रकार 'चर्क-बाल' भी नवीन उपमान है। मांग के लिए प्रयुक्त प्राचीन उपमानों में कंचन-रेखा शमिनी, सरस्वती गंगा सूर्य-किरण बक-पंक्ति, ओपवी शीपखिन्ना आदि का प्रयोग हुआ है। जायसी द्वारा और बहूटी आरकत अदि की ध्वजना नवीन एवम् मौलिक है।

**ललाट—**सामुद्रिक महाकाव्यानुसार निर्मोघ रेखा रहित अर्ध चंद्राकार स्पष्ट एवम् स्वस्थित समलंकृत ललाट स्त्रियों के लिये धूम माना गया है।<sup>३</sup> अतः द्वितीया का चंद्र पारस-ज्योति कलक पाट एवम् तमि-संड जैसे बड़े उपमानों द्वारा ही समान की मौर्य-व्यंजना हुई है। नवीन उपमान का अभाव है।

**कपोल—**कान्तिमुक्त, समुन्नत एवम् नरे हुए कपोल स्त्री-सामुद्रिक की दृष्टि से सर्वोत्तम माने गए हैं।<sup>४</sup> सांड के सड़क कमल, मारण जवा जैसे प्राचीन उपमानों द्वारा ही कपोलों का वर्णन हुआ है। कोई नवीन मौलिक उपमान उपलब्ध नहीं होता।

**मुख—**कतुंल, अमल, स्निग्ध चंद्रवत् नयन मनोहर, सीम्य एवम् सुबाणित मुख सामुद्रिक महाकाव्यानुसार स्त्रियों के लिए धूम माना गया है।<sup>५</sup> मुख-सीर्य के हेतु चंद्रमा, कमल अक्षर रवि-चंद्रम, पद्मनाभ आदि प्राचीन उपमान ही प्रयुक्त हुए हैं। नवीन उपमान नहीं हैं।

**नासिका—**न अधिक शीर्ष और न अधिक निरसीर्ष नासिकावाली स्त्री उत्तम

१ सामुद्रिक तिलक ४। १८३, ८६। ४ बही ४। १६७।

२ हिन्दी साहित्य की धूमिका पृ० २६३। ३ बही ४। १६८।

५ सामुद्रिक तिलक पृ० ४। १७८, ८०।

मानी है।<sup>१</sup> नासिका की सौरभ-ध्वजना में अग्नि अग्नि-बाण युक्त धेतु-बंध निम्न युक्त आदि प्राचीन उपमाओं का ही प्रयोग हुआ है। नवीन उपमाओं का अभाव है।

नेत्रः—कुम्भ चक्षुः शत कोपोंवाले बाले ठाँवाने प्रच्छन्न कानों की राह पकड़ने वाले नील कमल से निर्मल नेत्र उत्तम माने गए हैं और भ्रम-नेत्रा शक्ति-नेत्रा, बराह-नेत्रा मयूर-नेत्रा पृथुलेखाङ्गकुच-नेत्रा एवम् निर्मल नेत्रा नारी राजा मानी जाती है।<sup>२</sup> नेत्रों के क्षीय-निरूपण की दृष्टि से प्राचीन उपमाओं के वर्णन कम अमर अक्षय सुरेण कुरेण तरंग करे मादिक्य मीन व्यास आदि का प्रयोग हुआ है। नवीन उपमाओं के अत्यंत मीन का व्यास कर कर देने वाले महामत हथों के लिए 'चक्र' की द्वारा 'साक्षी' का प्रयोग हुआ है और इन्द्राजी ने अनुराग-विगत क्षामने हथों के लिए 'पद्म-नमसः चक्र' का प्रयोग किया है।

अक्षरः—मध्य भाग से ऐसा-वर्णित कृष्ण परिपक्व विम्बायन के समान स्निग्ध मनोहर अक्षर सामुद्रिक मत्तबानुसार स्थियों के लिए युक्त माने गए हैं।<sup>३</sup> प्राचीन उपमाओं के अत्यंत अमरों की सौरभ-ध्वजना के लिए विम्बायन विग्रह, मादिक्य-पद्म-याम, कुपहृष्टा के फूल विस्तृत आदि का प्रयोग हुआ है। जायसी द्वारा अमरों के लिए 'अक्षर-युक्त साक्षी' का प्रयोग नवीन होकर भी अमरगीन एवम् कुरविपूनी है।

दांतः—स्निग्ध, एक दूसरे से मिले हुए, कुदवती के समान स्नेह एवम् कुच जैसे दांत उत्तम माने जाते हैं।<sup>४</sup> इन दृष्टि से निम्न प्राचीन उपमाओं का प्रयोग हुआ है, वे कुदवती दामिनी मीनी होंग दादिय व्यास मकोप आदि हैं। नवीन उपमाओं का अभाव है।

पलक भीहू एवम् तिलः—बाजी कमकीसी, सुरह एवम् सूरज पलकें उत्तम मानी जाती हैं। अनुप के समान अनुप भुमायन एवम् काजी भीहू उत्तम होती हैं।<sup>५</sup> पलकों के लिए अनुप भ्रम-रेखा आदि भीहू के लिए अनुप अमरगीनी पलक तरंग आदि एवम् तिल के लिए अमर अग्निबाण कुदुबी का पासा मुह आदि प्राचीन उपमाओं का प्रयोग हुआ है। नवीन मौलिक उपमाओं का अभाव है। वेकन तिल के लिए जायसी द्वारा प्रयुक्त 'अक्षर' उपमाय इन दिशा में नवीन प्रयोग है।

श्रीकाः—मग्न मीनम एवम् नीली पद्म स्थियों के सौभाग्य की सूचक मानी

१. सामुद्रिक शास्त्र, श्री लक्ष्मणायिफर

स्तोक १४।

२. सामुद्रिकविग्रह पृ० ४। १९३ से १९२। २०

३. पृ० ४। १४२।

४. पृ० ४। १४५, १४६।

५. पृ० ४। १४२, १४४।

गई है और गले में बिबसी का पड़ना बहुत उत्तम माना जाता है।<sup>११</sup> घीमा के लिए कम्बु, सुराही, मगूर, कंचन तार समुक्त धीमी आदि का प्रयोग हुआ है। सभी उपमान प्राचीन हैं, नवीन उपमान नहीं।

बाणी—सामुद्रिक सभारों के अनुसार हंस की भाँवर कोरिम तथा चक्रवार के से स्वर वाली स्त्री उत्तम समझी जाती है।<sup>१२</sup> बाणी की तीव्र-व्यंजन की दृष्टि से कोरिम सारंग मङ्करी बीजा आदि प्राचीन उपमानों का ही प्रयोग हुआ है। नवीन उपमानों का अभाव है।

मुस्कान प्रपञ्च हास्य—मुस्कराते अथवा हंसते समय जब स्त्री का मँडस्वस सहज रूप से झिलता है बँत-पँछियाँ हड्डियोंपर नहीं होतीं और रक्त रश्मि व्यक्त होती है वह धूम सभरा समझा जाता है।<sup>१३</sup> मुस्कान के लिए अरुण की अम्भान किरण, अमृत आदि प्राचीन उपमानों का ही प्रयोग हुआ है। नवीन उपमानों के अभाव नहीं होते।

बाहु हाथ हथेली एवम् धनुनियाँ—छिरीय पुष्प के समान कोमल एवम् रोम रहित मांसम बाहुए, हाथों की सूँड़ के समान लचकदार बीज हाथ कमल के समान मनोहर एवम् लव पल्लव के समान चमकदार तथा आरक्त हथेली और लंबी मृदु तथा वाली लम्बा बलुत्ताकार एवम् मोल स्निग्ध धनुनियाँ, स्त्री-सामुद्रिक की दृष्टि से कुम एवम् सौम्या-सूचक समझी जाती है।<sup>१४</sup> बाहुओं के लिए कनक-बँव, करली गान, पद्म-नाल, चंदन-जंम आदि, हाथों के लिए लतास कमल, मल-पल्लव पुष्प आदि। हथेलियों के लिए कमल हृदय-रश्मि-प्रपात एवम् धनुनियों के लिए मंजरी जैसे प्राचीन उपमानों का ही प्रयोग हुआ है। नवीन उपमान हड्डियोंपर नहीं होते।

उरोज—स्त्री-सामुद्रिक के अनुसार मोल मराबदार, रङ्ग पुष्ट कठिन एवम् कंचन कमलवत् कुछ उत्तम माने जाते हैं।<sup>१५</sup> उरोजों के लिए कंचन-मङ्ग कनक-कटोरे, कंचन-जेल मारंगी बँबीर, थीफल तुरंग मद्ग्न स्वर्ण-कुम उरुप-शृंग, सूखी, शिव उरोज बलीकर्ण पूर्ण आदि उपमानों का प्रयोग हुआ है। प्रायः सभी उपमान प्राचीन हैं। नवीन उपमानों का अभाव है।

नाभि चिबली एवम् रोमावलि—नबीर, मोल वदिभावर्त विस्तीर्ण एवम्

११. सामुद्रिक सिक्क ४। १२८, १३२। १२ सामुद्रिक सिक्क ४। १६०।

१२ सामुद्रिक सिक्क, श्री लालसाधिका १४ बही ४। १०५, १०८ एवम् १२१।

हमोफ ६५।

१५ बही ४। ८८, ८९।

कमल की छापी कसी के समान पाणि स्थियों के सौभाग्य की सूचक होती है।<sup>१६</sup> पेट पर पड़नेवाली छीन बलिबां सुभग एवम् पतनी मृदुल विभिर रेखा के समान मनोहर और मुलायम दोनों से कभी रोमाञ्चसी सौभाग्य की कृति करने वाली मानी गई है।<sup>१७</sup> नाभ के लिए सागर की बंधन कुरंगिनी का प्रोच कर्णसिं सुर का पड़ा हुआ बिछु भ्रिचनी के लिए लिए हिम छाल विभुज तरंग एवम् रोमाञ्चसी के लिए सदा मदम-रेख आदि प्राचीन उपमान ही प्रयुक्त हुए हैं। नवीन उपमान उपलब्ध नहीं होते।

पीठ एवम् कटि—निसर्ग मासक एवं सीधी पीठ स्थियों के लिए सुख सौभाग्यप्रद मानी गई है।<sup>१८</sup> इसी प्रकार चौबीस घंगुली की परिधि वाली लक्ष्मणार तथा मज्जुत उत्तम मिश्रम्भयुक्त एवं सम चौरस दिखनेवाली कमर उत्तम मानी जाती है।<sup>१९</sup> पीठ के लिए मज्जयधिर एवं कटि के लिए सिंह मृणाल-चंद्र, कमान रक्त आदि प्राचीन उपमान ही व्यवहृत हुए हैं। नवीन उपमानों का अभाव है।

निर्जंघ एवम् बांधा—सामुद्रिक लक्षणानुसार स्थियों के गनुप्रस, मांसल पूरु एवं पीन निजब उत्तम माने गए हैं।<sup>२०</sup> छात्र ही रोमरहित कदवी स्तम्भ जैसे एवम् हाथी की सूँठ के समान उर उत्तम स्थियों के पाए जाते हैं।<sup>२१</sup> निजब के लिए पून एवं कर्ण दुम्मी तथा उर के लिए कदवी-जंघ मदन के विनोद रत्न कमल आदि पुराने उपमानों का ही प्रयोग हुआ है। नवीन उपमान नहीं पाए जाते।

पद-तल—स्थियों के उल्ल अल्ल सम मांसल मृदुल एवं स्निग्ध पद-तल उत्तम माने गए हैं।<sup>२२</sup> अतः पद-तल के लिए पद्म अल्ल-पद्म आदि प्राचीन उपमान ही प्रयुक्त हुए हैं। नवीन उपमानों का अभाव है।

गति—सामुद्रिक लक्षणानुसार जिन स्थियों की गति मरोगमल हाथी हंस माय रूपम मृदुल सिंह मयूर एवं मार्जार जैसी होती है वो वे स्थियां सौभाग्य ऐश्वर्य एवं वैभव का उपभोग करनेवाली समझी जाती हैं।<sup>२३</sup> अतः गति-सौंदर्य के लिए पद्म मयूर एवं केहरी जैसे उपमानों का प्रयोग हुआ है। इस दिशा में किसी नवीन उपमान का प्रयोग नहीं हुआ है।

अर्थ—सांकेतिक लक्षणों की अपेक्षा सामुद्रिक की दृष्टि में भी स्थियों का वर्ग अधिक फलदायी माना गया है और इसीलिए उन्हें बहिनी कहा जाता है।<sup>२४</sup>

१६	सामुद्रिक तिलक ४। १६, १७।	२१	बही ४। ३८।
१७	बही ४। ४०, ४१।	२२	बही ४। ३६।
१८	बही ४। १२७।	२३	बही ४। १३५, १३६।
१९	बही ४। ४१।	२४	बही ४। १०४।
२०	बही ४। ४५।		



पंक्त किञ्चित् के समान तब तुर्बन की तरह अथवा चपक कुंगुम के समान स्निग्ध गौर वर्ण धुम समझा जाता है। तब तुर्बन के अर्धुर रीसा, अर्धुन पुष्प के समान चमकीला इमाम वर्ण भी सीमाम्भुषण माना गया है। बानर बाणक के समान राशि के बन्ध कार की तरह ब्यागा भिड़िया के समान ब्याम वर्ण भी सावध्य एवं पुन की वृद्धि करनेवाला माना गया है। एकदम सफेद अथवा कपिल वर्ण धुम नहीं समझा जाता है।<sup>१४</sup> स्त्री-शरीर का वर्णन साधारणतः स्वामस रूप में न करते हुए उसके पीर रूप का वर्णन करना ही कवियों में रुढ़ि हो चुका है। इस दृष्टि से जो उपमान हिन्दी महाकाव्यकारों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं वे प्रायः सदा ही हैं। वर्ण-सीधर्य की व्यवना के अतर्गत स्वर्ण चंदक कमल किञ्चित् पराग शिखर दीप-सिखा उषा श्रु, इन्दिरा आदि प्राचीन उपमानों का प्रयोग हुआ है। जायसी द्वारा प्रयुक्त 'पारस' एवं प्रसादजी द्वारा प्रयुक्त 'विजयी का फूल' नवीन उपमान माने जा सकते हैं। भक्तजी एवं हर बमकुसुमजी द्वारा प्रयुक्त 'गुलाब' भी नवीन उपमान के अन्तर्गत रखा जा सकता है जो फरसी-के प्रभाव के कारण ही व्यवहृत हुआ है।

**बेह**—नारी की बेह रचना भी उसकी रूप-व्यवना में सहायक होती है। साधारणतः नील पीत एवं श्वेत वस्त्र उपमानों की तरह ही सदा उपकरण हो गए हैं। उक्त तीनों रंगों के वस्त्रों का प्रयोग हिन्दी-महाकाव्यकारों ने भी किया है।

**कद**—सामुद्रिक मतानुसार स्त्री का अधिक लम्बा अथवा अधिक छिन्ना होना अशुभ माना जाता है।<sup>१५</sup> हिन्दी-महाकाव्यकारों द्वारा केवल प्रसादजी को छोड़ कर, नारी के कद-सीधर्य की व्यवना नहीं की गई है। इस दृष्टि से कद के लिए प्रयुक्त 'गिधु खान' उपमान अपने आप में शीघ्र है।

**लावण्य**—सामुद्रिक शास्त्र के अंतर्गत लावण्य को 'छाया' की संज्ञा प्रदान की गई है और स्त्री के शरीर प्रत्यक्ष का छायायुक्त होना अति उत्तम माना गया है।<sup>१६</sup> रूप-लावण्य की व्यवना की दृष्टि से नारी में सीधर्य सुकुमारता मृदुता दृढता अति कोमलता एवं काम्य-जगज्जगलता होना आवश्यक है और इन गुणों का नामा रेधियों के रूप से संप्रतिष्ठ होना अनुमान का विषय है।<sup>१७</sup> अतः लावण्य-बोध की दृष्टि से हिन्दी महाकाव्यों में जहाँ उमा सबकी धारदा एवं आदि उपमान की तरह प्रयुक्त हुई हैं

२४. सामुद्रिक तिलक ५ : १०४  
से १०६।

२६. सामुद्रिक शास्त्र, स्त्री लक्षण-  
विकार श्लोक २३।

२७. सामुद्रिक तिलक ५ : १४०।

२८. हिन्दी-साहित्य की भूमिका  
पृ० २६०।

वही शरद-शक्ति शरद-चन्द्रिका कुसुम-वैभव संयुक्तता मूर्तिमान उषा ध्वनिगुह की प्रदीप्त वीप-विष्ठा आदि प्राचीन उपमानों का हो प्रयोग हुआ है। प्रमादजी द्वारा प्रयुक्त भयम का अभिप्राय 'हृन्मज्जित' इस विधा में महीन उपमान माना जा सकता है। अन्य उपमानों से संगृह्य न होकर कवियों द्वारा उपमेय को ही उपमान भी बना दिया गया है और माधव्य की ध्वजना भगवन्मय द्वारा हुई है।

### रूप-वर्णन की विशेषताएँ

हिन्दी-महाकाव्यों की कला-भूमि में व्यक्त नारी के रूप-वर्णन की विशेषताएँ प्रधानतः निम्नलिखित हैं —

[१] रासो के बना कर रावण-महाकाव्य तक का रूप-वर्णन एक पुरुषि सम्मेलन कला-रहि का खोजक है। यह कला-रहि निरन्तर विकसित होती चली गई है।

[२] काल-वय के अनुसार रचि-वैध रहिगोचर होता है। प्रारम्भ में लक्ष-निष्ठ वर्णन के प्रति बीमा लगाव रहिगोचर होता है वह समयानुसार परिवर्तित होता चला गया है। नारी के विशेष लक्षणों के प्रति जो अधिकतम पुरुषवर्ती महाकाव्यों में रहिगोचर होती है वह जनी जग-न्यून होती चली गई है।

[३] रूप-वर्णन के अन्तर्गत जहाँ एक ओर भारतीय साहित्य की उपमान परम्परा का निर्वाह हुआ है एवं अधिकतम उपमान अपने परम्परित स्वरूप में ही प्रहीन किए गए हैं वहीं दूसरी ओर रूप-वर्णन की रूप परम्परा को पकड़ कर नहीं रखा गया है जो नारी की सर्वांग सामाजिक आदर्श बनना युग की विचारधारा के प्रतिबलित जाती हो।

[४] रूप-वर्णन के अन्तर्गत बाह्य प्रकृति से प्रायः उन्हीं उपमानों को प्रहीन दिया गया है जो धार्मिक लक्षणानुसार नारी सौभाग्य के सूचक हैं।

[५] रूप-वर्णन के अन्तर्गत प्रधानतः नारी के शारीरिक एवं रासत स्वरूप की ध्वजना ही हुई है। सामन्य वृत्ति के अन्तर्गत उनके क्यामत स्वरूप की लक्षण नाम मात्र को उपलब्ध होती है।

[६] पद्यरत्नी से अपनाए गए विभागीय उपमान की लक्ष्य अपेक्षा न्यून है और जो पुरुषिपूर्ण रूपमान स्वरूप हो भुटे से उन्हें या तो छोड़ दिया गया है अथवा उनके परिष्कृत रूप को ग्रहण कर लिया गया है।

[७] रूप-वर्णन के अंतर्गत नारी-सौंदर्य को विभिन्न दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया गया है और अभिव्यक्ति में भी वैविध्य के बजाय प्राबलता आती चली गई है ।

[८] रङ्ग उपमाओं का प्रयोग के होने के बाव भी रूपाभिव्यक्ति में कुछजमित कलाबाजी कम हूयजनित सतक अधिक विकसित होती चली गई है और नारी की यह रूप-व्यंजना बाह-बाह' की वस्तु न होकर, सुन्दर की अनुभूति से उत्पन्न आनन्द की वस्तु है ।

[९] रूप-वचन के वैविध्य में भी एकत्व के ये मूल भाव विद्यमान हैं जो नारी-सौंदर्य को सुवर्ण-सम्पन्न कसा-दृष्टि से देखने को बाध्य करते हैं ।

[१०] रूप-वर्णन के अंतर्गत व्यक्त नारी की स्वरूप-व्यंजना केवल सुन्दर ही नहीं शुभ एवम् कहीं-कहीं मंगलमय भी हो सती है । अतः शुभ एवं मंगलमय होकर यह रूप-वर्णन सौंदर्य के माध्यम द्वारा नारी के नायिका-स्वरूप का ही नहीं उसके मंगलमय भाव रूप का भी व्यंजक हुआ है ।

[११] नारी-सौंदर्य के सामान्य आवर्णों से अनुप्राणित होकर भी यह रूप वर्णन-प्रतिमा के नवाङ्कुरों से ह्रियाभ हो उठा है और कल्पना के अत-अत रंगों से अनुरंजित है ।

## षष्ठ अध्याय

### हिन्दी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि

- महाकाव्यकारों के नारी विषयक उद्गार—  
परंपरागत तथा आधुनिक ।
- हिन्दी-महाकाव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण ।
- नारी-चित्रण का बौद्धिक पक्ष और उसकी  
विशेषताएँ तथा सीमाएँ ।



हिन्दी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि के अंतर्गत नारी विषयक विचारधारा इष्टिकोष एवम् उसका स्वल्प ज्ञानने के लिए सब प्रथम हमारा ध्यान महाकाव्यकारों के नारी विषयक उद्गारों की ओर जाता है। रासोकार से लगाकर रावण महाकाव्यकार तक आते-आते लगभग एक हजार वर्षों की इस विचारधारा को अनेक ऐतिहासिक राजनैतिक सामाजिक एवम् धार्मिक परिवर्तन देखने पड़े हैं और यह विचारधारा भी मूनाधिक रूप से पूर्व कथित परिवर्तनों द्वारा प्रभावित हुई है। नापी-विकाट की पुष्टभूमि के अंतर्गत हम इन परिवर्तनों पर विचार कर चुके हैं। देव कमल एवम् बाटावरम के प्रभावजनक महा इस विचारधारा को अपना स्वर एवम् स्वरूप बदलता पड़ा है वहीं कुछ परम्परागत विचार संस्कारजनक महाकाव्यकारों के नारी विषयक स्वर एवम् इष्टिकोष को अपरिवर्तित ही रखत है। अतः इस विचारधारा के स्वरूप एवम् स्वर का विस्तरेण करने के लिए महाकाव्यकारों के नारी विषयक उद्गारों का ज्ञान जेना आवश्यक है। हिन्दी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि के अंतर्गत व्यक्त होनेवाले महाकाव्यकारों के उद्गार एवम् उनका विस्तरेण संक्षेप में इस प्रकार है —

रासोकार एवम् नारी — ऐतिहासिक दृष्टि से रासोकार का युग नारी की दासता का युग है। धार्मिक तथा सामाजिक विभिन्न-विचारों द्वारा इस युग में नारी-निन्दा एवम् नारी-हेपता का प्राबल्य-था रहा है। इस युग में कन्या का जन्म भाग्यभाग के प्रश्न के कारण परिचाय का विषय है। राजनैतिक दृष्टि से भी यह युग शक्ति-प्रवर्तन एवम् तमवार के बस पर व्यक्तिगत मान-सम्मान का निर्णायक युग है। अतः नारी भी इस युग में तमवार की तुला पर तुलती रही है। तमवार की धमक एवम् मुपुर्तों की धमक के नाम पर एक ओर जहाँ कुछ अवसरमायी से हो उठते हैं वहीं बाध्य होता के वैभव-विभाण एवम् कैमि-कसाप के नाम पर नारी शृंगार का साधन एवम् अंतपुर की भी-मोमा-वृद्धि का हेतु बनती है। ऐसी स्थिति में रासोकार भी जहाँ एक

और पति के प्रति अनन्य प्रेम-भावना एवम् नारी के लिए विनय-भारणा की आवश्यकता पर बल देते हुए परम्परागत स्वर में 'विनय मंगल' का पाठ पढ़ाकर अपने नारी विषयक उद्गारों को व्यक्त करता है,<sup>१</sup> वहीं दूसरी ओर उस ओर बासठा उभा उत्तान शू गारिकता के मध्य उसके कवि हृदय की सहानुभूति नारी की इस धीन स्थिति से प्रविष्ट होकर संयोगिता ने स्वर में इस प्रकार फूट निकसती है—'लोप न जाने क्यों स्त्रियों की नीच बुद्धि की समझते हैं। यह नहीं जानते कि इस सृष्टि की रचना स्त्रियों से ही हुई है। जो स्त्री जन्मभर सुख-दुःख बटाती है और पति के मरण के पश्चात् भी उसका साथ देती है उसे तुच्छ समझना अभ्यास नहीं तो क्या है ?'<sup>२</sup>

रासोकार की द्वितीय विचारधातु जहाँ एक ओर नारी के प्रति उसकी सहानुभूतिवन्त सहृदय दृष्टि को व्यक्त करती है वहीं दूसरी ओर वह नारी के उस क्रमशः युग में युग की अभ्यास दृष्टि के समक्ष एक प्रश्नवाचक चिह्न खड़ा कर, अपने क्रान्ति-कारी दृष्टिकोण का परिचय देता है। यद्यपि 'रासोकार' का यह स्वर युग के मसिन मसवे के नीचे दब जाता है पर हिन्दी का यह प्रथम महाकाव्यकार, हिन्दी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि में अनजान ही उस बीज का बोध कर देता है जिसे जागे बन कर इस बौद्धिक भूमि में विकसित होगा है।

पद्मावतकार एवम् नारी—पद्मावतकार के युग में नारी की स्थिति 'रासोकार' के युग से भी अधिक बदनीम हो चठी थी। नासिक क्षेत्र में निवृत्ति का बोसबासा था और नारी-निन्दा का स्वर पहले से भी अधिक प्रबल हो उठा था। सामाजिक कुरीतियों ने नारी की 'खी-सही' स्वर्णमत्ता का भी अपहरण कर लिया था। ऐसी स्थिति में 'प्रेम की पीर' का प्रतिपादन करण एवम् प्रेम मार्गीय होन के बार भी पद्मावतकार के नारी विषयक उद्गार उच्चार दृष्टिकोणर नहीं होते। रत्नसेन के मुह से यह कहना कर कि 'तुम स्त्री हो तुम्हारी मति हीन है और वह मूख होता है जो स्त्री के कहने में सगता है'<sup>३</sup> जहाँ पद्मावतकार नारी की हीनता का समर्पण करता जान पड़ता है, वहीं दूसरी ओर राज्य भरपरि का उदाहरण देकर और बोधी के लिए बन भरनी तथा राज्य की निरर्थकता व्यक्त करते हुए,<sup>४</sup> वह निवृत्ति मार्ग के उस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है जो नारी को त्याग्य वस्तु मानता है। इतना ही नहीं, वह उस युग के उस सामान्य सिद्धान्त का भी समर्थन करता दृष्टिकोणर होता है जो सिद्धान्त नारी को भी शक्ति हाथ प्राप्य वस्तु मानता है। नाबल के मुख से यह कहना कि

१ रासो, विनय मंगल प्रस्ताव समय

४६।

३ आपसी प्रपावली पृ० २५।

४ वही पृ० २५।

२ वही, समय ६६। २६६ से २६८।

'सो और भूमि तलवार की बाही है और वह उठी की होती है जो तलवार का बनी होता है' २ इस बात का प्रमाण है कि पद्मावतकार का इहिकोज नारी के प्रति अनुराग ही रहा है। शुक्लजी ने भी इस बात की पुष्टि की है कि जायसी के सामाजिक विचार भी प्रायः ऐसे ही थे जैसे उस समय जन साधारण के थे।<sup>३</sup> अतः यह स्पष्ट है कि पद्मावतकार के नारी विषयक उद्गार तत्कालीन इहिकोज के ही पोषक हैं।

मानसकार और नारी—मानसकार का युग वह मध्य युग है जो ऐतिहासिक धार्मिक सामाजिक एवम् राजनैतिक सभी इष्टियों से नारी का अंधकार युग माना जाता है। अतः मध्य युगीन विचारधारा का प्रभाव मानसकार पर पड़ना भी स्वाभाविक ही था। ऐसी स्थिति में मानसकार के नारी विषयक उद्गारों से भी बड़ी छनीचंटा एवम् अनुराग भावना व्यक्त होती है जो सामान्यतः तत्कालीन युग की विपाक विचारधारा बन कर विरह व्यापिनी हो चुकी थी। किन्तु मानसकार के सामने जिस मार्हस्थ बर्ग संस्थापन का आदेश था और वह बगल को 'सिंघारम मय' जानकर जिस महती भावना को लेकर जाता था वह आदर्श और वह भावना उसे नारी के प्रति एकदम अनुराग हो उठने से रोकती है। इसीलिए मानसकार के उद्गार जहाँ एक ओर मध्य युगीन संकीर्णता से अछूते नहीं रहने पाए हैं, वहीं दूसरी ओर वह उन विचारों का भी प्रतिपादन करता है जो परम्परा से चले आए हैं और अपने आप में उपदेष्टात्मक हो उठे हैं।

मध्य युगीन संकीर्णता तथा निवृत्तिपरक धार्मिकता के कारण मानसकार की नारी को 'सहज जड़ अज्ञ' समझता है। वह नारी-चरित्र को अथाह समुद्र मानत हुए,<sup>४</sup> नारी होना भी एक दुर्लभवर्णक वस्तु ही मानता है क्योंकि जाने लंगड़े बुरे सोमों की कुटिलता एवम् कुचाल के साथ वह नारीत्व का संयोग भी इस कुटिलता एवम् कुचाल का वर्णक स्वीकार करता है।<sup>५</sup> तुलसी पाषक समुद्र एवम् काल की तरह नारी को भी प्रवत मानते हैं<sup>६</sup> और विधाता के लिए भी अज्ञेय बघाते हुए संपूर्ण कपट अवयुज एवम् पाप की अद्यय समझते हैं।<sup>७</sup> वे नारी में जाठ अवयुज जर्जान् साहस अनुत्त चपलता मया भय, अविशेष अपवित्रता एवम् बयाहीनता की चर्चा भी करते हैं।<sup>८</sup> और डोल संभार तथा घूर की भाँति नारी को भी ताड़न की अधिकारिणी घोषित करते इहियोचर होते हैं।<sup>९</sup>

२. जायसी संभावली पृ० २३४।

१०. बही पृ० ४४७।

३. भा० प्र० की भूमिका पृ० १२७।

११. मानस, अयोध्याकांड पृ० २९१।

४. मानस, बालकांड पृ० ७४।

१२. मानस संभाकांड पृ० ६१३।

५. मानस अयोध्याकांड पृ० ४९७।

१३. मानस, मुग़रकांड पृ० ६१३।

६. बही पृ० ४१४।



यह मध्य युगीन संकीर्णता जब धार्मिकता का रूप ग्रहण करती है तो मानस-कार के नारी विषयक उद्गार और भी कठोर हो उठते हैं। तुलसी कहते हैं 'काम-प्रोम सब और सोमाहि मोह की प्रबल सेना है। इनमें भी अरपस्त बास्व दुःख देने वाली माया कपिणी नारी है। माह के बन के लिए स्त्री बसंत है। जप तप और नियम सरोवर है नारी प्रीत्य होकर सबको मोह लेती है। सब धर्म कामों के समूह हैं माया कपिणी स्त्री हिम श्रुत होकर उन्हें कठिन कुस देती है। ममता बवास की बहुमता है वह स्त्री कपी लिखिर श्रुत पाकर पस्मवित होता है। स्त्री पाप कपी उत्सृजों के लिए सुप्त देनेवाली चोर अंधियारी रखनी है। बुद्धि बल सीस और सत्य मत्स्य हैं स्त्री बंसी के समान है। स्त्री अवयुगों की मूल है, सुमप्रब एवम् कुत्सों की शान है।'<sup>१४</sup>

मानसकार के द्वितीय प्रकार के नारी विषयक उद्गार भी परम्परागत हैं। नारी-धर्म बचवा पतिव्रता-धर्म का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए वे नारी के लिए पति को ही एकमात्र देवता घोषित करते हैं।<sup>१५</sup> पति की सेवा न करनेवाली स्त्री बर्षम है।<sup>१६</sup> बूढ़ रोगी भुखे निर्बल श्रंवा बहुरा कोपी और अरपाधिक निर्बल पति हो तो ऐसे पति का भी अपमान करनेवाली स्त्री यमपुर में नाना प्रकार के दुःख पाती है। स्त्री का एकमात्र बल घट और नियम लीर, बचन और मन से पति के चरणों में प्रेम रखना है। \* स्त्री स्वभाव से ही अपवित्र होती है पर पति की सेवा करके वह शुभ गति प्राप्त करती है।<sup>१७</sup> इसी प्रकार एक ओर जहाँ मानसकार का हृदय सहानुभूति पूर्वक 'पराधीन यवनहु मुख नाही कह कर नारी की पराधीनता से विरग्य होता जान पड़ता है वहीं दूसरी ओर वह स्वार्थ होइ बिगरहि नारी कह कर परम्परामत सिद्धांत का प्रतिपादन करता है।

मानसकार के नारी विषयक उद्गार विवाह का विषय रहे हैं। मांभीजी ने इसे अनिच्छापूर्वक किया हुआ अश्याम'<sup>१८</sup> माना है और भुक्खजी के कथनानुसार 'यह अपराध जड़हने अपनी विरति की पुष्टि के लिए किया है।'<sup>१९</sup> मिश्रजी के मतानुसार 'उत्तमपक्ष के पापन में कवि-कल्पना का उपयोग करना अपने उद्देश्य के अनुकूल न समझ कर मोस्वामीजी ने इसके श्यामल पक्ष पर ही बहुत जोर दिया है।'<sup>२०</sup> नयेन्द्रजी

१४ मानस, धरण्याकांड पृ० ८०७, ८।

१८ वही पृ० ७३७।

१५ मानस, धारणकांड पृ० १२४।

१९ धर्मपथ पृ० ६५।

१६ मानस, धरण्याकांड पृ० ७३५।

२० मोस्वामी तुलसीदास पृ० ३३।

१७ वही पृ० ७३६।

२१ तुलसी-दर्शन पृ० २३।

## हिन्दी-महाकाव्यों की शैक्षिक भूमि

की राय में 'भुलसीदास के रामचरित मानस तथा अन्य ग्रंथों में विभिन्न प्रसंगों में ऐसी अनेक उक्तियाँ हैं जो किसी भी देश-काल की नारी के प्रति किसी रूप में भी न्याय नहीं करती।<sup>२०</sup> यह अनिच्छा हो या चिरित की पुष्टि इयामस पक्ष पर दिया जानेवाला जोर हो या पात्रगत कथन परम्पु इतना स्पष्ट है कि मानसकार के नारी विषयक उद्गार मध्य युगीन संकीर्णता एवम् परम्परागतता के पोषक ही हैं। मध्य युगीन घुटन में वन छोड़ती नारी को मानसकार चाहे 'प्राण-वायु के रूप में नारी धर्म का पुराना गुस्ता मने ही प्रदान करे, वह नारी के पक्ष में कोई व्यक्तिगती याचना प्रस्तुत नहीं करता। इस विषय में सामान्य नारी को मानसकार जैसे 'लोकनायक महारत्ना और महाकवि से सम्पत्ता ही अधिक प्राप्त हुई है।

चन्द्रिकाकार और नारी—चन्द्रिकाकार के युग में नारी की स्थिति बह से बरतार ही होती जाती गई है। चन्द्रिकाकार का युग चारों ओर से नारी की बराबर का युग है। अतः चन्द्रिकाकार ने नारी विषयक उद्गार भी अपने युग द्वारा प्रभावित होकर परम्परागत ही हैं। साथ ही चन्द्रिकाकार में 'बहु सहृदयता और भावुकता न थी आ एक कवि में होना चाहिए।<sup>२१</sup> ऐसी स्थिति में चन्द्रिकाकार के केवल परम्परागत उद्गारों की पुनरावृत्ति के अतिरिक्त अन्य उद्गारों की याचना रखना ही बुरा है। कथन में भी 'पुंगु पुंगु बरतार को स्वप्न में न त्यागने की व्यवस्था तो नारी के लिए की ही पर साथ ही कनही कोड़ी और चोर, कुमारी व्यक्तिगती कुपति को भी नारी के लिए अत्याम्य<sup>२२</sup> कोषित करल हुए, परम्परा का ही पालन किया है। इसके अतिरिक्त जर्म जर्म की सफ़लता के लिए नारी की अनिवार्यता और उसकी अनुपस्थिति से होनेवाली निष्फलता<sup>२३</sup> की चर्चा भी उन्होंने परम्परा से जले भाए बिचारों की पुष्टि के रूप में ही की है। अतः चन्द्रिकाकार के नारी विषयक उद्गार परम्परागत ही हैं और इन उद्गारों में 'सहृदयता' की समझ भी वहीं दृष्टिकोण नहीं होती।

चन्द्रिकाकार एवम् नारी—त्रिप्रवासकार का युग, नारी-जागृति का युग है। युग की सहृदयता का नृपपात हो जाने के कारण इस युग के नारी विषयक दृष्टिकोण में परिवर्तन हो चुका था। यद्यपि इस परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण त्रिप्रवासकार ने भी नारी विषयक याचना परिवर्तित स्वरूप में प्रकट की है परन्तु त्रिप्रवासकार के नारी विषयक उद्गार केवल दो स्थलों पर ही प्रकट हुए हैं। त्रिप्रवासकार ने एक स्थल पर प्रकट किया है कि 'नारी-हृदय-दल को पीड़ा नारी ही जानती है,<sup>२४</sup> और

२. भुलसीदास एक बिलेखण पु० १६। २४ त्रिप्रवासकार ६। १६।  
 २१ हिन्दी साहित्य का इतिहास २५ वही ३५। १।  
 २२ पु० २३१। २६ त्रिप्रवास १५। ५।

द्वितीय स्थान पर यह व्यक्त हुआ है कि 'मैं नारी हूँ तरल उर हूँ प्यार से बधिता हूँ। जो विक्रम, विमला, ध्यस्त होती हूँ तो इसमें बिभ्रिता क्या है?'<sup>२०</sup> दोनों ही बातें केवल एक तथ्य को व्यक्त करती हैं और वह तथ्य यही है कि नारी तरल हृदया होती है। इस परम्परागत विचार ही माना जा सकता है।

साकेतकार और नारी—साकेतकार का युग सुचारवादी युग है। युग की उदात्त विचारधारा के अनुरूप ही साकेतकार भी नारी को सबसे सबसे न मानते हुए यह व्यक्त करता है कि नारी विश्व की पंथीरता प्रभु कीरता है। भूमि के कोटर, गुहा गिरि, पठ आदि जिसके सहज संसर्ग से प्राणियों के लिए स्वर्ग से दीखत हैं। नारी कल्पवल्ली के समान दिव्य फल बांटनेवासी है।<sup>२१</sup> इस उदात्त विचारधारा के उद्भोप के साथ ही साकेतकार के अब नारी विषयक उद्गार, संस्कारवाद्य वे ही हैं जिन्हें परम्परागत विचार ही कहा जा सकता है। बबल्य की महिमा का बखान करते हुए साकेतकार के ये विचार कि 'आयुधर स्वामी का स्मरण सहमरण के धर्म से भी श्रेष्ठ एवम् यत्न है'<sup>२२</sup> संस्कारवाद्य विचार ही माना जा सकता है। इसी प्रकार 'नारियाँ आत्मसमर्पण करके निश्चिन्त हैं'<sup>२३</sup> और 'कुल-स्त्रियाँ अपनी सुख नहीं लेती'<sup>२४</sup> जैसे उद्गार भी परम्परागत संस्कार के ही परिणाम हैं। फिर भी साकेतकार के नारी विषयक उद्गार सहृदयताजन्य हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि साकेतकार के नारी विषयक उद्गार युग की सहृदय इष्टि एवम् युग की मान से अनुप्राणित है।

कामायनीकार एवम् नारी—कामायनीकार का युग नारी के नव जागरण एवम् गलनाद का युग है। इस युग में वही एक ओर नारी अपने अधिकारों के लिए स्वयं प्रयत्नशील हडिमीकर होती है, वहीं उसे युग की वह सहृदयता भी प्राप्त होती है जो उसके वैयक्तिक अधिकारों तथा सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक सिद्ध हुई है। इस विधा में कामायनीकार के नारी विषयक उद्गार भी अपनी उदात्त विचार धारा के कारण नारी-आधुति के उद्भोपक मंच बन कर सामने आते हैं। कामायनीकार की उदात्त विचारधारा एक बार पुनः नारी को आर्थिक ऊँचाई तक उठाने का प्रयत्न करती हुई<sup>२५</sup> ोनी है। कामायनीकार के नारी विषयक उद्गार बुद्ध-विन्दन प्रज्ञाधार पर अर्पित ऐसे उदात्त विचार हैं जो नारी की का युग प्रतिस्थापित करनेवासे सिद्ध होते हैं।

कामायनीकार नारी को केवल यज्ञ मानते हुए जीवन के सुन्दर समस्त में उसे पीयूष-स्रोत-सी बहते देखना चाहता है और माँस से भीगे आँस पर मन का सब कुछ रखते हुए अपनी स्मृत-देखा से वह उसे समिपन मिश्रने के लिए प्रेरित करता सा दृष्टिगोचर होता है।<sup>१२</sup> माँस से भीगे आँस में अथ वस के संकरप से दान किए हुए नारी-जीवन के सोने से छपने हैं और इन सपनों को प्राप्त करने के लिए मन का सबकुछ रख कर भी मुस्कुराने की आवश्यकता है। यह मुस्कराहट यज्ञ-समन्वित होकर ही उस संधि-यज्ञ को मिल सकती है जो जीवन के समस्त में नारी को पीयूष प्रवर्तिनी का पद प्रदान कर सके क्योंकि अवयव की वह सुन्दर कोमलता जो नारी सुलभ दुर्लभता के कारण उसे हटाती आई है।<sup>१३</sup> और जब कभी भी नारी ने स्वयं को तोलने का उपचार किया है तो वह स्वयं गुप्त जाया करती है।<sup>१४</sup> अथ विमिश्रित आँस के भार को वहन करते हुए, यज्ञ के बस पर ही उसके अक्षरों पर स्मितरेखा उमर सकती है और वह स्मृत-देखा ही जीवन का संधि-यज्ञ मिल सकती है। अतः कामायनीकार नारी को 'वैश्व यज्ञ' भोषित करते हुए उसमें यज्ञावहित तपि का सञ्चरण करना चाहता है जो नारी का आत्मबल बनकर उसके पथ को प्रशस्त कर सके। किसी भी सुधारक के हाथ में पड़कर यही तप्य उपदेष्टापरक होकर 'नारी का आत्मबल ही उसकी उत्पत्ति में सहायक हो सकता है जैसे रूप में प्रकट होता। किन्तु यह नारी-समस्या की सादृश्य नीमांसा न होकर आत्मसमाप्ति रस रस ही हो जानी। अतएव इस विचारधारा को हम एक चिन्तनशील साहित्यिक का नारी विषयक काव्यात्मक उद्गार मान सकते हैं।

इतना ही नहीं कामायनीकार पुरपत्य-मोह में नारी की मत्ता को भुल जाने वालों की मर्त्यता करते हुए, यह तप्य भी प्रकट करता है कि अधिकार और अधिकारी के मध्य समरसता का सम्बन्ध है और इन विषयासमयी नारी को नृस समझ कर उड़ा देने से काम नहीं चलेगा।<sup>१५</sup> इस समरसता के अंतर्गत यही उदात्त भावना है जिने राबनीति में 'समानता' का नाम दिया जा सकता है। इसके अनिश्चित निवृत्ति मार्गों लोगों द्वारा 'मायाविनी' बना कर बोसी जानेवाली नारी को कामायनीकार 'माया ममता का बस एवम् दृष्टिमयी मोहत छाया'<sup>१६</sup> भोषित करता है। कामायनीकार नारी को मुहूर्ण की अनेक वर्षा स्नेह की मधु रजनी और जीवन की चिर अनृति को संतोष प्रदान करनेवाली मानता है।<sup>१७</sup> संतोष में कहा जाय तो कामायनीकार की दृष्टि

१२ कामायनी पृ० १०६।

१२ वही प० १६२।

१३ वही पृ० १०४।

१६ वही पृ० २१८।

१४ वही पृ० १०१।

१७ वही पृ० २२६।

में मनु-बारा द्वारा ही नारी के समस्त मुख्य एक शुद्ध पात्र<sup>४८</sup> ही साबित होता है। नारी विषयक उद्गारों की यह ऊँचाई युग हृदय के साथ-साथ कामायनीकार की अपनी विशेषता है और यह उस बीच-भाव का सर्वोत्कृष्ट विकसित स्वरूप है जो रासोकार द्वारा समझाने ही हिन्दी-महाकाव्यों की बौद्धिक भूमि में ज्ञान दिया गया था।

**नूरजहाँकार एवं नारी**—नूरजहाँकार का युग आधुनिक युग ही है जो नारी का नव आधुनिकता माना जाता है। किन्तु नूरजहाँकार ने जिस युग की कथावस्तु के आधार पर अपने महाकाव्य का प्रथमन किया है, इसके कारण उसमें युगीन तथा उत्क्रांती दोनों ही प्रकार के नारी विषयक उद्गारों का मिलना स्वाभाविक है। फिर भी युगबानी का जमाव हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। जहाँ नूरजहाँकार के नारी विषयक उद्गार जहाँ एक ओर परम्परागत से जगते हैं वहीं दूसरी ओर उन पर आधुनिकता की छाप भी है। नूरजहाँकार के मतानुसार नारी-हृदय पर अत्याचारी का झल-झल विषम नहीं पा सकता है क्योंकि इस कोमल तन के भीतर हृदय कोट का जो मंडल है उसके कारण विदम-सुटेरों का रस वहाँ कभी कुछ नहीं पाया है।<sup>४९</sup> नारी अपने कर्तव्य-धर्म पर तन मन बन हारती है। उसके पावन चर की रीबारों के भीतर अमर वम्पति धर्म रहता है।<sup>५०</sup> इस विचारबारा को हम परम्परागत मानवार्थों के संतर्गत ही रख सकते हैं।

‘जबसा नारी’<sup>५१</sup> और ‘औरत के हिस्से में बुद्धि नहीं आई है’<sup>५२</sup> जैसे विचार उत्क्रांती युग के प्रतीक बन कर आए हैं। आधुनिकता से प्रभावित उद्गारों के संतर्गत हम नारी के आहत हृदय की छ्कार पाते हैं। नूरजहाँकार कहता है ‘नारियों का कुछ कर्तव्य है तो उतना ही अधिकार भी है। हृदयहीन पति का पत्नी पर बहुत अत्याचार हो गया है। यदि परस्पर प्रेम तथा सम्मानपूर्ण व्यवहार नहीं है तो ‘निकाह’ जबसाजों की ठगने का व्यापार है।’<sup>५३</sup> इस प्रकार नूरजहाँकार में भी युग की उदात्त भाव-आप के दर्शन होते हैं।

**सिद्धार्थकार एवं नारी**—सिद्धार्थकार का युग भी नारी-आधुनिकता का ही युग है किन्तु महाकाव्य की कथावस्तु के कारण सिद्धार्थकार द्वारा व्यक्त नारी विषयक उद्गार या तो अपने निष्पत्ति परक स्वरूप में प्रकट हुए हैं जबसा निष्पत्ति विरोधी स्वरूप में। कुछ विधा परम्परा से थके आए हृदिकोंग की पुष्टि करने वाले हैं। एक ओर सिद्धार्थकार मोक्ष की सफल औपधि सम्मोय को मान कर, नारी को विभ्रम का सपुह

४८ कामायनी पृ० २५५।

४९. नूरजहाँ पृ० ३२।

५०. वही पृ० ६६।

५१. वही पृ० ६०।

५२. वही पृ० ६३।

५३. वही पृ० ८७।

जान विद्यानवासी कहता है।<sup>४४</sup> जो दूसरी ओर नारी को विषम-वर्ग की हड़ बड़ बताता है।<sup>४५</sup> सिद्धार्थकार नारी के कामिनी स्वरूप की वृत्ति को व्यक्त करते हुए यह भी कहता है कि 'जो कामिनी के अघर परम्परा नहीं दीजा है उसकी भू-मतिमा को मोक्षपूर्वक नहीं देखता है उसके आत्म्युक्त वेष्ट देख कर सहाय नहीं होगा है, वह कभीक भी न बचता जैसा है। नारी सुमया सुनवा सम्पत्ति की प्रणयिनी एवम् कुसमायुक्त की अग्रुप श्रिया है। जो मृग इनको छोड़ कर वनवास लेत हैं वे वन में दुरूप तथा मुड़ी बन कर अकेले पड़े हैं।<sup>४६</sup> वह नारी को दीप्य-पुत्र रक्ति-गणि एवम् महाधर्मिया<sup>४७</sup> के विशेषको से भी विमुक्ति होती है। अतः यह स्पष्ट है कि सिद्धार्थकार के नारी विषयक उद्गार पाश्चात्य विचारधारा के व्यक्त होकर ही व्यक्त हुए हैं। सिद्धार्थकार के नारी विषयक स्वर में कोई नवीनता या उन्माद विचार माप नहीं है।

सांकेतिककार एवम् नारी—मातृवर्णनकार भी आधुनिक युग का महाकाव्य कार है। अतः उसके स्वरों में युग की सङ्कल्प दृष्टि का रुपावेश होना स्वाभाविक है। किन्तु सांकेतिककार के नारी विषयक उद्गार नवीन न होकर अपने परम्परागत स्वरूप में ही प्रकट हुए हैं। इन उद्गारों के अवर्णन सत्कार-मोह ही मानता है। सांकेतिककार के अनुसार नारी-मन में अपार सन्तोष रहता है और नारी का मातृ एक काल पर ही होता है, पुरुष मन के समान न जो उसमें छवि का विग्नान है और न अनन्त पर चाव।<sup>४८</sup> कुल कष्ट कम रखेगा यह ही है उन कष्टमय आत्मा लक्षित है और अपना स्वयं-ममात्र श्रिष्ट है।<sup>४९</sup> यह विचारधारा अपने परम्परागत रूप में व्यक्त हुई है। दुयवाणी के रूप में पुरुष के एकाग्रित के सामने सांकेतिककार ने जाति के मुख से यह कहाने हुए कि 'मुझे नहीं अधिकार है कि तुम बड़े की भी कुछ में जाती'।<sup>५०</sup> एक प्रत्यक्षित अक्षय कक्षा दर दिया है किन्तु इन विषय में वह कोई मुरक उद्गार व्यक्त नहीं कर पाया है। पुनः मिला कर यह कहा जा सकता है कि सांकेतिककार के नारी विषयक उद्गार परम्परा एवम् संस्कार समन्वित होकर भी दुयवाणी की सङ्कल्प न मद्धने नहीं रहने पाए हैं।

४४ सिद्धार्थ पु० १७।

४५ वही प० १८१।

४६ वही पु० २१७।

४७ वही प० २१५।

४८ वही पु० २२०।

४९ सांकेतिक नैत १। ४५।

५० वही १। २२।

५१ वही १३। २८।

**कृष्णायनकार एवम् नारी**—कृष्णायनकार का युग नारी के नवीत्मान का युग है। इस युग तक आवे-आते सैद्धान्तिक रूप से नारी जिस स्वच्छन्द बाधावरण में घाँस सेते जमती है और अपने व्यक्तित्व प्रयत्नों द्वारा जिस बाधावरण की सृष्टि करती है वह वास्तव में उसकी प्रगति के पथ को प्रशस्त ही बनाता है। ऐसी स्थिति में परम्परागत कथानुसु का सुन पकड़ कर ही कृष्णायनकार ने स्वयं को नवीन विचार बाध से अलग नहीं रखा है। बार्थनिक पृष्ठभूमि के आधार पर वह नारी के माया स्वस्व की निन्दा नहीं करता। नारी और पुरुष के भेद को अनेक बोधित करते हुए वह कहता है कि जैसे क्षीर में घबसता एवम् अग्नि में बाहकता है वैसे ही पुरुष में नारी का निवास है और नारी को अलग करने पर पुरुष की कोई गति नहीं है। एक सहा है तो दूसरा नव सृष्टि है एक नय है तो दूसरा नीति है। पुरुष और नारी के रूप में दृष्टिगोचर होकर भी विषय भर में एक तत्त्व ही व्याप्त है।<sup>१२</sup> इस प्रकार कृष्णायनकार स्त्री-पुरुष के मध्य किसी भेदाभेद का समर्थन नहीं है और न नारी के माया स्वस्व का निन्दक ही।

इसके अतिरिक्त युग बाधी से अनुप्राणित होकर कृष्णायनकार सत्यमाता के मुह से प्रकट होने वाले उद्गारों<sup>१३</sup> द्वारा जैसे पुरुष की बचकता स्वेच्छाचारिता एवम् बहुपत्नीत्व श्रवता का पर्दा फास करते हुए, पुरुष के कपट भास एवम् संकुच हीनता का विरोध करता है और नारी के नवाधिकारों का समर्थन करता जान पड़ता है। नारी को खुसी रख कर मुक्त मान्ति की भाषा रखना दुःखसा मात्र है और इसी सिद्धान्त का समर्थन करते हुए कृष्णायनकार यह भी कहता है कि 'कुस वास्ता का अपमान कभी निष्पन्न नहीं जाता उनके आँसुओं के साथ ही प्रलय पयोधि समझ पड़ता है।'<sup>१४</sup> अतः यह कहा जा सकता है कि कृष्णायनकार के नारी विषयक उद्गार भी अतीत की पृष्ठ भूमि पर संकुच वर्तमान विचारधारा के स्वर में बिनमें युग की उदात्त विचारधारा परिलक्षित होती है।

**रावण महाकाव्यकार एवम् नारी**—रावण महाकाव्यकार का युग प्रजातन्त्र का युग है किन्तु कथावस्तु के चुनाव में नवीनता एवम् नवीन दृष्टिकोण का प्रदर्शन करने के पश्चात् भी रावण महाकाव्यकार नारी विषयक कोई नवीन उद्गार प्रकट नहीं कर पाया है। एक ओर जहाँ अन्धता कपिला जैसे परम्परागत विधेयक व्यक्त हुए हैं वहीं दूसरी ओर कन्या-जन्म से प्राप्त होनेवाले परिताप सम्बन्धी विचार भी व्यक्त हुए हैं। रावण महाकाव्यकार का यह कथन कि कन्या जन्म से ही गुरुजनों को मधुता

१२ कृष्णायन पृ० ६६।

१४ वही पृ० ४२१।

१५ वही पृ० ६४२।

देती है और जननी के हृदय में शोक उत्पन्न करती है, २२ उस बसी आई विभागभाग का ही दोष है जो मध्य युग में 'कन्या बच' जैसे अमानुषिक कृत्य का कारण बनी थी। फिर भी रावण महाकाव्यकार द्वारा व्यक्त उक्त विचार सहृदयताजनित है ऐतान्त्रिक रूप में व्यक्त होने वाले उद्गार नहीं। रावण महाकाव्यकार द्वारा नारी विषयक कोई उत्तेजनात्मक उद्गार व्यक्त नहीं हो पाए है।

### महाकाव्यों का नारी विषयक दृष्टिकोण

हिन्दी-महाकाव्यकारों के नारी विषयक उद्गारों पर विचार करने के पश्चात् हमारा ध्यान महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण की ओर जाता है। हिन्दी-महाकाव्यों की गरिब-भूमि भाव-भूमि एवम् कन्या भूमि के आकार पर नारी विषयक दृष्टिकोण का जो स्वरूप हिन्दी-महाकाव्यों के अंतर्गत हमारे सामने आता है, वह संक्षेप में इस प्रकार है —

सामन्तवादी दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों का नारी विषयक दृष्टिकोण सर्वप्रथम हमारा ध्यान सामन्तवादी दृष्टिकोण की ओर आकर्षित करता है। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत नारी 'और भोग्या' ही दृष्टिकोण होती है। डाक्टर बिनेयी के मतानुसार 'और स्वभावतः रति प्रेमी पाए जाते हैं' और वे इस रति-भाव को केवल उद्गम वासनाओं का नाम विधान समझते हैं।<sup>१</sup> अतः यह स्वाभाविक ही है कि इस प्रकार का दृष्टिकोण नारी को मनुष्य का आध्यात्मिक एवम् विषय-आवणा की पूर्ति का साधन ही मान कर जसेगा। इसीलिए सामन्तवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत नारी 'अल्प की बेरी बोधित होती रही है और संतान उसके माध्यम का निर्णय करती बसी आई है। सामन्तवादी मन-बहुलाव के लिए उसका नारीत्व सीधे-सीधे उभार-उभार कर दिखाया गया है और उसका मातृ-सौन्दर्य इस दृष्टिकोण के लिए बीच वस्तु बन कर रह गया है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सामन्तवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत नारी संतान या 'अलवम' बन कर रह गई है और बहु पलीत्य-श्रम से सजाया गया यह अलवम अपने आप में मूक होकर, मन-बहुलाव की वस्तु बना है। उसके लज्जा-शक्ति की परवाह होती रही है, पर उसके हृदय की बुद्धि सहृदयता की 'आनवायु' प्राप्त न कर पाई है। सीमावयस्य विनासी पति की उद्गम वासना की पूर्ति करने के पश्चात् भी उभरा पातिव्रत-भाव किम भी पामा है और इस पातिव्रत की कसौटी बिठा की जड़म आताही रही है। पृथ्वीराज राखो और सीमा विमेष तक पश्चात् के नारी-आर्तों से यही सामन्तवादी दृष्टिकोण आकृष्ट है। यही एवम् पश्चात् की बारिदां यदि महा-

१३ रावण महाकाव्य १। २२।

१ अंग वरवादी और उभय काव्य



हैं तो केवल इसीलिए कि पिता की आज्ञा पर श्रद्धा भी उन्होंने अपने पतिपरामर्श स्वरूप पर आज नहीं जाने दी है अथवा सामन्तवादी दृष्टिकोण ने उन्हें उद्दाम भावना पूर्ण के समयभिराम पुष्प-मुष्णों से अधिक कुछ नहीं रहने दिया होता। संतोष में, सामन्तवादी दृष्टिकोण ऐतिहासिकता प्रधान है।

भक्तिवादी दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण का दूसरा स्वयं भक्तिवादी दृष्टिकोण कहा जा सकता है। डाक्टर सैतकुमारी के कथनानुसार 'भक्ति-युग की सभी आराधनों में नारी के दो रूप दिखाई पड़ते हैं सामान्य तथा विशेष। प्रथम रूप लौकिक तथा यथार्थ है और द्वितीय आत्मिक पारलौकिक तथा आदर्श। प्रथम रूप में नारी निम्ननीय है दुर्गुणों की जान है माया का प्रतीक है और द्वितीय रूप में वह साह्य तथा आदरणीय है।<sup>१</sup> यह तथ्य अपने आप में इतना स्पष्ट है कि इस तथ्य के प्रकाश में नारी विषयक भक्तिवादी दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी-महाकाव्यों के भक्तिवादी दृष्टिकोण के सम्बन्ध में कुछ बातें और विशेष-रूप से उल्लेखनीय हैं। भक्तिवादी दृष्टिकोण रखनेवाले कवियों ने नारी के कामिनी स्वरूप को भले ही कोरा हो पर वे नारी के मातृ स्वरूप को बलनीय ही मानते हैं। पाठिपत्र जब उनके लिए पूजनीय रहा है और नारी के सार्वत्रिक सौंदर्य की ध्वजमा में भी वे संवत् रहे हैं। भक्तिवादी दृष्टिकोण की विरति-प्रियता नारी निम्न होकर भी हृदयहीन नहीं है और नारी-जीवन के आदर्श स्वरूप की सार्वत्रिक ध्वजमा कर उन्होंने अनुकरणीय नारी-पार्श्वों का सुजन किया है। भक्तिवादी दृष्टिकोण ने नारी की सुन्दरता को सुन्दर बना कर मन बहुभाष की वस्तु ही नहीं चरित्र-परिष्कार की वस्तु बनाया है। संतोष में भक्तिवादी दृष्टिकोण आदर्श प्रधान होकर भी एकांगिकतापूर्ण है।

मानवतावादी दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण का तृतीय स्वयं मानवतावादी है। यह दृष्टिकोण नारी की सहृदयता की तुला पर तोलता है। मानवतावादी कवि 'यत्वं शिवं सुखरम्' का उपासक है। उसका बल्य न तो सार्वत्रिक का धर्म है, न सार्वत्रिक का धर्म और न वैज्ञानिक का। उसका मित्र सर्वत्र आत्म-अनुमोदित भी नहीं होता। उसका सुखरम् मननाभिराम ही नहीं भावामिषम भी होता है। अतः मानवतावादी दृष्टिकोण के अंतर्गत नारी के प्रति एकतरफा शिकी का अभाव है और इसीलिए मानवतावादी कवि कुटिल कहेई को भी 'स्ताभि' की वस्तु न बनाकर 'छी बार बग'<sup>२</sup> की अभिकारिणी मानता है। वह दृष्टिकोण पारसी समझी आनेवाली नारियों में भी रूप-मीर्य एवं भाव-मीर्य दोनों ही पाता है 'पवन मरा

काव्य' इसका उदाहरण है। यह दृष्टिकोण काव्य की उपेक्षितार्थों का उद्धारक, सामिक्षता शक्तियों के सामक्ष्य का प्रक्षालक एवम् नारी विषयक सहृदयता का विस्तारक है। संक्षेप में मानवतावादी दृष्टिकोण सहृदयता प्रधान अधिक है।

सुधारवादी दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण का चतुर्थ स्वरूप सुधारवादी है। यह दृष्टिकोण नारी के सुधारवादी स्वरूप का ध्येयक है और सुधारार्थ के अनुमानित है। इस दृष्टिकोण के संतर्गत जहाँ एक ओर नारी का 'रोमी बृद्ध जनोपकारनिष्ठा'<sup>४</sup> स्वरूप उसे लक्ष्य हुआ विश्व प्रेमानुरक्त'<sup>५</sup> के रूप में उपस्थित करता है वहीं दूसरी ओर वह अपने पाँवों पर खड़ी होकर गान की लय में काठने-बुनने की बात भी करती है।<sup>६</sup> इतना ही नहीं इस सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण वह 'आरी के दो टुकड़ों'<sup>७</sup> से भी बर्बाद हो उठती है। यह दृष्टिकोण सर्वत्र नवीनता को स्वीकार नहीं करता। सुधारवादी दृष्टिकोण संस्कारी कांटा है जो नयी नवीनता के पक्के की ओर धुन जाता है और कभी परम्परा के पक्के की ओर। पर उसकी स्थिति सबसे दोनों के मध्य ही बनी रहती है। समय बढ़ा निज्ञा और सहृदयता सुधारवादी दृष्टिकोण की सम्पत्ति है। इसीलिए सुधारवादी दृष्टिकोण न आदर्श-समन्वित भावुकता का प्राधान्य है।

समानतावादी दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण का पंचम स्वरूप समानतावादी है। भ्रम की उदम विचारबाध से प्रभावित होकर यह दृष्टिकोण नारी की समभाव से प्राप्त-प्रतिष्ठा करता है और उसकी हीनता के सिद्धान्त में विश्वास नहीं रखता। इसके संतर्गत नारी अपने तप-पूत स्वरूप में इतिगोचर होती है और यह सर्व मंगला नारी अपने विक्रम साधो को अवलम्ब्य प्रशान कर टिप्पणी करने का अवसर<sup>८</sup> ही नहीं देती है। समानतावादी दृष्टिकोण में हृदय एवम् बुद्धि का समन्वय है। इसीलिए समानतावादी नारी विषयक बारम्बार नारी को न तो हृदयहीन बना कर हिर पर चढ़ाए रखना चाहती है और न उसे केवल भावुकता की पिटाई बनाकर अधुनिमनितानस्त्रा में अकर्मण्य बना कर छोड़ देना चाहती है। हृदय-तत्त्व और बुद्धि तत्त्व के समन्वित स्वरूप में ही समानतावादी दृष्टिकोण की मज्जा है। अतः इस दृष्टिकोण में विवेक-समन्वित भावना का प्राधान्य है।

कमतावादी दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों का नारी विषयक यह दृष्टिकोण कमता वादी कहा जा सकता है। यह दृष्टिकोण जीवन के माध्यम द्वारा नारी की स्वरूप

४ प्रियप्रवात ४। २।

५ वही १७। ३४।

६ सादित २०। २२६।

७ साकेत-संत २०। १२०।

८ कानावली २०। २६०।

व्यंजना करता दृष्टिकोण होता है। कहीं यह अपने परतुणरक रूप में दिखाई देता है और कहीं तथ्यपरक स्वरूप में। प्रतिकारमयता इस दृष्टिकोण की प्रधान विशेषता है और इसीलिए कलावादी दृष्टिकोण के अंतर्गत नारी की बिलंबी अंशमें भी 'तर्क-बाम'<sup>१</sup> के रूप में व्यक्त होती है और उसके पारस रूप<sup>२</sup> की चर्चा भी होती है। यह दृष्टिकोण जहाँ एक ओर नारी के प्रेममय स्वरूप की व्यंजना करता है, वहीं दूसरी ओर उसके जन-कल्याणी स्वरूप पर भी प्रकाश डालता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि यह दृष्टिकोण ज्ञान और विज्ञान को भी कला के रूप में देखता है और कला के रूप में ही व्यक्त भी करता है। संक्षेप में, कलावादी दृष्टिकोण कोसल प्रमान है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण—हिन्दी-महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण का सप्तम स्वरूप मनोवैज्ञानिक है। यह दृष्टिकोण मनोविज्ञान के आधार पर नारी का मनोविश्लेषण करते हुए ही उसके सत-असत् स्वरूप की व्यंजना करता है। नारी के पूर्ण चरित्र दोनों ही स्वरूपों की व्यंजना करते समय यह दृष्टिकोण सम्पूर्ण रूपेण मनोवैज्ञानिक ही रहता है। ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत मनोविश्लेषण सास्त्र के आधार भूत सिद्धान्तों का निर्वाह भी सम्भव रूप से नहीं हो पाया है। पर तुलनात्मक मनोविज्ञान में 'नारीहीनता' की जिस परम्परागत चारणा को गिण्या सिद्ध किया है, उससे यह दृष्टिकोण भी प्रभावित है। नारी में संवेदात्मक तीव्रता भावना-कर्म का उग्र क एवम् हीनता ए वि का अभाव जहाँ कहीं भी दृष्टिकोण होता है, वह इस मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की ही देन है।

हिन्दी-महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण के अंतर्गत प्रायः उक्त दृष्टिकोण ही प्रधानतः पाए जाते हैं। प्रत्येक महाकाव्य में एकाधिक दृष्टिकोण का समावेश है। कुछ महाकाव्यों में दृष्टिकोण विशेष को सामने रख कर ही नारी का चरित्रांकन किया गया है और कुछ महाकाव्यों में सहज रूप से ही कुछ दृष्टिकोण व्यंजित हो उठे हैं। साथ ही यह निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है हिन्दी-महाकाव्यों का नारी विषयक दृष्टिकोण विस्तीर्ण होता जमा नया है। यह मानसंकुल न रह कर क्रमशः भाव-विस्तार पाता रहा है।

### नारी-चित्रण का वैदिक पक्ष विशेषताएँ तथा सीमाएँ

हिन्दी-महाकाव्यकारों के नारी विषयक उद्धारों एवम् महाकाव्यों के नारी विषयक दृष्टिकोण पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी-महाकाव्यों की वैदिक भूमि नारी-चित्रण की दृष्टि से अपनी कुछ विशेषताएँ रखती है और उसकी

हम सीमाएँ भी हैं। जहाँ तक नारी-विषय के बौद्धिक पक्ष की विषयताओं का प्रश्न है वे प्रभावशाली निम्नलिखित हैं —

[१] नवीनता के आग्रह के बाव भी परम्परा का मोह पाया जाता है। सुखीय साधनात्मक ज्ञान का समुचित प्रयोग करते हुए, परम्परा की पृष्ठ-भूमि पर ही नवीनता की प्राप्ति-प्रविष्टा हुई है। अतः उसमें स्वाभाविकता का बोध नहीं माने पाया है।

[२] युग-वाणी से प्रभावित होते रहने के कारण कालानुसरण की अहमता दृष्टिगोचर होती है।

[३] सङ्कटवशात् संयम एवम् निष्ठा का सम्भव होने के कारण यह पक्ष न तो एकदम आनुकूल्यवादी ही हो पाया है और न एकदम युष्मत्तावादी ही।

[४] कथानक कठिनाईएँ कदा उपधान और सामान्य विचारधारा का उपयोग करने के कारण जहाँ यह पक्ष सरल हो जाता है, वहीं इनमें कला विपरीत अभिव्यंजना शक्ति के साथ सुखीय-सम्पन्नता भी विकसित होती चली गई है।

[५] आत्मानुसरण के साथ ही उदात्त मानवता का सम्यक उपयोग रूप जल की भाँति इस पक्ष को सीमा-संकुल न रख कर सखित-प्रवाह की तरह निरंतर जाने बहाता रहा है। नवीनता के उद्गम में भी यह बुद्धि-बारा संस्कार एवम् संस्कृति के उभय धर्मों का प्रतिबन्ध स्वीकार करती रही है और इसीलिए अपने संहारक स्वरूप में दृष्टिगोचर नहीं होती।

[६] विचारधारा में कमिक युवाव भी दृष्टिगोचर होता है। अतः वैचारिक विरोध भी अपने विषयवा स्वरूप में व्यक्त न होकर, विचार-स्वातन्त्र्य के रूप में परिलक्षित होता है।

[७] परिवर्तित दृष्टिकोण भी परम्पराओं की तरह अनिश्चितता के अरुण में घो नहीं गया है। वह सुनिश्चित आदर्श मार्ग के समानान्तर चल कर भी अंत में सीमा विहीन पर स्वयं को इस मार्ग से मिला देता है। वातिव्रत मानना एक ऐसा चीज है जहाँ जाकर सभी नवीनतावादी मार्ग इस आदर्श मार्ग से मिल जाते हैं।

[८] बुद्धिबलित होकर भी कमलकारवादिना अतीतिकता या निम्नावरणता अधिक दूर तक चल नहीं पाई है और उसे अपने अस्तित्व के लिए स्वाभाविकता की धारण ही लेनी पड़ी है। यह स्वाभाविकता अपने मूल स्वरूप में मानवता है।

[९] यह पक्ष प्रभावशाली सांत्विक एवम् राज्य स्वरूप का ही प्रतिपादन करता चला आया है। आपस स्वरूप का प्रतिपादन नाम मान को हुआ है और इस सामग्री कृति को भी या तो परिचायक या निर्णय दान दिया गया है या उसे उपेक्षित-ता छोड़ दिया गया है।

[१०] सख् और असख् दोनों ही रूपों को उपस्थित करने के बाद भी कभी सख् को पराजित नहीं होने दिया गया है और न असख् कभी इतना सिर ही उठाने पाया है कि वह सख् की मर्यादा को भङ्गना पड़नासे ।

[११] भारतीयता को अशुभ्य रखा गया है और विजातीय विचारधारा को भी भारतीयता के रंग में रंग देने का प्रयास इष्टिगोचर होता है ।

बौद्धिक सीमाएं :—उक्त बौद्धिक विशेषताओं के होते हुए, नारी-चित्रण की बौद्धिक पक्ष की अपनी कुछ सीमाएं भी हैं जिसका अतिक्रमण न कर पाने के कारण नारी-चित्रण में कुछ दोष जगना कमजोरिया भी इष्टिगोचर होती है । इस सीमा को निर्धारित करनेवाले तत्त्वों में धर्म समाज संभविवासा और अज्ञात विशेषरूप से उत्प्रेक्षणीय है । हिन्दी के अधिकांश महाकाव्यों की कथावस्तु वर्मानुमोदित है और अधिकांश नारी-प्राण कम प्राण जनता के मन में एक मुनिविषय स्वरूप ग्रहण कर चुके हैं । ऐसी स्थिति में एक सीमा तक ही उनका चित्रण सम्भव है । सामाजिक मर्यादाएं भी चित्रण-स्वतन्त्रता पर संकुच का काम करते हुए कुछ सीमाएं निर्धारित कर देती हैं । कुछ संस्कारजन्म संभविवासा भी अस्वामाधिक्यता के पोषक बन कर सामने आते हैं । भाग्यवादिता शकुनप्रियता आदि के कारण भी कुछ अस्वामाधिक्य व्यवहारा हो जाती है किन्तु यह स्वरूप इतना सामान्य हो चुका है कि भारतीय इष्टिकोण से उसे अस्वामाधिक्य मानना कठिन हो जाता है । अज्ञातवश अपनाए गए परम्परा से चले आनेवाले कुछ रङ्ग विचारों के कारण भी नारी-चित्रण का बौद्धिक पक्ष कुर्बान हो उठता है । नारी स्वयं को 'अबला' चोपित करने की आशी हा गई है । यह सरय है कि कवि प्रान्तिदर्शी होता है किन्तु गिरकुल नहीं । अतः उसे इन सीमाओं का अनिच्छापूर्वक भी पालन करना पड़ता है और इसीलिए हिन्दी-महाकाव्यों के बौद्धिक पक्ष के अंतर्मत, इन सीमा रेखाओं द्वारा नारी-चित्रण में कहीं-कहीं कुछ वैधिस्य भी आ गया है ।

## सप्तम अध्याय

### हिन्दी-महाकाव्यों की तुलनात्मक भूमि

- नाट्य-शास्त्रों का तुलनात्मक विवेचन—
  - हिन्दी-महाकाव्यों की जीवन-विरहितियाँ
  - हिन्दी-महाकाव्यों की जीवन-संगितियाँ
  - हिन्दी-महाकाव्यों की प्रेमिकाएँ
  - हिन्दी-महाकाव्यों की माताएँ
- हिन्दी-महाकाव्यकारों के नाट्य विषयक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन



**हि**न्दी-महाकाव्यों के गारी पात्रों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते समय भाव-साम्य सम्बन्ध-साम्य या स्वरूप-साम्य के आधार पर गारी के चार स्वरूप प्रचलित दृष्टिमात्र होते हैं—बिरहूषी-स्वरूप प्रेमिका-स्वरूप मातृ-स्वरूप एवम् जीवनसंगिनी-स्वरूप । सामान्यतः संयोग और वियोग गारी-जीवन के साथ सम्बन्ध रखते हैं । प्रिय का संयोग-भाव प्राप्त कर वह या तो प्रेमिका के रूप में दृष्टिमात्र होती है अथवा प्रेमजन्य परिस्थितियाँ उसे जीवन-संगिनी के रूप में परिवर्तित कर देती हैं । मातृत्व उसके जीवन की सार्थकता है ।

अपने वियोग-काल में साधारणतः मानसिक दुःख होने के कारण भाव-धनी गारियाँ अमृदुबलितारत्ना में दृष्टिमात्र होती हैं और बिरहजन्य पीड़ा के कारण उन्हें वियोग की एकदम बसताओं से घुमरना पड़ता है । परिस्थिति अथवा वातावरणबल इस वियोग की भाषा में बोल हो सकता है, पर उसका वियोग, वियोग ही रहता है तथा यह विमोक्षारत्ना उसे बिरहूषी के रूप में उपस्थित कर देती है ।

प्रेम गारी के मानसिक दुःख की साधना और जीवन की साधकता है । अनुप्राण के क्षण उपस्थित होते ही गारी प्रेम-बंधन में पड़ जाती है और उसका मानसिक दुःख, प्रेम के रंग से सदाशर होकर उस एक प्रेमिका के रूप में परिचित कर देता है । प्रेमजन्य परिस्थितियाँ अनुकूल होने पर उसके जीवन की चारा को परिवर्तित कर देती हैं और वह जीवन-संगिनी के रूप में उपस्थित हो जाती है, किन्तु अतिकूल परिस्थितियों कभी-कभी उस केवल प्रेमिका ही रहती हैं ।

गारी का जीवनसंगिनी-स्वरूप सामाजिक आधारों और गर-गारी के पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित रहता है । जीवन-शाखा में पत्नी की दृष्टि से उसके कुछ कर्तव्य होते हैं और कुछ अधिकार भी । अपने कर्तव्य-दास्य में वह गारी का जीवनसंगिनी



स्वरूप उसके व्यक्तित्व को विधिष्टता प्रदान करता है और उसके नीचे स्वभाव का निष्पन्न करता है।

मातृत्व मारी के जीवन की सार्वकता है। उसके हृदय का संपूर्ण वात्सल्य उसके हृदय की संपूर्ण महिमा इसी मातृ स्वरूप के अंतर्गत दृष्टिगोचर होती है। वात्सल्य अनुकूल परिस्थितियों में अपने उपयोगी स्वरूप में दृष्टिगोचर होता है और प्रतिकूल परिस्थितियों के आ जाने पर अपने वियोगी स्वरूप में परिलक्षित हो उठता है। वियोग-काल में मारी के मातृ हृदय की महिमा अपनी संपूर्ण परिमा के साथ जिस उदात्त रूप में प्रकट होती है वह अनुपम है।

मारी के उक्त स्वरूपों की व्यंजना हिन्दी-महाकाव्यों में प्रायः सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। अतः मारी के उक्त स्वरूपों पर विचार करते समय उसका जो स्वरूप प्रधान है उसी के अंतर्गत हम हिन्दी-महाकाव्यों के मारी पात्रों पर सुमनात्मक दृष्टि से विचार करेंगे। सुमनात्मक दृष्टि का अर्थ किसी मारी पात्र की लघुता या महता प्रदर्शित करना नहीं अपितु उस परिस्थितिजन्य भाव-साम्य या असाम्य पर विचार करना है जिसके अंतर्गत अपने स्वरूप विक्षेप में हिन्दी-महाकाव्यों के मारी पात्रों को बुझना पड़ा है।

### हिन्दी-महाकाव्यों की विरहिणियाँ

प्रिय-वियोग मारी का वियोग-काल है और विरह-विह्वलता इसका परिणाम है। यह वियोग चिर वियोग भी हो सकता है और काल-विशेष तक का वियोग भी रहता है। अतः वियोग-काल के आधार पर मारी या तो चिर वियोगिनी दृष्टिगोचर होती है या केवल वियोगिनी। हिन्दी-महाकाव्यों में चिरवियोगिनियों के रूप में दिखाई देनेवाले केवल दो ही मारी पात्र हैं। एक है राधा और दूसरी है यशोधरा। वियोगियों के रूप में प्रायः सभी नायिकाएँ या उपनायिकाएँ आ जाती हैं किन्तु इनमें नाम मरी एवम् उमिमा का वियोग अपनी कुछ विधिष्टताएँ रखता है। ऐसी स्थिति में राधा यशोधरा नागमत्री और उमिमा ही प्रधानतः अपने विरहिणी स्वरूप में हमारे सामने आती हैं। राधा के भी दो रूप हैं—प्रियप्रवास की राधा और वृष्णासन की राधा। वृष्णासन के अंतर्गत राधा की विरह-व्यंजना नाम मात्र की हुई है। अतः विरहिणी के अंतर्गत हम केवल प्रियप्रवास की राधा को ही ले सकते हैं।

हिन्दी-महाकाव्यों की इन चार विरहिणियों में दो चिर विरहिणियाँ हैं और दो केवल विरहिणियाँ। चारों प्रिय की प्रेम-पात्रियाँ रही हैं चारों को प्रिय का प्रेम प्राप्त हुआ है। अतः प्रिय के बिछोह के कारण चारों के हृदय पर वन्यपाठ-सा होता है। चारों के साथ उपयोग-काल की सुमधुर स्मृतियाँ हैं और इसीलिए प्रिय की

अनुपस्थिति में वे स्मृतियाँ उन्हें साजती रहती हैं। दिन रात भाते-भाते हैं ऋतु-परिवर्तन होता है प्रकृति का सुपमावासी स्वरूप एवम् नैसर्गिक उपकरण नेत्रों के भावे बौड़ भाते हैं पर चारों को सब धीके से जान पड़ते हैं। इनमें से तीन पत्नियाँ हैं एक प्रेमिका है। नागमती उर्मिला एवम् यशोधरा के पास पत्नीत्व का संबन्ध भी है किन्तु राधा के पास केवल प्रेम-सम्बन्ध का संबन्ध है। तीन के समस्त विरह-कास की अनिश्चितता है, एक के समस्त अश्वि का गुरु भार है। नागमती एवम् उर्मिला का विरहिणी-वेद प्रिय-प्राप्ति के साथ ही समाप्त हो जाता है किन्तु राधा और यशोधरा फिर विरहिणियाँ ही रह जाती हैं। यशोधरा रघुब-राहुल को पाकर हृषिता भी हो जाती है।<sup>१</sup> किन्तु राधा की मनोव्यथा स्वाम-विरह-सतप्तमनों को छाँटना प्रदान करते हुए भी गालों पर भूँव-भूँव टपकती रहती है और व्यथा के इस नीर को भी उसे 'मानस का नीर'<sup>२</sup> ही बताना पड़ता है। विरहावस्था की दृष्टि से नागमती-उर्मिला और राधा-यशोधरा का विरहिणी स्वरूप तुलनीय है।

सबे प्रथम नागमती एवम् उर्मिला के विरहिणी स्वरूप पर विचार करना सलम होना क्योंकि दोनों ही अश्वि विशेष तक विरहिणियाँ रहती हैं। उर्मिला के समस्त अश्वि स्पष्ट है और वह जानती है कि उसे चौबूह बपों तक यह विरह-सताप सहन करना है। उर पर अश्वि-दिला का गुरु भार रख कर वह हय-जलवार से इस अश्वि-दिला को तिल-तिल काटती रहती है।<sup>३</sup> नागमती के समस्त अश्वि व्यस्पष्ट है। उर्मिला के स्वामी कर्तव्य-पासन के निमित्त भाते हैं मगर नागमती के स्वामी मारी के मोह में मारी का त्याग कर विरह गये हैं। अतः विरह-सताप के साथ सौत-सताप का सटका भी बना रहता है। उर्मिला तो आठ पहर चौंछत बड़ी स्वामी का ही ध्यान कर सकती है किन्तु नागमती के सामने 'कन्त को लुभा कर संयम करनेवाली'<sup>४</sup> परमावती का भी चिन्म रहता है। प्रिय की प्रतीक्षा करते समय भी रह रह कर उसके मन में यही खटका लया रहता है कि सायब मेरा प्रियतम मारी के बलीभूत हो गया है और उसी ने मेरा प्रियतम मुझसे छीन लिया है।<sup>५</sup> उर्मिला सामने इन प्रकार का कोई खटका नहीं है। इस विषमता के कारण ही नागमती को अपना संदेह मेवत समय प्रिय के साथ-साथ परमावती को भी संदेह भेजना पड़ता है और प्रिय-वर्जन की याचना के साथ उसे यह सींग-ब भी खानी पड़ती है कि—

१ सिद्धार्थ पृ० ५०१।

४ नागमती प्रजापती पृ० १२६।

२ प्रियप्रवक्त पृ० १७। ४०।

५. बही पृ १२१।

३ साठेठ पृ० ६४०।

धबहुँनया कय कय जिउ केरा । मोहि बियाज कंत हैइ मेरा ॥

मोहि भोग सौं काय न बारी । सोह बीठि के बाहुन हारी ॥<sup>१</sup>

उक्त चित्रणकारों के भाव उमिता एवम् नागमती की वियोगावस्था अभिव्यक्तित ही है। नागमती प्रिय के वियोग में मानसी हो उठती है। संपूर्ण सुखों को भूल जाती है। सेज नागिन की तरह उसने सगती है। बिरह बीपक की बाती की तरह जलाता रहता है। अर्ध रात्रि को भी वह जम्पुपात करती भटकती ही रहती है और इस बिरह ने उसकी ऐसी अवस्था कर दी है कि वह अपनी व्याधा व्यक्त करने में भी स्वयं को असमर्थ अनुभव करती है—

हाइ मए सब बिगरी, लखें नईं सब तासि ।

रोंब रोंब तें दुनि उठे, कहाँ बिधा कैहि नासि ?<sup>२</sup>

उमिता का भी यही हाल है। उसकी सेज भी कांटों की है। रोम-रोम से स्वेद टपकता है। तात्काल से बिरह की आग के और अधिक चपक उठने का अवेशा रहता है। जबकि पित्त-पीड़ा-सी मान पड़ती है। यह बिरह-ताप इतना बढ़ जाता है कि—

हु विधों को भी प्राज इत तनु स्वर्ग का ताप

उठती है मे भाव सी मिरकर अपने धाप ॥<sup>३</sup>

इस प्रकार प्रिय-वियोग नागमती एवम् उमिता दोनों ही के लिए बड़ायी है। दोनों की स्थिति इस बिरह-काय में समान एक बीवी है। शरद-चन्द्रिका नागमती को भी जलाती है<sup>४</sup> और राजासी कपी रात उमिता को भी तफ मार कर बांधू पीने के लिए साधार करती है।<sup>५</sup> प्रिय के आगमन के साथ ही नागमती की 'बाटी' परमवित ही नहीं हो उठती इस पुत्रबापी में सोन के फूल भी जल उठते हैं<sup>६</sup> और प्रिय-प्राप्ति के साथ 'उमिता-ध्वं' भी सम से भर उठता है।<sup>७</sup> वियोग संयोग में परिणित होकर हिन्दी-महाकाव्यों की इन दोनों बिरहिणियों को संयोगिनियों में परिचित कर देता है।

राधा और यक्षोबरा बिर बिरहिणियाँ हैं। एक प्रेमिका है, बिर कुमारी है। ब्रह्मरी पत्नी है माता है। प्रथम के प्रिय अपने 'बाह नतव्य' के पासनाय बिलग हुए हैं और द्वितीय के पति निर्बल-अवस्था से महाभिनिक्रमण करते हैं। एक ने अपना

१. आदसी प्र बावसी पु० १६० ।

७. वही पु० ११६ ।

८. साकेत पु० २६२ ।

९. आदसी प्र बावसी पु० ११३ ।

१०. साकेत पु० २८२ ।

११. आदसी प्र बावसी पु० १६१ ।

१२. साकेत पु० ४६३ ।

मैत्री खोया है, दूसरी मे अपना पति । दोनों के लिए प्रिय-संयोग दुर्लभ है । एक यह सोच कर कि जिह्वा, माया सबस सबका नेत्र खरीदी होने के कारण अपने प्राकृतिक बर्णों को त्याग न पावेँगे और सर की सातसाँईं समित न होनेकी बात उन्हें प्रतिदिन सात्विकी मूर्ति में रंग देती है<sup>१३</sup> और दूसरी दिवस, रणनी विपुल पद्म एवम् बहुमास व्यतीत होने के बाद तनुज राहुम को पाकर हृत् क्षित होती है ।<sup>१४</sup> प्रथम के पास ब्रह्म के नाम पर सेवा है और दूसरी के पास अपना पुत्र । प्रथम को प्रिय की आज्ञा न मानते हुए विश्व के काम में जाना है और अपने नौभार्य-कृत को मग में पूर्वता प्रदान करता है ।<sup>१५</sup> दूसरी को अपने मातृत्व भार का निर्वाह करना है । परिस्थितियों की इन विपरीतताओं के बाव भी दोनों नारी ॥ मातृक हृदय हैं चिरविबोधिनिर्वा । बात दोनों का चिरहिनी-भक्त हाहाकार है ।

ब्रह्म का यही हाहाकार जहाँ राधा को पवन को अपनी सर्वसमाहिका बनाने के लिए बाध करती है वहीं यशोधरा भी हंस द्वारा अपना सर्वेष्ट प्रिय तक पहुँचाने इष्टियोधर होती है । दोनों के सर्वेष्ट जहाँ स्वाध्याय से पूरित हैं वहीं दोनों अपने-अपने सर्वेष्टवाहकों को राह में पड़नेवाले दीन-दुष्टी-जनों के प्रति उदारता व्यक्त करने की समाह देना भी नहीं भूलती हैं । स्वयं पीड़ित होने के कारण पर पीड़ा के प्रति उनके मन में सहानुभूति है । प्रिय-विषय के कारण जहाँ राधा तजरा नबना छानना एवम् बेचना-मँतल जान चकती है<sup>१६</sup> वहीं यशोधरा भी जिम्मा सरद-आठप-तापित बैठती सी इष्टियोधर होती है ।<sup>१७</sup> एक ओर राधा जहाँ अपने अधु-विमलित स्वरूप को दयाम तक पहुँचाने के लिए पवन से यों कहती है—

लाके कुले कमल दस को दयाम के लापने ही ।  
बोझ-बोझ विपुल बस में व्यथ हो हो-बुझाना ।  
यों देना ऐ जनिनि जलता एक र्धमोज नैषा ।  
जातों को हो बिरह विपुल वारि में बोरती है ॥<sup>१८</sup>

वहीं यशोधरा भी अपने अधुपूरित स्वरूप को प्रिय तक पहुँचाने के लिए हंस को यही कहती है—

जो हैलें तो दस विषय की बौध से बौध, प्यारे,  
धर्मोर्जों को, गृह्य जब मैं बीमरता से बुझोग,

१३ प्रियप्रदात १६ । १०१ ।

१६ प्रियप्रदात ६ । २६ ।

१४ तिर्यार्थ पु० २०१ ।

१७ तिर्यार्थ प० १४२ ।

१५ प्रियप्रदात १६ । ११२ ।

१८ प्रियप्रदात ६ । ७९ ।

ये भी जानें कि मुझ दुःख के बारि से भी रही हूँ  
बड़े ठामे चरन करना दुखितों की किया है।<sup>११</sup>

राधा और यशोधरा के संवेद में, स्वपीड़ा-निवेद में जहाँ साम्य है वहीं प्राप्तेच्छा में असाम्य भी लक्षित होता है। राधा प्रिय की चरण-भुक्ति मुकुल स्पर्श, ममत्त तन की बाँध संगरागाविकों के पठित कलाहि को प्राप्त कर भी छटुछ हो जाता चाहती है और यदि यह भी संभव न हो सके तो वह अपनी संवेदनाहिका से यही निनव करती है कि—

पूरी होवें न यदि मुझसे धन्य बातें हमारी।  
तो तू मेरी विनय इतनी मान ले खी बनी जा।  
तू के प्यारे कमल पग लो प्यार के साथ धा जा।  
भी जाऊँगी हृदय तल में मैं तुझी को लगा के।<sup>१२</sup>

किन्तु यशोधरा की प्राप्तेच्छा कुछ बड़ी है। प्रिय प्राप्ति के लिए वह अपने संवेदनाहक हृम को जहाँ जाने अथवा रोने के लिए प्रेरित करती है वहीं वह उससे कुछ छसावा भी करवाना चाहती है। वह सोचती है कि यदि हंस का छसावा चपल हो गया और प्रिय हंस की पीड़ा हरन करने के लिए उसे बाँध देने के लिए, बीरे-बीरे उठ खड़े हों और हंस भीम उसकी दिना की बार चढ़ने लगे और हंस का पीछा करते करते प्रिय उसके पास तक आ पहुँचें। इस कार्य-संपादन का जो पुरस्कार वह हंस को देना चाहती है, वह भी राजसी है, साव्य बंधीय राजकुम-अधू की गरिमा के अनुरूप है क्योंकि हेम की बालियों में मोती देने का आस्वादन किसी सामान्य नारी के बच के बाह्य की बात है। पर इन पुरस्कार की या सही अबों में उत्क्रोश की शर्य नहीं है कि—

पीछे-पीछे हवित सपके मित्र आगे बढ़े तु,  
ऐसे ही जो मम सदन को नाम की खींच ला तु,  
तो तू मेरा परम प्रिय हो, पुण्य हो, तू हितु हो,  
भीती हूँगी बिह्व, मुझको हेम की बालियों में।<sup>१३</sup>

इन्ना ही नहीं दूख-समुह को बुझा कर यशोधरा प्रिय की संवेद भिन्नत समय यह भी कहती है कि 'शुभाभोषित सुहृ-स्याग से आपको यदि बड़ा साम हुआ हो तो मुझे और कुछ सुन नहीं चाहिए, मुझे मेरा अर्धांगिणि बर्ष माय दो।'<sup>१४</sup> परन्तु राधा के

११ तिदायं पृ० २६३।

२१ तिदायं पृ० २७०। २२।

२० प्रियप्रवात १। ८२।

२२ वही पृ० २७६।

लिए वर्ष की भाग की आकाश की आकाश कुमुदक है। यलोधरा को तो एक बार पुनः प्रिय के दर्शन-भास भी हो जाते हैं और उनके 'हृग विष्णु ज्योति से विस्तार हो अन्य मिहीन' हो जाते हैं। किन्तु राधा तो क्या ब्रह्म के माय में भी प्रिय-दर्शन की 'यह भटिका और ने बार' नहीं जाने पाए। सेवा निरत होकर अपनी भावनाओं को पचाते हुए, प्रिय कामसन का कर्म करते हुए, राधा के हृदय बारि बारि बहाते रहे। यलोधरा प्रिय को एक बार पुनः पाकर भी पकड़ कर न रख सकी और राधा एक बार प्रिय को छोड़कर पुनः प्राप्त न कर सकी। आकस्मिक विनोद दोनों के लिए चिर विनोद बन गया और बिछोहकाम्य चिरहू उन्हें हिन्दी-महाकाव्यों की चिर निरहिमियाँ बना छोड़ गया है।

### हिन्दी-महाकाव्यों की जीवन-संनिधियाँ

सामान्यतः पत्नी ही जीवन-संनिधि की पर्यायवाची समझी जाती है। इस दृष्टि से विचार किया जाने तो हिन्दी-महाकाव्यों की अधिकांश नायिकाएँ उपनायिकाएँ एवम् अन्य मारी पात्र जीवन-संनिधियों के घटगत भा जाते हैं। इनमें से अधिकांश पति पराप्त पतिनियाँ हैं। बीस मर्यादा स्नेह उनका पत्र है। अधिकांश प्रेम-परिठाएँ हैं। पति उनके लिए पूर्य है देवता सुख्य है। पति के कारण ही उनका मोद-गंभीर सार्थक है और पति के पीछे ही उनका साज शृङ्गार है। पति के अनन्य प्रेम की अधिरागिनियाँ होकर ही उनमें मानापमान ध्वंस-विनोद आदि भावनाएँ दृष्टिगोचर हो जाती हैं। प्रिय विनोद उन्हें विचलित कर देता है। पति के प्रेम की एकाधिकारिणी बनने का मोह उन्हें कभी-कभी सहाय्यी के साथ बलह-व्यापार में भी रत कर बैठता है। नाम वैदम्य के अतिरिक्त त्राप सभी पलियाँ पलियाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं। उनका पुनः स्वार्थ-साधन-रत स्वरूप हिन्दी-महाकाव्यों में बही-बढ़ी ही परिलक्षित होता है अन्यथा वे सभी सुन्दरियाँ हैं प्रेममयी हैं मारी-बम निर्वाहिकाएँ हैं स्वयम रत गम्य पतिव्रताएँ हैं। किन्तु 'हृदिषी सखि (सती मित्र) प्रिय पिप्या' जैसी कसौटी पर कसने पर हिन्दी-महाकाव्यों में जीवन-संनिधियों के रूप में सीता मौनी एवम् अरुण ही विरोध-उत्प्रेक्षणीय हैं। वास्तव में देखा जाये तो वे सीता ही हिन्दी-महाकाव्यों की जीवन-संनिधियों का प्रतिनिधित्व करने योग्य हैं। अतः प्रतिनिधि जीवन-संनिधियों के रूप में ही यहाँ उनके तुलनात्मक स्वरूप पर विचार करना समीचीन जान पड़ता है।

हिन्दी-महाकाव्यों के अंतर्गत सीता एवम् मांडवी का चरित्रांकन क्रमशः पाँच एवम् दो महाकाव्यों में हुआ है। प्रधान नायिका के रूप में सीता की चरित्र-सृष्टि रामचरित मानस एवम् राम चरित्रिका में हुई है। साकेत, सार्वत-संत तथा रावण महाकाव्य में सीता की चरित्र-सृष्टि उपनायिका के रूप में उपस्थित की गई है। अन्तिम दो महाकाव्यों एवम् रामचरित्रिका में सीता का जीवन-संगिनी स्वरूप नाम मात्र को व्यक्त हो पाया है। मानस एवम् साकेत की सीता अपने भाग में प्राथमिक है। अतः जीवन-संगिनी के रूप में तुलनात्मक दृष्टिकोण से विचार करने के लिए मानस एवम् साकेत की सीता ही अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होती है।

साकेत की मांडवी साकेत-संत की नायिका मांडवी से किसी प्रकार कम नहीं है। ऐसी स्थिति में तीन नारी पात्र पाँच नारी पात्रों में परिचित हो जाते हैं और तुलनात्मक दृष्टिकोण से विचार करते समय हमारे समक्ष मानस की सीता, साकेत की सीता साकेत की मांडवी साकेत संत की मांडवी और शृद्धा जीवन-संगिनियों के रूप में उपस्थित होती हैं।

साम्प्र की दृष्टि से पाँचों ही वर्गीकृत सुन्दरियाँ हैं। पाँचों ही आदर्श प्रमाण एवम् सार्विक स्वभाव वाली हैं। पाँचों पत्नी के उत्तरदायित्व को समझती हैं और पाँचों ही पति-परायणा हैं। मानस और साकेत की सीता वनवास के समय स्वेच्छा से पति का अनुसरण करती हैं और पति के साथ वनवास-ताप करना अपना कर्तव्य समझती हैं। मानस की सीता के अर्थों में 'नेह और नार्त'<sup>१</sup> पति के साथ ही सजे रहते हैं और साकेत की सीता भी 'धर्म चारिणी होने के लिए वन-विहारिणी'<sup>२</sup> होना चाहती है। साकेत और साकेत-संत की मांडवी भी पति-कर्तव्य-साधना में अपना योगदान देते दृष्टिगोचर होती हैं। शृद्धा भी अपने कर्तव्य-नाशन में किसी से पीछे नहीं है। इस प्रकार ये पाँचों ही नारियाँ जीवन-संगिनियाँ सिद्ध होती हैं।

मानस और साकेत की परिस्थितियाँ और संकट सीता को देखते हुए प्रायः एक जैसे हैं। मानस और साकेत की सीता के सामने पति के वनवास गमन की समस्या रहती है और इन उपस्थित संकट में उन्हें अपना निश्चय निर्धारित करना पड़ता है। पति-वध अनुसरण के मामले में उनके मन में दो मत नहीं उठते। उनकी पति ही पति है। विधानुसमन करने के लिए व्यग्र सीता वहाँ यह कहते दृष्टिगोचर होती है—

परा मृग परिजग नगर अनु चलकल विमल बुद्धम ।

नाम साथ धुर सख सम परमसास मुख मूल ॥<sup>३</sup>

<sup>१</sup> मानस धर्मोप्याकांड पृ० ४६५ ।      <sup>४</sup> मानस, धर्मोप्याकांड पृ० ४६६ ।

<sup>३</sup> साकेत पृ० १०४ ।

वहीं साकेत की सीता भी 'अवस में मंगल' की सोचते हुए पड़ी कहती है—

अवस होया फूल भरा कलजल होया फूल भरा ।  
मन होया कुछ भुल भरा मन होया कुछ भुल भरा ।  
अवस कुछ भी न हो वहाँ, तुम तो हो जो नहीं पहाँ ।  
मेरी यही मर्या मरि है बलि ही पत्नी की बलि है ।<sup>१</sup>

दोनों के मन में वन का भय भी भर नहीं कर पाता । वहीं मानस की सीता का यह आत्म-विश्वास है कि—

को प्रभु संव भोहि बितबनि हारा । सिध कबुहि भिनि ससक तिधारा ।<sup>२</sup>

वहीं साकेत की सीता भी यह कहती है—

माय न तुम भय हो हमको, भीत बुझी हैं हम सब को ।  
सतियों को पनि संव कहीं अपम महन क्या रहन कहीं ।<sup>३</sup>

परिस्वदि-साम्य भाव-साम्य और संवत्स-साम्य के होने हुए भी मानस की सीता और साकेत की सीता में व्यक्तित्व-साम्य नहीं है । दोनों में कुछ भ्रमभूत अंतर है । मानस की सीता का साम्यात्म स्वरूप मूक है । साकेत की सीता वा यह स्वस्म अपने आप में मुखरित है । मानस की सीता आदर्श-अनुप्राणित होकर जीवन के लिए अनुकरणीय है । साकेत की सीता आदर्श कपिणी होकर भी जीवन दाय अनुप्राणित है । एक मूक है दूसरी मुखर । प्रथम विनयशील अचिक है द्वितीय पतिघीन अचिक है । साकेत की सीता और के हामी न पलने और अपने पैरों पर खड़े रहने की बात<sup>४</sup> कह सकती है किन्तु मानस की सीता 'समम मुहु याता' को निहारते रहने के अतिरिक्त और कुछ कहती दृष्टियोग्य नहीं होती । साकेत की सीता 'पुरुषों को तो बस राजनीति की बातें' जैसे वाक्य कह कर चुटकी से खनकी है किन्तु मानस की सीता सम्भवतः स्वयं में भी चुटकी लेने का विचार नहीं कर सकती । संक्षेप में मानस की सीता बहुत आत्मावान विनयशीला जीवन-भयिनी है जबकि साकेत की सीता निष्ठावान पत्नी होकर भी, पुनरुत्पत्तिवा प्रिया है । प्रथम में विनय भाव वा प्राधाम्य है, द्वितीय में पुनरुत्पत्ति का ।

इसी प्रकार साकेत की मांडवी और साकेत-संग की मांडवी दोनों ही अपने जीवन-संमिती स्वरूप में और, संमीर, करीब्यगित कष्ट-महिम्नु एवम् संकट के समय

१. साकेत पृ० ११८, ११९ ।      ८. वही पृ० २२२ ।

२. मानस, छमोप्यारकीड पृ० ४९० ।      ९. वही पृ० २२९ ।

३. साकेत पृ० ११९ ।



पति की कठोर सारमा की समभागिनियाँ हैं। परिस्थितिजन्य संकट के उठ सके होने पर जहाँ साकेत की मांडवी यह कहती दृष्टिगोचर होती है—

जीवन में सुख-दुःख निरन्तर, धाते जाते चले हैं।

सुख तो सखी भोग लेते हैं दुःख भीर ही सहते हैं।<sup>१</sup>

वहीं साकेत-संत की मांडवी भी यही कहती है—

मध्य स्वर में वह बोली 'नाच, बटाऊँ' कसे दुःख में हाथ।<sup>११</sup>

दोनों दुःख में दुःख बटानेवाली और सुख में सुख की सम भागिनियाँ हैं। अपने क्षाम्यत्व स्वल्प में दोनों ही विनोदी और आनन्द-प्रमोद प्रियाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। दोनों ही सच्चे जहाँ में अर्धांगिनियाँ हैं अखि बाप वृत्त का पालन करनेवाली हैं। पर साकेत की मांडवी साकेत-संत की मांडवी से कहीं अधिक विदूषी जान पड़ती है। कहीं यह कता<sup>१२</sup> पर बातचीत करती दृष्टिगोचर होती है और कहीं बुढ़-कौशल रचना को कप्तहकारी<sup>१३</sup> सिद्ध करने का प्रयास करती है। साकेत की मांडवी सभाजी का ओज भी रखती है और उसकी बाजी में परिस्थितिजन्य संकट के उपस्थित हाथ ही सभाजी सुसप्त गरिमा भी दृष्टिगोचर होने लगती है।<sup>१४</sup> साकेत-संत की मांडवी भू पर तपस्वा बन कर, सुकुमारी नारी के रूप में जलतरित होती है<sup>१५</sup> और उनके चरित्र की गरिमा पति के सिध वर को ही स्वयं हिमासय<sup>१६</sup> बना देती है।

सीता और मांडवी की तरह भूखा भी एक सच्ची जीवन-संगिनी है किन्तु उसकी परिस्थितियाँ पूर्ण कथित जीवन-संगिनियों से सर्वथा भिन्न हैं। वह संपिनी पहले हुई है और जीवन-संगिनी बाद में। मनु के मिथिल्य जीवन को वह बलिखील बनाती है। मनु की पसायन प्रवृत्ति को वह कर्मरत करना चाहती है। जहाँ वह ब्या, माया भमरा, मञ्जुरिमा जगज्ज विस्मात और अपने स्वप्न हृदय को समर्पित कर देती है वहीं वह पति का अंबानुसरण भी नहीं करती। पद्मज्ज मनु को सुपथ की ओर मोड़ने का उनका प्रयास उसके 'सुधिव' स्वल्प को भी व्यर्थ करता है। वह भीषण एवांत स्वार्थ को नाश का कारण समझते हुए मनु से स्पष्ट शब्दों में कहती है—

घोरों को हँसते देखो मनु, हँसों और सुख पाओ

अपने सुख को विसृत करलो, सबको सुखी बनाओ।<sup>१७</sup>

१० साकेत पु० ३६७।

११ साकेत संत ४।८।

१२ साकेत पु० ४०३।

१३ वही पु० ४०३।

१४ वही पु० ४५६।

१५ साकेत संत पु० १६०।

१६ वही पु० २०३।

१७ कामायनी पु० १३२।

इतना ही नहीं शूद्रा को परित्याज्य-सा जीवन भी व्यतीत करना पड़ता है। फिर भी प्रिय की हित-कामना उसे व्यक्त करती रहती है और पुत्र-पुत्र्य मान देकर बरह पति की ओर में निकल पड़ती है। पति को पाली है तो पति पुनः उपचाप बस देते हैं। पर यज्ञ का साहस विचलित नहीं होता। उसके मन का प्रवाह मनुष्य है। पुत्र को पचाए हाथों लीप कर वह पति को पुनः ओझ सेती है और इतना समझूँ करने के बाद भी मनु को परचाप करके देस कर वह यही रहती है—  
प्रिय। सब तक हो इतने उत्सुक, देकर कोई क्रुप नहीं रंक। १४

मनु की विकसता को उसने अपने ससक्त हाथों से आरम्भ से अन्त तक पाना है। एक ओर जहाँ उसने सुहिषी का उत्तरदायित्व संभाला है, मातृत्व के कर्तव्य का पालन किया है वही दूसरी ओर वह पत्नी के जीवन-संगिनी के कर्तव्य-व्य से अन्त तक विचलित नहीं हुई है। वह राजकुल-बन्धु नहीं है, उसे राजाधिराज प्राप्त नहीं होता है उसे संघर्षों के गन्ध सूझने हुए केवल अपनी राह ही नहीं बनानी पड़ती बलवत्ता के बिना पति का भी हाथ पालना पड़ता है, परित्याज्य होने का अनिश्चय भी ग्रहण करना पड़ता है पति के लिए पुत्र का भी परित्याज्य करना पड़ता है और साधना की मंजिल पर निकल साथी को 'ठिठोली' करने से रोक्ना भी पड़ता है।

छीटा और मांडवी आरम्भ से समाकर अन्त तक पति प्रियाएँ रहती हैं यज्ञ को पति-प्रिया होने के लिए दुर्भाग्य से निरन्तर बसते रहना पड़ता है। छीटा और मांडवी पति के संरक्षण में आबस्त हैं किन्तु यज्ञ को यह संरक्षण भी प्राप्त नहीं होता। छीटा और मांडवी ने जिन हाथों को पाला है वे ससक्त हैं यज्ञ ने जिन हाथों में अपना समर्पण किया है, वे ससक्त होकर भी उसके लिए अशाक्त साबित होने हैं। उसे अपने जीवन-संगिनी स्वरूप को सार्वक करने के लिए छीटा और मांडवी की तरह केवल त्याग ही नहीं करना पड़ता जीवन के साथ निरन्तर संघर्ष रहने हुए, अपने लिए और अपने जीवन-साथी के लिए राह भी बनानी पड़ती है। यद्यपि तीनों ने पाकर घोषा और ओकर पाया है पर इन लोभे-पाने की जो नीमय यज्ञ को चुकानी पड़ी है, वह अतिशय है। कामिदास के चर्यों में वह अचरित 'सुहिषी' सचिन सती मित्र विद्य होती है और इन दृष्टि से जीवन-संगिनी के रूप में हिन्दी-महाकाव्यों की तुलनात्मक-भूमि में शूद्रा का स्थान अनुमतीय है अतितीय है।

हिन्दी-महाकाव्यों की प्रेमिकाएँ

हिन्दी-महाकाव्यों में प्रेमिकाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले नारी पात्रों में प्रभावत चित्ररेखा प्रियप्रवास की राधा यज्ञ अनात्मती दूरजहाँ और

कृष्णायन की राधा का नाम उत्सेहनीय है। स्वार्थीय प्रेमिका की दृष्टि से प्रमीसा को भी सम्मिलित किया जा सकता है। इनमें भी बिजरेया सामान्या एवम् अनारकली मतकी है। बीच सभी कुसोत्पन्न कथ्याएँ हैं। साथ ही पद्यावली एवम् इका की परिच-सृष्टि दृष्टिकोण विशेष से प्रस्तुत की गई है। प्रमीसा सूरजहाँ की प्रतिहन्दी है। प्रियप्रवास की राधा और कृष्णायन की राधा दृष्टिकोण विशेष से उपस्थित की जानेवासी एक पात्र की ही वो परिच-सृष्टियाँ हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टिकोम से इन मारी पात्रों के प्रेमिका स्वरूप पर विचार करते समय बिजरेया अनारकली पद्यावली इका सूरजहाँ प्रमीसा और प्रियप्रवास की राधा तथा कृष्णायन की राधा के युग स्वरूपों पर विचार करना अधिक समीचीन जान पड़ता है।

**बिजरेया अनारकली**—बिजरेया पातुरी है अनारकली नर्तकी है। दोनों ही रूपवती कला-सम्पन्न एवम् हाव भाव-कटाक्ष निपुण हैं। दोनों अपने कला-प्रदर्शन के साथ ही रूप प्रदर्शन करती हुई भी दृष्टिगोचर होती है। बिजरेया का प्रेम वहाँ जाकर पाकर सुस्वान को नाच-मोहित कुरंग की भाँति बाँबने की शक्ति रखता है<sup>१</sup> तो अनारकली भी सलीम के गले का हार पाकर, उसका गले का हार<sup>२</sup> बनती है। दोनों का प्रेम सफ़टों के मध्य फलसा-फूलसा है। यहाँ को चुनौती देता है और दोनों के प्रेम की समाप्ति प्राप्तिस्वर्ग द्वारा होती है। इतना अधिक साम्य होने के बाव भी दोनों में कुछ असाध्य है। बिजरेया का प्रारम्भिक जीवन एकदम सामान्यावत् है। वह बरबन्नी के पास से साहजुद्दीन के पास पहुँचती है। साहजुद्दीन की प्रेमपात्री बनती है और उसके परचाह मीरजुर्गेन की प्रेमिका बन जाती है। अनारकली सलीम से ही प्रेम करती है और केवल सलीम की होकर ही अपनी जीवनसीता समाय्य कर देती है। साह का बादर पाकर साह के प्रति जहाँ बिजरेया का प्रेम बढ़ता हुआ<sup>३</sup> दृष्टिगोचर होता है, वहीं सम्राट अकबर के अनुरूप प्रसोमन को दुकरा कर अनारकली यही कहती है—

मैं रामी नहीं बनूँगी रहने को मुझे भिखारिन।

मैं जवा कक गी मासा अपने प्रियतम की निधिनि।<sup>४</sup>

साह के प्रेय के वय से जहाँ बिजरेया अपने प्रेमी मीरजुर्गेन के साथ विस्ती प्रमी जाती है और दोनों ही पुष्पीराज की शरण लेते हैं, वहीं अनारकली का निरुत्सर्ग प्रेम बादसाह को रक्ष करते हुए सलीम को अपने साथ जीवन गज करने से रोकता है और अपने प्रेम-पात्र को धर्म-संकट में ही नहीं डालना चाहता—

१. पुष्पीराज रासो, समय १५।३२। ३. रासो समय १५।३१।

२. सूरजहाँ वृ० २५।

४. सूरजहाँ पु० ३३।

मैंने प्यार तुम्हारा पाया जो जीवन का केवल सार ।  
उसे छोड़ सब भूल भयूर है एक अमर है सबका प्यार ॥  
करना क्षमा भूल सब मेरी राह में धीर न लौटो ।  
तुम्हें बर्ष संकट में रक्कड़ ब्रिज की छूट न लौटो ॥<sup>४</sup>

इसका ही नहीं बिजयेरा एवम् अनारकली के प्राणोत्सर्ग में भी अंतर है । बिजयेरा जहाँ अपने प्रेमी की भाव के साथ जीते भी ही कब में मड़ कर<sup>५</sup> अपने प्रेम का परिचय देती है, वहीं अनारकली अपने प्रिय को बर्ष संकट से मुक्त करने के लिए ब्रियपान कर प्रिय की अंतिम श्वासी देख कर उसकी गोद में गिरते हुए<sup>६</sup> अपना प्राणोत्सर्ग कर देती है । संक्षेप में बिजयेरा का प्रेम सामान्यावत् आरम्भ होकर भी सामान्यावत् समाप्त नहीं होता है और अनारकली का प्रेम जिस माकुफता के मध्य आरम्भ होता है उसी माकुफता के मध्य जीवनसीमा समाप्त हो जाने के बाद भी उसका प्रेम अजर-अमर हो जाता है ।

पद्मावती : इड़ा—पद्मावती एवम् इड़ा भी प्रभावशाली प्रेमिकाएँ हैं । पद्मावती में लौकिकता एवम् अलौकिकता दोनों के वर्णन होते हैं जब कि इड़ा का चरित्रात्मक बुद्धिवादिनी के रूप में प्रस्तुत हुआ है । पद्मावती प्रेममयी है इड़ा तर्कमयी है । पद्मावती का स्वरूप 'पारम रूप' होने के कारण विर्यसत रूप की प्रतिद्वन्द्विबोध होना है और जो जिस रूप में होता है उसे उस पारम रूप में अपना स्वरूप बँटा ही दिखाई देता है ।<sup>७</sup> इड़ा सिरकड़ी है इसलिए उसने हार नहीं पाया है ।<sup>८</sup> वहीं इड़ा कठनता का भौतिक विभाग कर जग को विराग बोलनेवाली सिद्ध होती है ।<sup>९</sup> वहीं पद्मावती के प्रेममय पारम रूप के वर्णन मात्र के श्रोतार तक रूपवान हो जाता है ।<sup>१०</sup> पद्मावती का प्रेम जहाँ अपने प्रेम-साधक योगी का साथ करती से स्वयं उस देने के लिए तैयार है और योगी के जीविष्ठ रहने पर अमर सेवा तथा प्रवास करने पर सत्रास साथ देने का निरवय प्रकट करता है ।<sup>११</sup> वहीं इड़ा मायाविनी भूतिमयी अभिमान भी संज्ञा प्राप्त करती है क्योंकि वह मनु को समर्थ भी राह बना कर उस छुट्टी या सेवा चाहती है जैसे लड़के घरों में छुट्टी कर लेते हैं ।<sup>१२</sup>

५. गुरजही पृ० ४१ ।

१०. कामायनी ।

६. रातो, समय ६ । २०५ ।

११. जायसी प्रभावती पृ० २५ ।

७. गुरजही पृ० ४२ ।

१२. वहीं पृ० १०१ ।

८. जायसी प्रभावती पृ० १० ।

१३. कामायनी पृ० १२६ ।

९. कामायनी पृ० २४१ ।

पद्मावती एवम् इका दोनों ही ऐसी प्रेमिकाएँ हैं जिन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न पुरुषों द्वारा ही होता है। दोनों ही ऐसे पुरुषों की प्रेमिकाएँ हैं जो अपनी पूर्व महिलाओं का परि त्याग कर, प्रेम-विपासित दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम भक्ति एवम् अयमासा वेने की बात कहती है<sup>१४</sup> द्वितीय प्रकृति संवय सिद्धान्त की तुहाई देती है।<sup>१५</sup> प्रथम प्रेम का प्रतिदान प्रेम से होती है और द्वितीय के प्रति व्यक्त हुआ प्रेम, परिचाप से भर उठता है। प्रेममयी होने के कारण पद्मावती सद्यः रूपका के रूप में हमारे सामने जाती है तर्कमयी होने के कारण इका केवल बुद्धिवादिनी ही रहती है।

पद्मावती ने अपने प्रेमिका स्वयम् को बिना की व्यासाओं से खारा है, इका का प्रेमिका स्वयम् परिचाप की अग्नि में जलता परिलक्षित होता है। प्रेमपात्री के रूप में पद्मावती सद्यः है इका निष्कुर। एक वृत्ति है दूसरी अवृत्ति। इसीलिए पद्मावती वहीं 'दीपक-पतंग प्रीति'<sup>१६</sup> का निर्वाह करती दृष्टिगोचर होती है, वहीं इका 'गैरिक बसना'<sup>१७</sup> रूप में ही विचार देती है। प्रिय के प्रेम में रंग जाने के कारण पद्मावती के लिए स्वर्ग भी 'रत्नार'<sup>१८</sup> हो जाता है जबकि इका का जाया भाग्य खो जाता है और वह उरोहित बचसा धृति, राहु-पस्त अखिलेका-सी विचार देती है जिस पर विपाव की विप रेखा<sup>१९</sup> बिज बाती है। इस प्रकार पद्मावती वहीं एक सफल प्रेमिका सिद्ध होती है, वहीं इका एक असफल प्रेमिका है क्योंकि उसके बुद्धिवादी स्वयम् को भावना के इस पथ में अवृत्ति का अनुभव करना ही था।

मुरजहाँ जमीना—मुरजहाँ और जमीना दोनों ही प्रेमिकाओं के रूप में उपस्थित होती हैं। दोनों का प्रेमपात्र एक ही व्यक्ति है। दोनों रूपवतियाँ हैं पर दोनों के स्वभाव न असाम्य है। एक राजस्व वृत्ति की है, दूसरी तामसी वृत्ति की। एक मोसी है, दूसरी कुटिला। मुरजहाँ का मोलापन सलीम को भा जाता है जबकि जमीना कुटिलता का नाम बिछाने के बाद भी सलीम को प्राप्त नहीं कर पाती। मुरजहाँ के पाठ अपने प्रेम का बस है जबकि जमीना अपनी बूट जानुरी कुत्तोपद्रवा एवम् सौंदर्य का मय कर भी अपने प्रयत्नों में विफल होती है। मुरजहाँ प्रेमिका ही नहीं सलीम की प्रेम-यात्री भी है जमीना एक असफल प्रेमिका है। मुरजहाँ के प्रेम-पथ में दुर्घट कटि बिछाता है। जमीना अपने पथ को आप कटिष्ठ करने के बाद भी काटों की पीड़ा से कसकती दृष्टिगोचर नहीं होती। मुरजहाँ जहाँ जाती पर भरोसा

१४ जायसी प्रभावती पृ० ७८।

१५ कामायनी पृ० १६७।

१६ जायसी प्रभावती पृ० २६६।

१७ कामायनी पृ० २७७।

१८ जायसी प्रभावती पृ० १००।

१९ कामायनी पृ० २६६।

रखनेवासी है<sup>२०</sup> वहीं जमीना को अपने 'पानी में भाग लगानेवाला' बूट कोचल और सम्मोहन बिद्या पर भरोसा है।<sup>२१</sup> मूरजहाँ का प्रेम दन्तात्मक है। पत्नी की जगह वह पत्नी है प्रेमिका की जगह प्रेमिका है। पत्नी की नर्तक्य-भावना उसके श्वशुरों पर लगे कुम्बों के टाँसी की परवाह नहीं करती<sup>२२</sup> जबकि कठक-कर्म-संयाम के द्वारा ही उसकी प्रेम-भावना उस बरा पर अचलायस्था में गिरा देती है।<sup>२३</sup> जमीना का प्रेम में स्थिरता का जो अभाव है। उसीमी की ओर से निराश होने पर और कुतूहल को पाकर वह मुसहरों उड़ाने की ही बात कहती है तथा बूट से ब्याह करन में वह 'सफर-स्वाह' करने की भी गुंजाइश देखती है।<sup>२४</sup>

स्वप्नों के संसार से बाधापन का प्यार से बिदा होने के बाद भी वैदिक्य की आय में अपने का पदचाल भी उसका प्रेम मरता नहीं है और एक दिन अपने प्रेम नाम को बसहाय पड़ा देख कर उसका प्रेम आतिथ्य-उपचारों में पूरा पड़ता है।<sup>२५</sup> दुर्जन की कठोरता के मध्य भी उसके बाधापन का स्वाय मुख नहीं पाता जबकि जमीना प्रेम की दीपों हाँककर भी खुसी उसबारों को देखकर सारा प्रेम भुन जाती है और जीवन भर प्रेम की बात न उठाने का वायदा करती दिखाई देती है।<sup>२६</sup> मूरजहाँ का प्रेम की तुलना में जमीना का प्रेम एकम बटिया सिद्ध होता है। संवेन में सौधपर की बड़ी होकर भी मूरजहाँ प्रेम का सौदा नहीं करती उत्तम कुन में उत्पन्न होकर भी जमीना उत्तम प्रेमिका नहीं बन पाती। एक के लिए प्रेम बाँटों की राह है, दूसरी के लिए मुसहरों उड़ाने का माध्यम माध है।

प्रियप्रवास की राधा कृष्णायन की राधा—प्रियप्रवास की राधा एवम् कृष्णायन की राधा दोनों ही अनन्य प्रेमिकाएँ हैं। दोनों स्वाम-प्रियाएँ हैं। दोनों ही कौमार्य-व्रत धारण करनेवासी बटन अनुसमिकाएँ हैं। दोनों आम्पावान हैं दोनों हाग-जल हैं अपने प्रेम का निबन करने वाली हैं। दोनों ही प्रेम-मात्रिकाएँ हैं। इतना अधिक साम्य होने के बाद भी दोनों में कथावस्तु के असाध्य के कारण कुछ वैषम्य दृष्टिगोचर होता ही है। प्रियप्रवास की राधा का नाम प्रेम की स्मरना नहीं हुई है कथा की करम बारा में उसका बचन मुगरा किमोटी स्वका छुन सया है जबकि कृष्णायन की राधा का नामप्रति स्वयं अपने बचन-मुगरा एवम् भोने बन में धरत हुआ है। प्रियप्रवास की राधा प्रियप्रवास की आशा को न भूलते हुए विश्व के नाम

२० मूरजहाँ पृ० १२।

२४ पृ० १०७।

२१ वही पृ० ७८।

२५ वही पृ० १४४।

२२ वही पृ० १८।

२६ वही पृ० १०५।

२३ वही पृ० ७०।

पद्मावती एवम् इका दोनों ही ऐसी प्रेमिकाएँ हैं जिन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न पुरुषों द्वारा ही होता है। दोनों ही ऐसे पुरुषों की प्रेमिकाएँ हैं जो अपनी पूर्ण परिनिर्वा का परित्याग कर, प्रेम-विपासित दृष्टियोजर होते हैं। प्रथम भक्ति एवम् जयमासा देने की बात कहती है<sup>१४</sup> द्वितीय प्रकृति सर्वप्र सिक्ताने की सुझाई देती है।<sup>१५</sup> प्रथम प्रेम का प्रतिदान प्रेम स बती है और द्वितीय के प्रति व्यक्त हुज्रा प्रेम परित्याप से भर उठता है। प्रेममयी होने के कारण पद्मावती सवय हूबया के रूप में हमारे सामने आती है, तर्जमयी होने के कारण इका केवल बुद्धिवादिनी ही रहती है।

पद्मावती ने अपने प्रेमिका स्वस्व को चिता की ज्वालाओं से संभार है इका का प्रेमिका स्वस्व परित्याप की अग्नि में जसता परिलभित होता है। प्रेमपानी के रूप में पद्मावती सवय है इका निष्कुर। एक वृत्ति है दूसरी अगुति। इसीलिए पद्मावती जहाँ 'वीपक-वर्तय प्रीति'<sup>१६</sup> का निर्वाह करती दृष्टियोजर होती है वहीं इका 'गीरिज बसना'<sup>१७</sup> रूप में ही दिखाई देती है। प्रिय के प्रेम में रंग जाने के कारण पद्मावती के लिए स्वयं भी 'रत्नार'<sup>१८</sup> हो जाता है जबकि इका का ज्ञाना भाव्य से जाता है और वह उल्लेखित कंचला छक्ति राहु-वस्तु लक्षित-का-सी दिखाई देती है जिस पर विपाद की विप रेखा<sup>१९</sup> टिक जाती है। इस प्रकार पद्मावती जहाँ एक सफल प्रेमिका सिद्ध होती है वहीं इका एक असफल प्रेमिका है क्योंकि उसके बुद्धिवादी स्वस्व को मानना के इस पथ में अगुति का अनुभव करना ही था।

नूरजहाँ जमीना—नूरजहाँ और जमीना दोनों ही प्रेमिकाओं के रूप में उपस्थित होती हैं। दोनों का प्रेमपान एक ही व्यक्ति है। दोनों स्ववर्तियाँ हैं पर दोनों के स्वभाव में असाध्य है। एक राजस्व वृत्ति की है दूसरी रामसी वृत्ति की। एक भोनी है दूसरी बुद्धिमा। नूरजहाँ का मोलापन सलीम का था जाता है जबकि जमीना बुद्धिमत्ता का आल बिछाने के बाद भी सलीम का प्राप्त नहीं कर पाती। नूरजहाँ के पास अपने प्रेम का बल है जबकि जमीना अपनी बूट बागुरी कुमोत्पन्नता एवम् सौंदर्य का गर्व कर भी अपने प्रयत्नों में विफल होती है। नूरजहाँ प्रेमिका ही नहीं सलीम की प्रेम-यात्री भी है जमीना एक असफल प्रेमिका है। नूरजहाँ के प्रेम-पथ में दुर्बल कटि बिछाता है। जमीना अपने पथ को आप कंटकित करने के बाद भी कांटों की पीड़ा से कठकती दृष्टियोजर नहीं होती। नूरजहाँ जहाँ सलीम पर भरोसा

१४. जायसी प्रयावती पृ० ७८।

१७. कामायनी पृ० २७७।

१५. कामायनी पृ० १६७।

१८. जायसी प्रयावती पृ० ३००।

१६. जायसी प्रयावती पृ० २६६।

१९. कामायनी पृ० २३६।

रखनेवासी है<sup>१०</sup> वहीं जमीना को अपने 'पानी में आब भयानेवासे' फूट कोसल और सम्मोहन विद्या पर भरोसा है।<sup>११</sup> मुरजही का प्रेम इम्बालक है। पत्नी की अपहृ वह पत्नी है प्रेमिका की जगह प्रेमिका है। पत्नी की कर्तव्य भावना उसके अधरों पर नये चुम्बनों के तावों की परवाह नहीं करती,<sup>१२</sup> जबकि कर्तव्य-कर्म-संपादन के द्वारा ही उसकी प्रेम-भावना उसे बराबर ज्योतावस्था में निरा देती है।<sup>१३</sup> जमीना के प्रेम में स्थिरता का भी अभाव है। उसीम की ओर से निरास होने पर और कुतुहलीन को पाकर वह नुसखरें उड़ाने की ही बात कहती है तथा बूढ़े से ब्याह करने में वह 'सदेव-स्पाह' करने की भी बुबाइस देखती है।<sup>१४</sup>

स्वप्नों के संसार से आलापन के प्यार से विद्या लेने के बाद भी वैधव्य की क्षाम में अपने के परभाव भी, उसका प्रेम मरणा नहीं है और एक दिन अपने प्रेम पाव को असहाय पड़ा देख कर उसका प्रेम आत्मिय-उपचारों में फूट पड़ता है।<sup>१५</sup> बुरेंव की कठोखा के मय्य भी उसके आलापन का त्याग खूब नहीं पाता जबकि जमीना प्रेम की हीन हाँककर भी कुती तलवारों को देखकर सारा प्रेम भूल जाती है और जीवन भर प्रेम की बात न उठाने का वायदा करती दिखाई देती है।<sup>१६</sup> मुरजही के प्रेम की तुलना में जमीना का प्रेम एकमन बटिया सिद्ध होता है। संसार में लीलावर की बेटी होकर भी मुरजही प्रेम का सीसा नहीं करती उत्तम कुल में उत्पन्न होकर भी जमीना उत्तम प्रेमिका नहीं बन पाती। एक के लिए प्रेम कांटों की राह है दूसरी के लिए नुसखरें उड़ाने का मायम माग है।

प्रियप्रवास की राधा : कुम्भाराम की राधा—प्रियप्रवास की राधा एवम् कुम्भाराम की राधा दोनों ही अनन्य प्रेमिकाएँ हैं। दोनों स्वाम-प्रियाएँ हैं। दोनों ही कीमर्ब-वत चारन करनेवासी अटल अनुपायिकाएँ हैं। दोनों आस्थावान हैं, दोनों हय-वस से अपने प्रेम का विधान करने वाली हैं। दोनों ही प्रेम-शाक्तिकाएँ हैं। इतना अधिक सान्त्व होने के बाद भी दोनों में क्यावस्तु के अज्ञान के कारण कुछ वैधव्य इन्डोवर होता ही है। प्रियप्रवास की राधा के पास प्रेम की व्यंजना नहीं हुई है कथा की कल्पन द्वारा में उसका चंचल मुखर, किसीही स्वकप छुर मवा है जबकि कुम्भाराम की राधा का आनखि स्वकप अपने चंचल-मुसरा एवम् भीते रूप में व्यक्त हुआ है। प्रियप्रवास की राधा प्रियप्रवास की आत्मा को न भूलते हुए विरह के काम

२० मुरजही पृ० ५२ :

२१ वही पृ० ७५ :

२२ वही पृ० ६८ :

२३ वही पृ० ७० :

२४ वही पृ० १०७ :

२५ वही पृ० १४४ :

२६ वही पृ० १०२ :



भी आना चाहती है।<sup>२०</sup> कृष्णायन की राधा को श्रीकृष्ण द्वारा मलमूत्रक लगाए गए प्रेम-विट्प को हम-बारि से सींचने का कार्य-भार मिला है।<sup>२१</sup>

प्रियप्रवास की राधा गारी ॥ ठरल हूबया है प्यार से बंधिता है। बर-उसका निरुप बिमता हो उठला स्वाभाविक है।<sup>२२</sup> यद्यपि वह अपने आप को निरिक्ता रखने का प्रयत्न करती है परन्तु प्रिय के सलिल नाम की वाससा उठ ही जाती है। राधा स्वयं इसे स्वीकार करते हुए कहती है—

निरिक्ता हूँ अधिकतर मैं नित्यदा संपत्ता हूँ।  
तो भी होती अति व्यपित हूँ प्रिय की याद घाते।  
बैसी बाँधा जपत हूँ की आन भी है न होती।  
बैसी की मैं ललित प्रिय के नाम की वाससा है तू<sup>२३</sup>

कृष्णायन की राधा भी प्रिय-विधोय के समय बिभक्क उठती है, उसका प्रेमी हृदयावेग एक बार पुनः उसे बिबा होते श्रीकृष्ण के रस के सामग्री या पटकटा है किन्तु हरि के रस स्वागने और हृदय से जवा लेने के बाद ही वह प्राकट्य गारी नहीं रह जाती—

सालुराज भरि हृदय निहार, नयनज समहि बही जल धारा।  
मुखा सिक्त राधा धय सारे, बापी बहन स्वीक्षि नय मारे।  
नमी न प्राकृत प्रिय पुनि तैरे, जल कल स्वाती सीपी जैसे।<sup>२४</sup>

प्राकट्य गारी न रह पाने के कारण कृष्णायन की राधा का नमत्कारिक स्वस्व भी हृदिकोचर होता है। उदय की प्रवास के समय वह बंसीबादक हरि के चरणों में मुमनोजसि अर्पित करते दिखाई देती है,<sup>२५</sup> जब कि प्रियप्रवास की राधा प्राकट्य गारी ही बनी रहती है। प्रियप्रवास की राधा का प्रियानुराग श्रीकृष्णानुराग है और कृष्णायन की राधा नाममुकुन्द की आराधिका है। प्रियप्रवास की राधा का श्रीकृष्णानुराग ही उसकी नमना भक्ति है और इसीलिए वह सुजन सिर की छाया, लज्जा की साविका कंगालों की परम निधि ब्रज नमनि की आराध्या एवम् विश्वप्रैमिका है।<sup>२६</sup> कृष्णायन की राधा आशीषन मनसा बाबा, कर्मका श हरि की उषी बाट भिका एवम् हरिमय प्राण रखनेवाली है<sup>२७</sup> और इसीलिए वह देहवादी भक्ति और

२७ प्रियप्रवास १७।४६।

२८ कृष्णायन पृ० १००।

२९ प्रियप्रवास १६।५०।

३० बही १६।६।

३१ कृष्णायन पृ० ११६, ११७।

३२ कृष्णायन पृ० १२३।

३३ प्रियप्रवास १७।४६।

३४ कृष्णायन पृ० १२३।

भग-वदनीय है। इस प्रकार दोनों की भक्ति की विभाएँ बसत प्रलग होकर भी प्रेम की विद्या एक है, प्रेम-भाव एक है और इसीलिए दोनों का प्रेमिका स्वरूप सात्विक तथा अमय्य है।

समष्टि रूप से प्रेमिकाओं के तुलनात्मक स्वरूप पर विचार करने से हिन्दी महाकाव्यों की प्रेमिकाएँ तीन प्रकार की दिखाई देती हैं—सात्विक भाव प्रधान प्रेमिकाएँ, रामस भाव प्रधान प्रेमिकाएँ और तामस भाव प्रधान प्रेमिकाएँ। प्रथम एवम् द्वितीय प्रकार की प्रेमिकाएँ भी प्रायः हिन्दी महाकाव्यों में दृष्टिगोचर होती हैं। तामस स्वरूप का प्रतिनिधित्व केवल जमीना करती है। अतः वहाँ अल्प प्रेमिकाएँ अपने सत् स्वरूप में हमारे सामने आती हैं, वही जमीना एक असत् प्रेमिका के रूप में दिखाई देती है। साथ ही पाशुरी और नर्तकी समस्त जानेवासी नारियों का प्रेमिका-स्वरूप भी हिन्दी-महाकाव्यों में जिस रूप में व्यक्त हुआ है वह अपने आप में अनुपम है।

### हिन्दी-महाकाव्यों की माताएँ

हिन्दी-महाकाव्यों में मातृ रूप की जो वर्जना प्रस्तुत की गई है उसका प्रति निमित्त करनेवाली माताओं में कौशल्या एवम् कौन्तेयी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कौशल्या का मातृ स्वरूप त्रिप्रपास एवम् हृष्णायन दोनों में ही उपस्थित हुआ है। कौशल्या की चरित्र-वृद्धि मानस रामचन्द्रिका साकेत और साकेत-संत में मिलती है। किन्तु रामचन्द्रिका एवम् साकेत-संत में कौशल्या का मातृ स्वरूप त्रिप्र रूप में उपस्थित होता है, उसमें कोई विशेषता नहीं है। अतः तुलना की दृष्टि से मानस एवम् साकेत की कौशल्या ही दृष्टव्य है। इसी प्रकार कौन्तेयी की चरित्र-वृद्धि भी पूर्ण चरित्र चारों ही महाकाव्यों में प्रस्तुत की गई है, पर इनमें मानस एवम् साकेत की कौन्तेयी ही अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। अतः पहले महाकाव्यानुसार तुलनात्मक रूप से विचार करते हुए, बाद में उनके मातृत्व की तुलना करना उत्तम होगा।

मानस की कौशल्या साकेत की कौशल्या—मानस की कौशल्या एवम् साकेत की कौशल्या दोनों ही चरित्र रूप से अलग हैं। दोनों अलग स्वभाव की कपटहीन, मनचामपी एवम् उपास भावना रखनेवाली हैं। दोनों का मातृ रूप अपने पुत्र राम तक ही सीमित न रह कर, अरु को भी रामचन्द्र ही मानता है और दोनों ही कौन्तेयी के प्रति उदार दृष्टिकोण रखती हैं। दोनों में 'सौत-भाव' का अभाव है। मानस की कौशल्या वहाँ 'माता की माता' का उल्लेख कर कौन्तेयी को राम की माता के रूप में ही व्यक्त करती है, वहीं साकेत की कौशल्या भी यत्नरहित से यही कहती है कि कौन्तेयी

जाहे जैसी हो पर मुक्त जैसी मुक्त-बंशिता न हो ।<sup>२</sup> वह उसे मझसी बहनवत् मानती है । अब दोनों के कर्मान कड़वाहट रहित हैं निष्कलुष हैं । मानस और साकेत की कोलज्या सममग एक ही जैसी है और उनमें कोई वैषम्य विशेष दृष्टिगोचर नहीं होता ।

मानस की कँकेयी : साकेत की कँकेयी—मानस की कँकेयी एवम् साकेत की कँकेयी दोनों ही स्नेहमयी माताएँ हैं । दोनों का प्रेम भरत के प्रति ही नहीं पहले राम के प्रति भी एक जैसा ही दृष्टिगोचर होता है । दोनों मंथरा की 'भर फूक' मीति से खूब होती है । पर वहाँ मानस की कँकेयी मंथरा को 'बप पुतरी' बना बैठती है, वहीं साकेत की कँकेयी मंथरा को अपनी मबरों से दूर कर देती है । प्रथम का मन मंथरा की समाह से कुटिल हो उठता है जबकि द्वितीय के मन पर 'भरत से सुत पर भी सबेह'<sup>३</sup> की प्रतिक्रिया होती है और प्रथम का मन वहाँ 'भिया बरिज' से बान्धित होता है, वहीं द्वितीय के मन में संन्यात्मक प्रक्रिया के रूप में यह प्रतिक्रिया उठती है । यद्यपि दोनों का मन पुत्र-प्रेम एवम् सौमिया बाहू की सावना से ही कुटिलता की तरफ भेता है परन्तु प्रथम में सौमिया बाहू का शाबल्य है द्वितीय में पुत्र के प्रति किये जाने वाले अग्न्याय का प्रतिशोध लेने का । दोनों ही कोप प्रथम में आकर अपना कार्यसिद्ध करती हैं । परन्तु वहाँ मानस की कँकेयी कार्य-सिद्धि के पश्चात् भी कुटिल एवम् स्नानिमरी कँकेयी ही रहती है वहीं साकेत की कँकेयी की इस कुटिलता एवम् स्नानि का परिहार होता है । 'रघुकुल की यह बभामिनी रानी' साकेत में 'सी बार बग्य' घोषित की जाती है ।

मानस की कँकेयी गानि में डूब कर मूक रह जाती है, साकेत की कँकेयी अपने परिचाप से पवित्र हो उठती है । मानस की कँकेयी में जो परिचाप एवम् पश्चात्ताप दृष्टिगोचर होता है वह संकोचशील बन कर रह जाता है साकेत की कँकेयी का परिचाप फूट पड़ता है और इसीलिए मन की 'मुग्ध' उसे प्रथम की तरह 'स्नानि' मग बना कर ही नहीं छोड़ देती है । मानस में वहाँ कँकेयी का कपट कुनेस एवम् कुचाली स्वरूप संकोच में सिमट कर ही रह जाता है वहीं साकेत की कँकेयी 'पहाड़-सा पाप करके मौन नहीं खूना चाहती' ।<sup>४</sup> इतना ही नहीं साकेत की कँकेयी राम राजन पुत्र एवम् सरमग को घटित समने के समाचार सुनकर अपने जिस सजाजी मुग्ध स्वरूप में उपस्थित होती है और भरत को प्रथम भेजने के साथ ही स्वयं भी मुक्त भूमि की ओर

२ साकेत पृ० १६८ ।

४ वही पृ० २४७ ।

३ वही पृ० ४६ ।

प्रयास करने की जो बात अपने मुह से बरक करती है \* उसका मानस की कैदगी में खपता अभाव है। मानस की कैदगी जो कुहल्य एक बार कर बीटी है और जिसने उसके मातृत्व को नसकित कर दिया है, उस कसक को दूर करने की दृष्टि से वह निष्क्रिय है जबकि साफेस की कैदगी सर्वत्र इस कसक का परिहार करने के लिए प्रयत्नशील जान पड़ती है।

प्रियप्रवास की यशोदा : कृष्णायन की यशोदा—प्रियप्रवास की यशोदा एवम् कृष्णायन की यशोदा दोनों ही स्नेहमयी माताओं के रूप में उपस्थित होती हैं। दोनों का वात्सल्य भाव उनके मातृ हृदय की महामता का छोटक है। दोनों ही के लिए स्वाम हृदय सख्त है। दोनों पुन-विद्योह से अनियत यमिन हो चटती हैं और दोनों में मातृ हृदय का हाहाकार दृष्टिगोचर होता है। दोनों की मर्म-वेदना अपने पूर्ण हृदय कावक स्वल्प में प्रकट होती है। दोनों दहरी के नाम सनेस प्रकट समय स्वयं को स्वाम की 'भाव' ही घोषित करती हैं और दोनों एक बार अपने मोहन का मुख का बेचने के लिए साक्षात्कृत हैं। दोनों में गम्भा एन बंसी भावुकता निरसता एवम् तीव्रता दृष्टिगोचर होती है। दोनों को पुन की अनुपस्थिति सामग्री रहती है सब कुछ मूना-मूना-ता जान पड़ता है और दोनों उड़क के मुख से पुन के समाचार जात करते समय अपने मातृकता प्रधान स्वल्प में दृष्टिगोचर होती है।

इतना अधिक भाव-आत्म होने के बाव भी प्रियप्रवास की यशोदा एवम् कृष्णायन की यशोदा में कुछ अन्तर दिखाई देता है। प्रियप्रवास की यशोदा के मातृ हृदय की विस्तृता कृष्णायन की यशोदा से कहीं अधिक हाहाकारी है जबकि कृष्णायन की यशोदा में सयोग ज्ञान का वात्सल्य-भाव नहीं अविव धरसता के साथ व्यक्त होता है। प्रथम केवल हृदय में वात्सल्य का प्रीड़ाभा का स्मरण करती है। द्वितीय इन बात प्रीड़ाओं की साथी है। कृष्णायन की यशोदा का मातृ हृदय कृष्णायन से लता कर बकुर-आयमन के पुन तक हृदय की बास-सीताओं से मानन्वित और कुपित होता रहता है। प्यार, मनुहार, जीव जिङ्गी मारपीट, डाटना थपटना आदि बितने भी मातृत्व के वर्तव्य हैं वे सभी कृष्णायन की यशोदा में दृष्टिगोचर होते हैं जबकि प्रिय प्रवास की यशोदा पुन के मधुरगमन के समाचारों को जात कर आरम्भ से ही व्याकुल एवम् स्मित दिखाई देने लगती है।

कृष्णायन की यशोदा को एक बार पुन कुटीन में अपने साइने मात को हृदय से लगाने का छीनाम्य प्राप्त हो जाता है पर प्रियप्रवास की यशोदा के भाव में यं धुम देता जैसे तिथी ही नहीं है। एक बार का पुन-विद्योह बिछोह ही बन कर

रह जाता है और पुत्र का मुख निहारने की लालसा अपूर्ण लालसा में परिणित हो जाती है। यद्यपि दोनों के मध्य बिछाई पड़ने वाले इस अन्तर का कारण कथावस्तु का स्वस्म है किन्तु इस अन्तर के बाव भी दोनों के मातृत्व में स्नेह भाव में कोई छूटि उपस्थित नहीं होने पाई है।

महाकाव्यानुसार कौशल्या ककेयी एवम् यशोदा पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने के पश्चात् सीतों के मातृ स्वस्म पर विचार करते ही सीतों अपने स्नेहमयी रूप में हमारे सामने आती हैं। कौशल्या एवम् यशोदा के मातृ हृदय सरस हैं, निर्बिकार हैं, उदात्त हैं। ककेयी में पुत्र-मेघ के कारण कुटिसता का समावेश हो जाता है पर वह 'कुमावा' नज़्वा कर भी माता है। जगत के भसे-बुरे की उसे चिन्ता नहीं पर वह अपने मातृ पद के लिए चिन्तित अवस्थ है। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है—

बूके, पुष्पर ब्रैलोक्य जैसे ही बूके  
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों बूके !  
झीमे न मातृ पद किन्तु सरत का मुझ से,  
हे राम बुझाई कहे और क्या तुमसे ?<sup>६</sup>

किन्तु कौशल्या एवम् यशोदा का मातृ पद उत्सर्ग-भाव से अनुप्राणित है। कर्तृ बनिता की कथा अथवा पुत्र के प्रति होनेवाले अस्थाय से ककेयी विचलित हो सकती है कौशल्या नहीं। वह सरल स्वभाववत् दीर्घ-धारण करते हुए, राम हैं यही कहती है—

राज देन कहि बीगह जनु मोहि न सो बुझसेनु ।  
तुम्ह दिन भरतहि धुपतिहि प्रबदि प्रबज कसेनु ॥<sup>७</sup>

इस प्रकार पुत्र के वनवास-काल के समय भी कौशल्या का भरत का ध्यान रहता है पर ककेयी का राम के प्रति जो स्नेह भाव था वह क्षुद्र स्वार्थ के बधीमूठ होकर न जाने कहाँ छो जाता है। यशोदा भी अपने लाल के लिए चिन्ती को व्यक्त करना नहीं चाहती। पुत्र के वियोग में वह रोती है, कलपती है अपना हृदय फूटती है, पर उसके मातृ हृदय की महानता इसी में है कि वह चिन्ती अन्य माता को कुली नहीं बनाना चाहती—

मैं रोती हूँ हृदय अपना फूटती हूँ लख ही ।

हा ! ऐसी ही व्यथित सब क्यों बैसकी को कह गी !<sup>८</sup>

कौशल्या एवम् यशोदा के उदात्त मातृ हृदय के सामने ककेयी का पुत्र प्रेम और उसका मातृत्व टिक नहीं पाता। चाहे उसने क्षमाशील होने के कारण दीर्घ माफी

६. साकेत पृ० २४८।

८. प्रियप्रसाद १०। ११।

७. मानस अधोप्याकांड पृ० ४३६।

८. साकेत पृ० २४२।

न सीखी हो<sup>१</sup> या उसने नहीं सोचा हो जो अच्छा भगता हो<sup>१</sup> या मोह के मय में उसने पद-पाणि पटके हो<sup>११</sup> पर यह स्पष्ट है कि वह एक साधारण हूबया गायी है और उसमें उस उदात्त भावना का अभाव है जो एक माता के वात्सल्यमय हृदय की तरह, प्रकट होती है।

यशोदा एवम् कौसल्या का मातृ हृदय विज्ञात है कँकेयी का मातृ हृदय संकीर्ण है। इसमें जहाँ प्रथम दो का मातृ पद अपनी उपमा आप ही है, वहीं कँकेयी का मातृ पद या तो आनि में गलता-सा दृष्टिकोण होता है या परिणाम में जलता-सा।

जहाँ एक कौसल्या एवम् यशोदा के मातृत्व का प्रदत्त है दोनों की परिस्थितियों में भेद है। प्रथम का विषय जहाँ अवधि विरोध के भिन्न है वहीं द्वितीय का विषय जीवन पर्यन्त रहता है। एक माता है दूसरी 'माय' है। एक के पास सम्बन्ध है पर दूसरी के पास केवल स्नेह का बल है। प्रथम को शीघ्र बचक पदचान् पुत्र की प्राप्ति हो जाती है परन्तु द्वितीय पुत्र की स्मृति में प्रतीता ये बचपान ही करती रहती है। कौसल्या 'तिव वर्मु'<sup>१२</sup> समझ कर धैर्य बारण कर सकती है किन्तु यशोदा के मातृ धर्म उसके हृदय के वात्सल्य भाव के सामने धैर्य भी घसक जाता है और उसकी 'कहाँ है ? कहाँ है ?' की हाहाकारी रट के सामने पापाप हृत्प भी पिघल सकता है। कौसल्या आंसुओं को पी सकती है पर यशोदा के आंसू जमन का नाम नहीं लेते हैं और उसके अन्तमय मातृत्व के सामने उसके वात्सल्यबलित हाहाकार के सामने कोई माता नहीं टिक सकती। कौसल्या की सी माता का मिसना दुर्लभ हो सकता है पर यशोदा की माता पाना सर्वथा असम्भव है। वह अपने आप में महात्मा है गरिमायम है अनुसनीय है।

### हिन्दी-महाकाव्यकारों के नारी विषयक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

हिन्दी-महाकाव्यकारों के नारी विषयक विचारों का स्वल्प बौद्धिक भूमि के अन्तर्गत देखा जा चुका है और उसके नारी विषयक दृष्टिकोण पर भी विचार किया जा चुका है। अतः हिन्दी के महाकाव्यकारों के नारी विषयक विचारों पर तुलनात्मक रूप से विचार करते समय यह स्पष्ट हो जाता है कि इन महाकाव्यकारों ने कुछ अपने पुत्र का प्रतिनिधित्व करते हुए पुत्र-जागी के प्रभाव में या तो परम्परा का पालन करत दृष्टिकोण होते हैं या नवीन विचारधारा द्वारा प्रभावित भान पड़ने हैं। संस्कारवाद

८ साकेत पृ० २१२।

११ साकेत पृ० २४६।

१० आनन्द, अयोध्याकांड पृ० ४४०।

१२ आनन्द, अयोध्याकांड पृ० ४३३।

उनके विचारों में कुछ साम्य भी है और कुछ उद्भिन्नता साम्यताएँ भी हैं। एक ओर वे प्राचीनता का प्रतिनिधित्व करते दृष्टिगोचर होते हैं दूसरी ओर आधुनिकता का। समिन्धित विचारधारा भी मिलती है।

जहाँ तक समानता का प्रश्न है प्रायः हिन्दी के सभी महाकाव्यकारों ने नारी के सत् स्वस्व की महिमा एवम् गरिमा को व्यक्त करते हुए अपने विचारों को अनुसार नहीं होने दिया है। नारी के पतिव्रते की महत्ता के प्रति जो विचार व्यक्त हुए हैं, उनमें भी दृष्टिकोण साम्य हैं। उद्भिन्नता साम्यतानुसार प्रायः अधिकांश महाकाव्यकारों ने नारी को सुकुमारी अथवा वरम हूवया आदि बोधित किया है और उसके स्व की उक्ति को स्वीकार किया है। प्रायः मातृत्व के प्रति सभी महाकाव्यकारों के विचार यथास्थित हैं। प्रायः सभी महाकाव्यकारों ने परोक्ष रूप में यही विचार व्यक्त किया है कि नारी की गति ही पति है और पुत्र का आश्रय पाने में ही उसके जीवन की सार्थकता है। व्यक्त या अभ्यक्त वाणी में नारी-जीवन की विवशता के प्रति भी सभी ने सहानुभूति प्रदर्शित की है। उसकी अतिशय निरङ्कुशता या स्वच्छन्दता की भर्त्सना भी की है।

इस विचार-साम्य के बाव भी महाकाव्यकारों ने तीन दस स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक दस है जो प्राचीनता को पकड़ कर ऐसे उद्धार व्यक्त करता है जो अनुसार हैं। ऐसे दस का प्रतिनिधित्व तुलसीदास करते हैं। दूसरा दस है जो नारी की दया माया, नमता और युग की आवश्यकता को देखते हुए नारी के प्रति सदैव दृष्टि रखता है पर अपने संस्कारों से भी अनुप्राणित होने के कारण मध्यम मार्गी है। ऐसे दस का प्रतिनिधित्व मुसवी करते हैं। तीसरा दस युग की उन्नत भावना से परिपूर्ण है समदृष्टि रखता है और ऐसे दस के एकमात्र प्रतिनिधि प्रसादजी हैं। अठ महाकाव्य-कारों के नारी विषयक विचारों पर तुलनात्मक अध्ययन करते समय हमें तीनों की विचारधारा को ही प्रतिनिधि विचारधाराएँ मान कर एवम् शेष विचारधाराओं को वह द्वितीय की पुष्टि करने वाली समझ कर ही यहाँ उनके नारी विषयक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण करना समीचीन मान पड़ता है।

प्रथम दस का प्रतिनिधित्व करते हुए नारी को अथ अङ्गुलि की उन्नत मानते हुए, सहज अङ्ग अथ एवम् अथम ते अथम अथम अति नारी' बोधित करते हुए, तुलसीदासजी यही कहते हैं —

होस वैबार, सुख, पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी ॥<sup>१</sup>

वहीं युग बाजी से प्रभावित होकर युतजी का संस्कारी हृदय भी 'धर्म संरिता' के स्वर में मुर मिला कर तारी को ताड़न की छविकारिणी समझने बाज गोस्वामीजी का साथ नहीं देता और उनकी युगबाजी से प्रभावित विचारवाज तारी को 'अवस अवसता' स्वीकार न करते हुए यही कहती है—

बीरों की बजनी हम है मित्रा मृग्य हमें धम है ।<sup>२</sup>

प्रतादजी इस अवसता का परिहार ही नहीं अपितु युग की उदात्त विचार वाज का उद्घोष करते हुए यही कहते हैं—

तुम धूम लगे पुरातन मोह में कुछ लसत है तारी की ।

सम रसता है सज्जन्य बनी छविकार और छविकारी की ।<sup>३</sup>

पुत्रने बेबे का प्रतिनिधित्व करते हुए भर्त्सना के स्वर में जहाँ तुमजीबानजी न यहाँ तक कह डाला है—

आता बिता धुम उरगारी । धुरय मरोहर निरलस नारी

होइ बिकस सक मनहि न रोरी । मिमि रबि मनि हब रबिहि दिलोकी ।<sup>४</sup>

वहीं गोस्वामीजी के इस विचार का समर्पण युग की उदात्त विचारवाज बनी नहीं कर बजती और इसीलिए भक्तजी का मत है—

इस कोमल तन के भीतर है हृदय कोट का मडल ।

नितमें न कभी घुल पाये हैं चिरय-सुटेरों के डल ॥<sup>५</sup>

अतः यह स्पष्ट है कि गोस्वामीजी की 'रब' भावना तारी बाज की मर्त्यता करते हुए उसके त्रिष कामुकतापरक स्वरूप का व्यक्त करना चाहती है और उसकी वात्सल्य-निष्ठ पर भी थोड़ करती है वहीं युग की उदात्त विचारवाज को व्यक्त करनेवाला महाकाव्यवाज इस स्वर में स्वर नहीं मिला पाया । उनसे हृदय-कोट का जो मंडल नारी के कोमल तन के भीतर टींचा है वह उदात्त ही नहीं शक्तिधामो एवम शांतिन भी है । यह हृदय-कोट का मंडल बेजस 'रब' की कुस्मिन्ता को ही नहीं बाजती बौ 'तिरिया भूमि खड़ग के पेरी जैसी भावना को भी चुनौती देता है ।

तुमजीबानजी का दम हर प्रकार में नारी स्वातंत्र्य को बुरा मानता है और नारी पर तरह-तरह के बंधन लगाने में नहीं बूझता । तुमजी की विचारवाज का ही समर्जन करते हुए जहाँ के डल के सत्य के रूप में जहाँ नेशादवान भी मह कहने लखर भाते हैं—

२ सावेत पु० १०१ ।

३ कामायनी पु० १६३ ।

४ भावस धरव्यर्कड पु० ७६० ।

५ गुरजरी पु० २३ ।



कतही कोड़ी भीक कोर पवारी विमिचारी ।

अबन अमाणी कुतिस कुपित पति तजै न नारी ॥<sup>६</sup>

पर युग की उदात्त विचारधारा मर्यादा छोड़कर नारी को तनुने काटने के लिए साधारण नहीं करती और भक्तजी के स्वर्ण में युग की जाणूत नारी इस मर्यादाहीनता का विरोध करते हुए कहती है—

महीं नहीं यह कभी न होगा कभी न होने सूची में ।

मानवता बिहीन पति का अम्पाय ग वीं यह सूची में ॥<sup>७</sup>

युगवाणी से अनुप्राणित होन के कारण संस्कारी हृदय भी इस परंपरागत विश्वास का समर्पण नहीं कर पाता है और बहु पुरुष के उस 'छन' का पर्याय करता इतिमोक्ष होता है जो मोठी बातों से नारी को बहुसा कर 'बासी बनाता चाहता है—

बास बनने का बहाना किसलिए ? क्या मुझे बासी कहना इसलिए ?

देख होकर तुम सब मेरे रहो और देखो ही मुझे रखो ग्रहो ॥<sup>८</sup>

पुरातन पंथी महाकाव्यकारों का प्रतिनिधित्व करते हुए मोस्वामी जी की विरति-प्रियता जहां नारी के लिए यह भी कह सकती है—

धीप सिखा सम कुचति जन मन अनि होसि पतंग ॥<sup>९</sup>

अथवा

पाप उलूक निकर सुप्रकारी । नारि निविड़ रजनी अंधियारी ।

कुचिबल सीत सार सज मीना । बगसी तम भिय कहहि प्रवीना ॥<sup>१०</sup>

यहीं युग का 'श्रीग' महाकाव्यकार इस विरति प्रियता का समर्पण नहीं करता और वह स्पष्ट तन्त्रों में घोषित करता है—

नारी माया भवता का बल बहु अकिमयी छाया झीतल,

किर कौन जमा करवे निवृत्त, जिससे यह धग्य बने भूतल ॥<sup>११</sup>

अथवा

हम बोड एक नाहि कपु मेरा कहत सकल निबनायन पैरा ।

निबसति यथा क्षीर धबसाई, यथा हुसायन बाहक लाई ॥

यसत प्रिये । तस तुम मोहि माहीं, तुमहि बिहाय मोरि बसि नाही ॥<sup>१२</sup>

जो यही परम्परा को पकड़ कर, विरति के नाम पर गृधक दस का प्रतिनिधित्व करने वाले मोस्वामीजी नारी के प्रश्न पर 'मेह' को उड़ा करना चाहते हैं, वहीं

६. रामचरितका ६। ६।

७. गूरबही पृ० ५१।

८. साकेत पृ० १०।

९. मानस, अरण्यकांड पृ० ५१०।

१०. यही पृ० ५०५।

११. कामायनी पृ० २३८।

१२. इच्छासन पृ० ६६।

पुरानी विचारधारा को भी नवीन स्वर देकर उदात्त अथवा संस्कारी दल का महाकाव्यकार 'जनेब' का समर्पण करते हुए यही व्यक्त करता है—

‘ध्यात विद्वत्तरि सत्यं ह्यहं, विद्वत्तं पुण्यं अथ नारि ।’<sup>१३</sup>

नारी के हृदय को लेकर भी प्रथम दल में मित्रों का सम्भार-सा खा कर दिया है और उनका प्रतिनिधित्व करते हुए तुमसीदासजी ने मानस के सर्वाधिक उदात्त हृदय पात्र के मुख से भी यह कहना बना है—

विशिष्ट न नारि हृदय गति जाति । सकल कष्ट अथ अथपुन जाति ।<sup>१४</sup>

वही तुम की उदात्त विचार-धारा से अनुप्राणित दल उसके हृदय पर यह साक्ष्य मनाने के लिए तैयार नहीं है। यह उस हृदय की कमजोरी से भी परिचित है और महानता से भी। इसीलिए उसका दृष्टिकोण सत्य है एकांगी नहीं है। ऐसे दल का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रसादजी कहते हैं—

नारी का यह हृदय । हृदय में सुधा सिधु लहरें बैठा,  
बाहु अलस उसी में जलकर, कंचन सा जल रंग बैठा ।  
मधु पिण्ड उस तरल प्रणि में शीतलता संसृति रजतो  
शमा और प्रतिधोष चाह है दोनों की माया नक्षत्री ।<sup>१५</sup>

उक्त उदाहरणों को देखते हुए, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीनता त्रिप दल के महाकाव्यकारों के नारी विषयक विचार जहाँ अनुराग है, संस्कारों और युवराजी से प्रभावित दल के महाकाव्यकारों के विचारों में जहाँ प्राचीन-नवीन विचारों का समिश्रण है, वहीं तुम की उदात्त विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाले महाकाव्यकारों के विचारों में व्यक्ति का उद्घोष है। उनके लिए नारी केवल मंडा है, वे उसके पीयूष-स्रोत को जीवन की समता की भूमि पर प्रवाहित करते दृष्टिकोणर होते हैं। उसके हृदयहीन चिरच्छेद स्वरूप का समर्पण नहीं करते परन्तु अधुन के संस्कार से अपने सोने से स्वर्णों को खान करनेवाली नारी के सर्वममता स्वरूप की प्राच-प्रविष्टा करना ही उनका ध्येय है और इस ध्येय का नारी विषयक निष्कर्ष यही है—

है सर्व मयते । तुम महती  
सबका पुत्र अपने पर कहती  
कल्याणमयी वाली कहती,  
तुम दामा नित्य में हो रहती,  
में बूला हूँ तुमको निहार,  
नारी सा ही ! यह लघु विचार ।<sup>१६</sup>

१३ इच्छामन पृ० ६६ ।

१५ कामायनी पृ० २०७ ।

१४ मानस, धर्मोप्याखंड पृ० २६१ ।

१६ वही पृ० २४६ ।



## परिशिष्ट

- आचार ग्रन्थ एवं सहायक ग्रन्थ



## आधार ग्रंथ एवम् सहायक ग्रंथ

### आधार ग्रंथ

दुष्मीराम राठी

पद्यावत

रायचरित मत्तस

राय चरित्रका

मियप्रवाल

साकेत

कानापनी

दूरजहा

सिद्धार्थ

साकेत संत

कृष्णायन

रावण महाकाव्य

### सहायक ग्रंथ

मार्ग संस्कृति

साधुनिक हिन्दी काव्य में नारी-भावना

साधुनिक साहित्य

चम्बरदासी [ नामरी प्रचारिणी समा ]

सम्पादक — डाक्टर श्यामसुन्दर दास ।

मलिक मुहम्मद जायसी [ जायसी व जायसी ]

सम्पादक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

गुमतीदास [ सम्पादक रामनरेश मिश्रा ]

केशवदेव [ केशव व जायसी खण्ड २ ]

सम्पादक : विद्यापतिप्रसाद मिश्र ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ।

मीनसीधरण गुप्त ।

जयसङ्कर प्रसाद [ महान संस्करण ]

भुवनलाल [ चतुर्थ आवृत्ति ]

अनूप शर्मा ।

डाक्टर बलदेवप्रसाद मिश्र ।

हरकाप्रसाद मिश्र ।

हरदयाप्रसाद ।

डाक्टर बलदेव उपाध्याय ।

डाक्टर वीरकुमारी ।

नन्दकुमारी काश्यप ।

सामुद्रिक मनोविज्ञान

आलोचना

कठोपनिषद्

काव्य के रूप

कालिदास प्रभावली

काम सुप्त

काव्य दर्पण

काव्य कल्पद्रुम भाग १

केसव प्रदावली खंड १

किलोर मनोविज्ञान की धूमिका

कड़ी बोली के शीतल प्रेम

गीतामी सुलसीदास

विस्तारमणि भाग २

अंबारबायी और जनका काव्य

आपसी प्रभावली की धूमिका

जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत

जैन सामुद्रिक ना पांच प्रयोग

१ सामुद्रिक तिमक

२ सामुद्रिक शास्त्र

सुलसीदास एक विस्तेपरत

सुलसी दशम

दर्शन के उपयोग

देव और उनकी कविता

धर्म पद

धर्म सुप्त

नव रत्न

नारी का मूल्य

नारी धर्म

प्रसाद का काव्य

पारबात दशर्षों का इतिहास

पातात्रिस योग दशम

कालजीराम सुक्त ।

२, १, ४ सम्पादक चिबदानसिंह पोद्दान

गीता प्रेम ।

गुलाबराय ।

शीताराम चतुर्वेदी ।

वात्सवायन । जय मङ्गला टीका ।

प० रामदहिल मिश्र ।

छेठ कम्हैयालाल पोद्दार ।

विस्मयाध प्रसाद मिश्र ।

डाक्टर हरमूप्रसाद चौधे ।

विस्वम्भर 'मानस' ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

डाक्टर विपिनबिहारी त्रिवेदी ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

लक्ष्मीनारायण मुन्नामु ।

{ सं० शास्त्री हिम्मतराय ।

पत्रिकेशन विविजन द्वारा प्रकाशित ।

डाक्टर कमदेवप्रसाद मिश्र ।

हरविन एडमन सं० चार्ल्स फॉक्स ।

डाक्टर नैनेन्द्र ।

महात्मा गांधी ।

चतुष्टय

गुलाबराय ।

शरदचन्द्र चटर्जी [ शरद साहित्य ]

कल्याण ।

डाक्टर प्रेमलाल दूर ।

डाक्टर देवराज एचम् जीतली ।

बिहार राज्य भाषा परिषद पटना द्वारा

प्रकाशित ।

ब्रह्म भाषा साहित्य का मायिका मेर

बिहारी सतसई

भारतीय नारी

भारतीय काव्य शास्त्र की परम्परा

भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण

भारत

भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास

भारत का सांस्कृतिक इतिहास

भारत का प्राचीन इतिहास

भारतीय संस्कृति के चार आयाम

मनोविज्ञान और शिक्षा शास्त्र

मध्य युग की धर्म साधना

मन की शक्ति

मनुस्मृति

महाराष्ट्रीय ज्ञान कोष

भारत-बाह्य

रस रत्नाकर

रस भोजन

रस रत्न

रस कला

रस रत्न

रसिक प्रिया

विचार और धनुषी

विश्व धर्म दर्शन

वैदिक साहित्य

शिक्षा शास्त्र

शु पार सतक

साहित्य

साहित्यालोचन

सिद्धांत और अध्ययन

पुराणार १, २

संस्कृत साहित्य की कपरेका

संस्कृत साहित्य का इतिहास

प्रभुध्यान मित्तम ।

बिहारीनाम ।

स्वामी विवेकानन्द ।

सम्पूर्ण डाक्टर मयेन्द्र ।

डा मयवतधरण जगन्नाथ ।

भीषण अमृत कवि भगु० आशिय मिश्र ।

डाक्टर सरदेसेनु विद्यामङ्गल ।

हरिवत् वेदामङ्गल ।

डा० सरदेसेनु विद्यामङ्गल ।

रामचारीसिंह दिनकर ।

भैरवनाथ झा ।

डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ।

गुमाबराय ।

सं पं० रामदेव पाठे ।

डाक्टर कटकर ।

यसपाल ।

हरिचन्द्रकर शर्मा ।

भाषार्थ रामचन्द्र शुक्ल ।

भाषार्थ महावीरप्रसाद द्विवेदी

हरिबीर

मणिराम ।

केशवशास्त्र ।

डाक्टर मयेन्द्र ।

छात्रमिया बिहारीनाम शर्मा ।

प रामगोविन्द द्विवेदी ।

डाक्टर सौभाराम आनन्दनाथ ।

धर्महरि ।

रबीन्द्रनाथ ठाकुर ।

डाक्टर दयानन्दमुन्तरास ।

गुमाबराय ।

संगारक नन्दुमारो काशदेवी ।

डाक्टर झा ।

डाक्टर बसदेव जगन्नाथ ।



हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा. चार्य रामनरथ शुक्ल ।
हिन्दी साहित्य की भूमिका	डा. कटर हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
हिन्दी साहित्य का भ्रात्रे काल	डा. कटर हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
हिन्दी साहित्य का सामोबनात्मक इतिहास	डा. कटर रामकुमार वर्मा ।
हिन्दी साहित्य	डा. कटर श्यामगुप्तरदास ।
हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता	डा. कटर बेनीप्रसाद ।
हिन्दू सभ्यता	डा. कटर रामाकुमुद मुकर्जी अनु० बामुदेव नरम अग्रवाल ।
हिन्दू परिवार भोगीष्टा	हरिवंश बेदासकार ।
हिन्दी संत काव्य संग्रह	पण्डितप्रसाद द्विवेदी परचुराम चतुर्वेदी ।

Encyclopaedia Britannica Vol. I	Ninth Edition
The Theory of Beauty	E. F. Cantt.
Psychology	R. S. Woodworth.
Studies in Psychology of Sex Vol. II	Hevelock Ellis
Psychology of Women Vol. I	Helene Deutsch M.D
Encyclopaedia of Psychology	Phillip Lowrence Harrison
Differential Psychology	Anastasi and Foley
Stevenson's Book of Quotations or Dictionary of Quotations	Burton-Stevenson.
A History of Sanskrit Literature	V. Vardhachari.
Women in the Sacred Laws	Shakuntala Rao Shastri.
Three Essays on the Theory of Sexuality	Sigmund Freud



